
स्वर्ग का
विमान

स्वर्ग का विमान

*****

बूंदी राज्यनिवासी पण्डित रामजीवनजी नागर
द्वारा अनुवादित

खेमराज श्रीकृष्णदास प्रकाशन,
बम्बई-४

संस्करण : जनवरी २०१४, सवत् २०७०

मूल्य : २०० रुपये मात्र

मुद्रक एवं प्रकाशक:
खेमराज श्रीकृष्णदास,™
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
मुंबई - ४०० ००४.

Printers & Publishers
Khemraj Shrikrishnadass
Prop: Shri Venkateshwar Press
Khemraj Shrikrishnadass Marg,
7th Khetwadi, Mumbai - 400 004.

Web Site : http://www.khe-shri.com
E-mail : khemraj@vsnl.com

Printed by Sanjay Bajaj for M/s Khemraj Shrikrishnadass
Prop. Shri Venkateshwar Press, Mumbai-400004,
at their Shri Venkateshwar Press, 66 Hadapsar Industrial Estate,
Pune -411 013.

भूमिका

पृथ्वी पर एक स्थान से दूसरे स्थान को जाने के लिये गाड़ी, घोड़ा, ऊँट, रेल, मोटर, जहाज आदि अनेक साधन हैं परंतु स्वर्ग को जाने के लिये केवल एक विमान ही साधन है। जिसके हाथ में वह विमान आ गया उसके लिये स्वर्ग में पहुँच जाने में कुछ भी संदेह नहीं। सवारियों में जैसे स्वर्ग को पहुँचाने वाला साधन विमान है वैसा ही पुस्तकों में स्वर्ग पहुँचाने वाला साधन यह स्वर्ग का विमान है। इसमें क्या है सो जताने के लिये केवल इतना ही लिखना बस है कि इसमें महात्मा लोगों के मुख से निकले हुए उदाहरणों के रूप में अमृत वचन हैं और वे स्मरण रखने के योग्य हैं। जो इस पुस्तक को पढ़ेगा बारबार पढ़ता रहेगा, समझेगा, ध्यानपूर्वक मनन करता रहेगा और सच्चे अन्तःकरण के विचार करके इसमें लिखे वचनों के अनुसार चलने का यत्न करेगा उसके चित्त के विकार, मन के मैल और अन्तःकरण के दोष शनैः २ घटने लगेंगे, साफ होते जायँगे और किसी दिन बिलकुल दूर हो जायँगे यहां तक कि, अन्त में शुद्ध, निर्मल और सात्विकीय मन वृत्ति होकर स्वर्ग प्राप्त हो जायगा इसमें कुछ भी सन्देह नहीं है।

मूल गुजराती पुस्तक के लेखक श्रीयुत वैद्य अमृतलाल सुन्दरजी पढ़ियार चोरवाडकर ने अपनी भूमिका में जो लिखा है उससे मालूम होता है कि ता० ८/८/१९०२ से २२/६/१९०८ तक के छः ही वर्ष के भीतर गुजराती भाषा में इस पुस्तक की तीन आवृत्ति हो चुकी हैं जिनमें ६०० प्रतियां छपी हैं, बस इसी पर से इस पुस्तक की उपयोगिता सिद्ध होती है। उस तृतीया वृत्ति की प्रति का ही भाषांतर आज यह पाठकों के आगे प्रस्तुत है।

मैं लेखक नहीं हूँ और इसी से यह भाषांतर यथातथ्य हुआ है या नही सो नहीं जान सकता। इसके निर्णय करने का भार तो पाठकों के ऊपर है; परंतु पुस्तक की उपयोगिता पर से ही मुझको पूर्ण विश्वास है कि सर्व साधारण इसका आदर अवश्य करेंगे।

श्रीवेंकटेश्वर यन्त्रालय के स्वामी श्रीमान् सेठ खेमराजजी श्रीकृष्णदासजी की आज्ञा से उक्त पढ़ियार महाशय की लिखी हुई स्वर्ग का विमान, स्वर्ग की कुञ्जी और स्वर्ग का खजाना नामक तीन पुस्तकों का मैं भाषांतर कर चुका हूँ जिनमें से यह स्वर्ग का विमान पुस्तकाकार में प्रकाशित की इसके लिये मैं उक्त श्रीमान् सेठ साहब का पूर्ण कृतज्ञ हूँ। शेष दो में से स्वर्ग की कुंजी दैनिक "वेंकटेश्वर" में निकल चुकी है और तीसरी अभी बंद की बंद ही रखी है। यदि इस पुस्तक का पाठकों ने आदर किया तो सेठ साहब उन दोनों को भी जल्दी ही पुस्तकाकार में छापेंगे।

मूल पुस्तक में जो पद थे उनमें से कितने ही का भाषांतर और कितने ही का प्रत्ययांतर करने से काम चल गया परंतु कितने ही ऐसे निकले जिनके स्थान में नये बनाकर ही रखने पड़े। ग्राम बेरी, जिला रोहतक (पंजाब) निवासी पं० नंदलालजी ने वे नये पद बनाये और मेरे नाम से इसमें रख दिये। इस कृपा और परिश्रम के लिये मैं उक्त पंड़ितजी महाराज को धन्यवाद देता हूँ।

अन्त में एक ही बात लिखना और बाकी है वह यह कि जो इस पुस्तक के पढ़ने वाले पाठकों में से प्रति सैकड़ा पांच सज्जन भी इसमें लिखी शिक्षाओं पर ध्यान देकर अपनी मनोवृत्ति को सुधारने का यत्न करेंगे तो मैं अपने को कृतकृत्य समझूंगा।

हिन्दी का एक लघु सेवक
रामजीवन नागर

बूंदी–राजपूताना, (राजस्थान)
आश्विनकृष्ण ८ सं० १९७३

मूल गुजराती ग्रंथकार की प्रस्तावना

स्वर्ग के विमान को प्रस्तावना क्या? विना जाने और विना समझे भी सब लोग स्वर्ग के विमान की इच्छा करते हैं। इससे स्वर्ग के विमान को प्रस्तावना की आवश्यकता नहीं है, परंतु पुस्तक के संबंध में कुछ सूचनाएं जताना आवश्यक है इससे यह प्रस्तावना लिखनी पड़ी है।

स्वर्ग और विमान इन दोनों शब्दों में कुछ ऐसा अलौकिक बल है कि जब से सृष्टि उत्पन्न हुई तब से लेकर जब तक सृष्टि रहेगी तब तक स्वर्ग के विमान की भावना लोगों के हृदय में से कभी जाने की नहीं, जो धर्म को नहीं मानते उनको भी स्वर्ग के विमान की भावना को तो किसी न किसी रूप में मानना ही पड़ता है, फिर वे चाहे स्वर्ग का अर्थ सुख मानते हों और विमान का अर्थ जल्दी से सुखी होने का उपाय मानते हों तब भी कुछ अड़चन नहीं। इतना व्यावहारिक अर्थ ही बहुत बड़े हेतु और उत्तम भावना वाला है। जिस तरह विमान सररररर करता हुआ एक साथ आकाश में उड़ जाता है उसी तरह से सुख के मार्ग में सपाटे के साथ आगे बढ़ते चले जाने के सुगम से सुगम उपाय बताने वाली जो कोई पुस्तक हो और उसका नाम स्वर्ग का विमान हो तो उसमें कोई अत्युक्ति नहीं है। इस स्वर्ग के विमान में सांसारिक सुख और ईश्वरीय आनंद लूटने के ऐसे सुगम उपाय हैं या नहीं सो निश्चय करने का काम पाठकों का है। मेरी तो इस स्वर्ग के विमान में दी हुई उदाहरणरूप शिक्षाओं के लिये बहुत बड़ी पूज्य बुद्धि है, क्योंकि इन सवा तीन सौ शिक्षाओं में से मेरी ओर से लिखी हुई तो बहुत ही थोड़ी हैं बाकी सब शिक्षाएं भिन्न २ साधु महात्माओं और पंड़ित विद्वानों के मुख से निकले हुए वचन हैं और मुझको ये प्राप्त भी एक बड़े अनुभवी भक्त से हुए हैं। इतना ही नहीं किंतु ये वचन एक बड़े समुदाय के समक्ष नित्य कहे और पढ़कर सुनाये जाते थे और लोग इनको बड़े चाव के साथ सुनते और अंतःकरण से चाहते थे कि फिर फिरकर हमको ये ही वचन सुनाये जायँ तो बड़ा अच्छा हो। यहां तक कि जब यह पुस्तक छपने लगी तब इसके विशेष फार्म छपाने पड़ते थे और वे ऐसे हाथों हाथ उड़ जाते थे कि उनकी और उनके आगे के विना छपे फार्मों की माँग वाचक वृंद की ओर से बनी ही रहती थी। कारण इसका यह कि स्वर्ग के विमान की ३२५ उदाहरणरूप शिक्षाओं में से एक भी शिक्षा ऐसी नहीं है जिसमें धर्म का ज्ञान अथवा प्रभु का नाम न हो।

इस पुस्तक में जो कोई त्रुटी हो तो वह मेरा दोष है और जो गुण और खूबी हो वह इसको लिखाने वाले भक्तराज की विशाल बुद्धि और दृढ़ भक्ति का प्रसाद है। मैं उन भक्तराज का पवित्र नाम इस पुस्तक में देना चाहता था। आपका नाम देने से मुझको बड़ा आनंद होता और लोगों को भी लाभ होता परंतु महाराज की आज्ञा नहीं हुई इसी से मुझे विवश हो अपना मन मारकर रह जाना पड़ा।

उक्त भक्तराज की ओर से मुझे जो शिक्षाएं मिली हैं वे बिलकुल सरल, सादा, सुगम, और हिंदू धर्म के अनुकूल तथा देवमंदिरों में स्वतंत्रता पूर्वक कही जाने योग्य हैं। परंतु मैंने उनमें समय के अनुसार स्वतंत्र विचार भी सम्मिलित कर दिये हैं। इससे जो इन शिक्षाओं में से किसी से कुछ अधिक जोर का चाबुक लगता हो तो वह मेरी ओर का ही मेरी आंतरिक सच्ची वृत्ति का कड़वा घूंट समझना चाहिये।

इस पुस्तक में जो कविता और पद भजन आदि हैं वे भक्तमंडली में प्रसंगोपात्त स्त्री पुरुष गाया करते थे उनमें से लिये गये हैं और इसीलिये संभव है कि उनमें कहीं कुछ भूलें रह गयी हों उनके मूलकर्त्ता, प्रकटकर्ता तथा जिन २ ने वे मुझको लिखवाये हैं उन उन सज्जनों का मैं कृतज्ञ हूं।

इस पुस्तक में की शिक्षाएँ जिन भक्तराज ने मुझे लिखाई हैं उन महाराज के पास ऐसी ऐसी हजारों शिक्षाओं का भण्डार भरा पड़ा है, जो आप महाराज की कृपा हुई तो मैं ऐसी एक हजार शिक्षाएँ लिखकर छपाने की इच्छा रखता हूँ। इससे धर्म के पुराने विचार नये रूप में प्रकाशित हो सकेंगे और लोगों की धर्म भावना जागृत होगी।

अन्त में वाचक भाई वहनों से यही प्रार्थना है कि जो आप इस पुस्तक को बारबार पढ़ेंगे तो धर्म के रहस्य को सुगमता से समझ सकेंगे, दूसरों को सुगमता से समझा सकेंगे और दिन प्रतिदिन आपके हृदय में प्रभु का प्रेम बढ़ता जायगा तथा विकार कम हो जायगा जिससे आप संसार में सुखपूर्वक रह सकेंगे और मरने के समय आत्मा को शांति प्राप्त होगी। ऐसा यत्न करो कि इन सब वातों के होने के लिये यह स्वर्ग का विमान आपका सदा मित्र बना रहे। याद रखना! आपके हृदय में शुभेच्छा होगी तो इस स्वर्ग के विमान की मित्रता आपको ठीक स्वर्ग तक काम आवेगी। इससे मैं आप लोगों से बारबार इस पुस्तक को पढ़ने की प्रार्थना करता हूँ।

वैद्य अमृतलाल सुन्दरजी
पढियार चोरवाडकर

वम्बई—गणेशवाड़ी
सेठ लक्ष्मीदासखीमजी का घर
ता० ८/८/१९०२

अथ स्वर्ग के विमान की विषयानुक्रमणिका

विषय	पृष्ठांक
२९ सत्संग का मजा दूर खड़े होकर देखने से नहीं आता सच्चा मजा तो उसमें घुस पड़ने से ही आता है	२३
३० बाहरी अड़चनों से सत्संग का मजा मत खो सच्चा मजा तो भीतर ही है	२४
३१ पापीजन सत्संग में नहीं जाते उसका क्या कारण	२५
३२ समय मिलने और बहुत सी सुविधाएं होने पर भी जो सत्संग का लाभ नहीं उठाते वे अंत में पछताते हैं	२५
३३ कोई भी मनुष्य हमारा बुरा करे तो उससे द्वेष न मानना वरन् उसे ईश्वर की इच्छा मानकर शांत रहना	२६
३४ हरिजन दुःख में निराश नहीं होते	२७
३५ पशुपक्षी ही अपने मालिक की आज्ञा मानते तब हम परमेश्वर की आज्ञा न मानें तो कितनी बुरी बात है	२७
३६ पति का माल खाकर व्यभिचारिणी होने वाली स्त्री जितनी बुरी है उससे भी अधिक बुरा वह है जो ईश्वर का नमकहराम होता है	२८
३७ स्वामी से वेतन लेने पर भी नमकहरामी करने वाला नौकर जितना धिक्कारने योग्य है उससे अधिक धिक्कारने योग्य वह है जो परमेश्वर के गुणों को न माने	२९
३८ जो बच्चे माता पिता का सामना करते हैं उनको तो हम नालायक बताते हैं परंतु हम अपने परमेश्वरके साथ कैसा वर्ताव करते हैं इसका भी तो विचार करो!	३०
३९ छाछ से जैसे मक्खन अलग है वैसे ही जगत् से भक्त अलग हैं	३१
४० स्वर्ग में कौन कौन हैं? सब हैं! परंतु आलसी लोग नहीं हैं।"	३१
४१ चने की मुट्ठी बंधी रखने से जैसे बंदर का हाथ घड़े में अटक जाता है वैसे ही माया हमको नहीं पकड़ती परंतु हम मायाको पकड़ रखते हैं	३२
४२ कल के दिन का भरोसा नहीं है इससे कल खाने की मिठाई आज ही खा लेना इस तरह की माया बढ़ानेवाली बात न करो किंतु धर्म में जल्दी करो।	३३
४३ कोई भिखारी अपने दान देने वाले ही को लूट ले वैसे ही ईश्वर की दी हुई शक्तियों का शक्तियोंका हम ही विरुद्ध उपयोग करते हैं	३४
४४ जिन पत्तों की आड़ में हिरन छिपा था उन्हीं को वह खा गया इससे मारा गया इसी तरह जो परमेश्वर हमको सब तरह का सुख देता है उसी की आज्ञा को हम मानते नहीं हैं तब विचार तो करो कि हमारी क्या दशा होगी	३५
४५ बहुत पानी पिलाने और राह देखने पर भी जब वृक्ष में फल न लगा तब माली ने उसे उखाड़ फेंका इसी तरह हम भी ईश्वर की इच्छा के अधीन न होंगे तो हमारी भी वही दशा होगी	३५
४६ नदी, पवन, वायु, पर्वत आदि सब ही वस्तुएं परमेश्वर की आज्ञा पालते हैं परंतु मनुष्य नहीं पालते	३६
४७ जिस स्थान को हम एकांत समझते हैं उस स्थान में भी परमेश्वर तो है ही इस तरह ईश्वर की सर्वव्यापकता समझने से बुरे काम नहीं होने पाते	३७
४८ ईश्वर की सर्वव्यापकता राजा के आगे नौकर बुरा काम नहीं कर सकते	३८
४९ गुरु ने पूछा कि ईश्वर कहां है? शिष्य ने कहा कि ईश्वर कहां नहीं है	३९
५० भक्त का ईश्वर भी बुरा नहीं कर सकता तब निंदा करने वाले तो कर ही क्या सकते हैं	४०

विषय	पृष्ठांक
जीती नहीं जाती इसलिये भक्ति करो	२५७
२७१ ज्ञान और वैराग्य भक्ति के पुत्र हैं, इसलिये जो तुममें सच्ची भक्ति होगी तो उसके पुत्र तुम्हारे पास आये विना न रहेंगे	२५८
२७२ ज्ञान और वैराग्य भक्ति की आँखें हैं इनके बिना भक्ति अंधी है	२५९
२७३ भगवदावेश जब तक हृदय में न भरे तब तक ही बाहरी क्रियाओं की आवश्यकता है, वह हृदय में जम जाने के बाद क्रियाओं की आवश्यकता नहीं रहती	२६०
२७४ तुंबा जैसे पानी में नहीं डूबता, वैसे ही भक्त और भक्ति भी संसार में छिपी नहीं रहती	२६१
२७५ भाई भाई में तकरार हो जाने से कुछ पिता छोड़ा नहीं जाता वैसे ही धर्म के बाहरी झगड़ों के कारण प्रभु छोड़ा नहीं जा सकता	२६२
२७६ जो डुबकी मारे और लगा रहे उसको मोती मिलता है वैसे ही भक्ति में जातपांत नहीं देखी जाती जो लगे रहते हैं वे प्रभु को पाते हैं	२६४
२७७ माया चाहे जितना बढ़ जाय परंतु भक्ति विना संतोष नहीं होता, इसलिये पवित्र प्रभु के नाम को पकड़ लो तो तुमको थोड़े ही में बहुत हो जायगा	२६६
२७८ माया को छोड़ने का वृथा हठ मत करो परंतु उसको प्रभु की ओर झुकाने का यत्न करो	२६७
२७९ दयालु परमेश्वर से की हुई हमारी प्रार्थनाएँ कभी खाली नहीं जाती परंतु उसकी ओर से मिले हुए अलौकिक लाभ की खूबी हम नहीं समझते इससे बड़बड़ाया करते हैं	२६८
२८० याद रखो कि, यहां का हमारा बड़प्पन स्वर्ग में काम नहीं आवेगा	२६९
२८१ हम सबको पंडिताई बहुत अच्छी लगती है, इसलिये इस बात की पूरी संभाल रखो कि, पंडिताई के झूंठे झगड़ों में फँसकर अंतःकरण खाली न रह जाय।	२७१
२८२ याद रखो कि धर्म संबंधी विचार सहज में सुधरते नहीं हैं, इसलिये पूरी सँभाल रखो कि कोई भी बुरा विचार चित्त में न जमने पावे	२७१
२८३ धोबी के पास धोने को आये हुए कपड़े धोबी के नहीं हो सकते, वैसे ही पंडितों के अपनी पंडिताई दिखाने के लिये इकट्ठे किये हुए लोगों के विचार उनको स्वर्ग में नहीं पहुँचा सकते	२७३
२८४ मौज उड़ाते समय तो बड़ा मजा आता है। परंतु हिसाब चुकाते समय खबर पड़ेगी	२७४
२८५ कपड़े और जेवर बचाने के लिये अपनी आत्मा को मत डुबाओ! आत्मा को मत डुबाओ!	२७५
२८६ भले आदमियों में जैसे लुच्चे मिल जाते हैं, वैसे ही भक्तों में ढोंगी भी मिलेंगे तो सही, परंतु वे पहचान में आये बिना नहीं रहते	२७६
२८७ धर्म का उपदेश करने वालों की अपेक्षा हरिजनों में ज्ञान अधिक होता है	२७७
२८८ हरिकथा करने वालों और भक्तजनों के ज्ञान में कितना भेद है?	२७८
२८९ जिसको रुचि न हो उसको बोध कराना वृथा है इससे योग्य अधिकारी को ही उपदेश करो	२७९

इति विषयानुक्रमणिका समाप्त

ॐ

श्रीपरमात्मने नमः

अथ स्वर्ग का विमान

मैंने जो भोगा वह मैंने कमाया, जो बचाया वह मैंने खोया और जो मैंने दान किया वह मेरे पास है।

"संसार में स्वर्ग में से"

१ जो दूसरों को नमकहराम समझता वह स्वयं ही प्रभु का बड़ा नमकहराम है।

एक सेठ गाड़ी में बैठकर सैर करने को जा रहा था, मार्ग में उसको उसकी जान पहचान का एक साधु मिला। साधु ने पूछा "सेठ कैसे हो"?

सेठ ने उत्तर दिया–"इस घोड़े की झंझट में पड़ा हूं। इस पर मैंने बहुत से रुपये खर्च कर दिये, परंतु यह सुधरता नहीं। इसको मैं बहुत खिलाता हूं, बहुत फिराता हूं, और सिखाने के लिये भी मैंने एक अच्छा चाबुक सवार रख छोड़ा तब भी उसकी चाल सुधरती नहीं है, यह तो अब शिर पर पड़ा।"

साधु बोला–"सेठ! भगवान् को भी तुम जैसा ही दुःख है,"

सेठ ने पूछा–"भगवान् को मुझ जैसा क्या दुःख है?"

साधु ने उत्तर दिया–"जैसे तुम घोड़े को बहुत खिलाते पिलाते हो तब भी वह बराबर नहीं चलता, वैसे ही भगवान् तुमको बहुत ज्ञान देता है, बहुत वैभव देता है बहुत सुख देता है, और तुमको सुधरने के बहुत साधन देता है, तथा भक्तों के शिक्षक स्वरूप अच्छे २ महात्माओं को सत्संग करने

के लिये तुम्हारे पास भेजता है, तब भी तुम अपनी चाल नहीं सुधारते इसी बात का भगवान् को बड़ा दुःख है। सेठ! तुम्हारा घोड़ा नहीं सुधरेगा तब भी चलेगा, परंतु तुम नहीं सुधरोगे तो काम नहीं चलने का, इसलिये अपने घोड़े को सीधा चलाने के लिये तुम जितना परिश्रम और द्रव्य लगाते हो उतना परिश्रम और द्रव्य अपनी चाल सुधारने के लिये भी तो लगाओ।"

*****

२ भक्त होने के लिये अधिक जानने की आवश्यकता नहीं है, परंतु कुछ करने की आवश्यकता है।

किसी मनुष्य के घर में रात को चोर आया तो उसकी स्त्री बोली, "सुनते हो! घर में कुछ खड़ खड़ाहट होती है!"

पति ने उत्तर दिया "हां मैं सुनता हूं।

थोड़ी देर में फिर स्त्री बोली "किवाड़ खुला!"

पति ने कहा "हां! मैं देखता हूं।"

फिर स्त्री बोली "अब संदूक का ताला खुला !"

पति ने कहा "हां! मैं जानता हूं।"

उसने कहा "माल निकला!"

पति ने उत्तर दिया "हां हां! मैं जानता हूं।"

फिर उसने कहा "वह देखो! चोर बाहर निकल गया!"

पति ने कहा "हां मैं देखता हूं।"

इतने ही में वह फिर बोली "देखो! चोर भागता है!"

पति ने जबाब दिया "हां हां मैं जानता हूं।"

अब तो स्त्री से न रहा गया। वह बोली "धूल पड़ी तुम्हारे जानने में! यह जानना किस काम का? जान बूझकर भी चोर को माल ले जाने दिया! यह जानना कैसा? ऐसे जानने से तो न जानना ही अच्छा है! मनुष्य में होशियारी हो और चतुराई हो फिर भी उनसे काम न लिया जाय तो वे किस काम की?"

भाइयो! जो बहुत बातें करें बहुत शास्त्र पढ़ें, बहुत दौड़ धूप करें, बहुत तीर्थ करें, और बहुत सी छुआछूत रखें परन्तु जो अन्तःकरण के विकार दूर न करे तो वह ज्ञान किस काम का? यों तो चूहा भी एकांत में

रहता है, बंदर फल फूल खाकर रहता है, मछली सदा पानी में ही नहाती रहती है, गधा राख में लौटा करता है और साँप विना घर बनाये रहता है परंतु मोक्ष को प्राप्त थोड़ा ही होता है। ज्ञान तो जब उपयोग में आवे तब ही काम का है जब तक उपयोग में न आवे तब तक का ज्ञान अन्धा ज्ञान है और तब तक का विश्वास अन्धा विश्वास है। इसलिये भाइयो! ऐसे अंधे विश्वास में मत पड़े रहो।

*****

३ बाहरी ढ़ोंग से परमेश्वर प्रसन्न नहीं होता, परन्तु अंतःकरण की शुद्धि से परमेश्वर प्रसन्न होता है।

जो सैनिक (फौजी) कपड़े पहनकर फिरें, नरम बिस्तर में सोवे, मित्रों को दावत दिया करें और स्त्रियों के समान बैठकर गप्पें मारा करें परंतु बंदूक की कभी आवाज भी न सुनें, सीधी तलवार भी पकड़ना न जाने, और लड़ाई का मैदान कभी स्वप्न में भी न देखें वैसे फौजी नौकरों के नाम संसार के इतिहास में थोड़े ही होते हैं? जिन्होंने सच्ची बहादुरी की हो, जिन्होंने शत्रुओं के शस्त्र अपने शरीर पर सहे हों जिनके घावों की शत्रु भी प्रशंसा करते हों, लड़ाई का मैदान ही जिनके आनंद का स्थान हो, शत्रुओं का रुधिर ही जिनकी समशेर का शराब हो शत्रुओं के शिर की खोपड़ी ही जिनका प्याला हो और जिन्होंने अपने शिर देश के काम के लिये अर्पण किये हों उनके ही नाम इतिहास में होते हैं। वैसे ही याद रखे! कि प्रभु के दरबार में केवल तिलक छापे से रंगे हुए माथेवालों के नाम नहीं होते। सोने में मढ़ी हुई सुन्दर मालाएँ, तिलक छापे, बारीक यज्ञोपवीत, मनमोहक प्रसाद, लोभलालच के, दर्शन, बारंबार स्नान, छींटा लगने से छूत, और ऊपर से लंबे लंबे जय गोपाल, जय श्रीकृष्ण, जय सीताराम करना तो बहुत से लोगों को आता है परंतु इन बातों से उनके नाम ईश्वर के दरबार में थोड़े ही लिखे जाते हैं। ये सब बातें तो बाहरी फौजी पोशाक के समान है, जैसे बाहरी पोशाक कुछ और ही वस्तु है, और दिली बहादुरी कुछ और ही वस्तु है, वैसे ही तिलक छापा लगाना कुछ और ही वस्तु है और अंतःकरण की भक्ति कुछ और ही वस्तु है। इसलिए भाईयो! इस बाहरी ढोंग और दंभ मे ही न फँस जाओ और भीतर से खाली न रह जाओ, इसकी पूरी पूरी सँभाल रखो!

४ हरि के शरणागत सदा निर्भय रहते हैं

एक पाँच छः बरस का अंधा बालक अपने पिता की गोद में बैठा था उसको किसी दूसरे अजाने मनुष्य ने अपने पास ले लिया, इस पर वह कुछ भी न बोला। तब पासवाले एक मनुष्य ने उस लड़के से पूछा कि "क्या तू इस आदमी को जानता है?"

उसने उत्तर दिया "नहीं."

तब उसी ने फिर पूछा कि 'तो तू अजाने आदमी के पास कैसे चला गया यह तुझे कहीं ले जाय या मार डालेगा तब?"

बालक ने उत्तर दिया-"मुझे इस बात की चिंता नहीं। कारण मैं अपने पिता की गोद में बैठा हूं। वहां से इसने मुझे लिया है, इससे मैं इसे नही पहचानता तो क्या हुआ मेरा पिता तो इसको पहचानता है।"

इसी प्रकार हम भी उस अंधे बालक की तरह अपने पिता परमेश्वर की गोद में बैठ जाय तो हमको किसी प्रकार का भय न रहे। इसलिये सब भाव से, सब मन से, और सब हृदय से प्रभु के आधीन होने का यत्न करो। उसके चरणों में गिरने से भय भाग जाता है और हम अंधे अर्थात् अज्ञानी होने पर भी अपने पिता की गोद में बैठने से निर्भय हो जाते हैं। इसलिये पूर्ण प्रेम से प्रभु की शरण गहो? प्रभु की शरण गहो! !

*****

५ प्रत्येक मनुष्य को सदा सत्संग में रहना जरूरी है

दैवी नियम है कि जो सफाई न रखे जाय तो सब चीजें अपने आप मैली हो जाती हैं। बरतन न घिसे जाय तो उन पर जंग चढ़ जाता है। पुस्तकें और कपड़े न सँभाले जाय तो उनमें जंतु लग जाते हैं। घर में झाड़ू न लगाया जाय तो कूड़ा कर्कट और कचरा इकट्ठा हो जाता है। कुए में से पानी न निकाला जाय तो बदबू आने लगती है। गाय बहुत दिन तक न दुही जाय तो दूध सूख जाता है। घोड़ा बहुत दिन तक न फिराया जाय तो अड़ने और मस्ती करने लगता है। फल समय पर नहीं तोड़ लिया जाय तो अपने आप गिर पड़ता है और सड़ने लगता है, वैसे ही अपना मन भी जो न सँभाला जाय तो स्वभाव से ही बिगड़ने लगता है। इसलिये उसको प्रभु के नामस्मरणरूपी लगाम चढ़ाना और भगवत्सेवारूपी मिट्टी से मलना घिसना चाहिये, दूसरे हलके विषयों में लगने से मन को खराब न होने देने

के लिये उसको भक्तिरस में ले जाकर प्रभु के नामस्मरणरूपी रस्सी में पिरो देना चाहिये, जो हम ऐसा नहीं करेंगे तो हमारा मन हम ही को नीच दशा में ले जायगा और हमारी अधोगति होगी, ऐसा न होने देने के लिये मन के भक्ति में जोड़ दो! सत्संग में मिला दो!!

*****

६ पाप का तुरंत ही नाश कर डालो

एक खेत में कितने ही आदमी काम करते थे। उनमें से दो मनुष्यों को सांप ने काटा, उन दोनों में से एक ने अपनी वह अंगुली काट डाली जिस पर सांप काटा था और दूसरे ने साँप का काटा हुआ अंग वैसा ही रहने दिया। परिणाम यह निकला कि काटा हुआ अंग काटकर फेंक देनेवाला बच गया और दूसरा विष चढ़कर मर गया। इसी तरह मन में पाप का विचार उत्पन्न होना है सो साँप के काटने समान है जो उस विचार को दबा दिया जाय और वह पाप काट डाला जाय तो मनुष्य बच सकता है परंतु जो वह वैसे का वैसे ही रहने दिया जाय तो उसका विष फैल जाता है और मनुष्य मर जाता है। इसलिये भाइयो! पापरूपी दुष्ट विचारों को तो जड़ से ही काट डालो। तब ही तुम बच सकोगे नहीं तो बचने की आशा नहीं है, क्योंकि काले नाग से भी पाप का विष हजारगुना अधिक बुरा है इसलिये पाप के विष से बचे रहो! बचे रहो!!इस विष को न बढ़ने दो!!! याद रखो! इस विष का उतारने का प्रभु का नाम स्मरण करने के सिवाय दूसरा कोई भी मंत्र नहीं है।

*****

७ दूकानदार बाहर से किंवाड़ बंद करके भीतर अपना काम काज करते हैं वैसे मंदिर में और भक्ति में न करो!

ग्यारस, अमावस, इतवार आदि दिनों में कितने ही आदमी अपनी दूकान बंद रखते हैं परंतु उनमें से बहुत से ऐसे होते हैं जो बाहर से तो किंवाड़ बंद कर लेते हैं और भीतर बैठे काम करते रहते हैं, रिवाज से अथवा जबरदस्ती से लोगों को दिखाने के लिये ही वे लोग बाहर से किंवाड़ बंद कर लेते हैं परंतु भीतर सब कामकाज चला करता है। कोई कपड़ों की तह किया करते हैं, कोई थान गिनते हैं और बहीखाता साधते हैं और कोई माल की व्यवस्था करते हैं। इस तरह भीतर काम चला

करता है और बाहर से किंवाड़ बन्द रहते हैं। इस तरह का काम दुकानदारी में चाह चल सके परन्तु परमेश्वर के घर में नहीं चल सकता। मन्दिर में दर्शन करने जांय या घर में भजन करने बैठें तब ऐसा नहीं करना चाहिये। बाहर का ढौंग तो भक्ति करने का रखे और दर्शन तथा भजन के समय भी मन में विचार दूसरे ही रखे तो वह ईश्वर को धोखा देना है परन्तु ईश्वर इस तरह धोखे में थोड़ा ही आ सकता है? बाहर से किंवाड़ बन्द करके भीतर अपना काम चलाना दुकानों में चल सकता है परन्तु मन्दिरों में प्रभु के आगे चल सके नहीं। एकाग्रता बिना भक्ति नहीं होती। बाहर से भक्ति का ढोंग बताकर भीतर से दूसरे विचार रखना भक्ति नहीं दंभ कहलाता है। व्यवहार में ऐसी गडबड़ चाहे चल जाय परन्तु प्रभु के पास नहीं चल सकती। सब भाइयों को यह बात अच्छी तरह समझ रखनी चाहिये।

१ पद

झूठी धारै जो जगत मैं माला अरे माला माला माला ।।टेक।।
देखत जन के मन के छोड़ै, होठ बजाय जग छाला ।।१।।
जगत माहि इमि भगतसो बनिकै, करे करम बहुकाला ।।२।।
रामजीवन अभी नाम पीवनकों, यांको कुसँग दो टाला ।।३।।

*****

८ विश्वास ही लंगर है, बिना लंगर जहाज नहीं ठहर सकता

हम देखते हैं कि जिसका लंगर डाला हुआ होता है वही जहाज अपनी जगह पर ठहर सकता है अर्थात् न तो उसको हवा से हिलना पड़ता है न समुद्र के चढ़ने में उतरने में उसे आगे पीछे होना पड़ता है। वैसे ही जो मनुष्य ईश्वर पर सहारा रखता है, जो मनुष्य ईश्वर का विश्वासरूपी लंगर डालता है, उसको भिन्न भिन्न मनुष्यों के भिन्न भिन्न विचारों में पड़कर भटकना नहीं पड़ता, उसको कल्पना के जाल में नहीं पड़ना पड़ता। उसकी बुद्धि उसको ठगती नहीं और उसका मन उसको बहकाता नहीं, कारण यह कि उसने विश्वास का लंगर डाल रखा है। परन्तु जो आस्था (विश्वास) बिना के है प्रभु पर प्रेम बिना के हैं। वे बिना लंगर के जहाज जैसे हैं। वे जन्ममरण के चक्कर में पड़ते हैं और ऊंच नीच योनि में पड़कर आगे पीछे तना करते हैं। ऐसा न होने के लिये भाइयो! भगवान्

के आसरे विश्वास का लंगर डालो।

*****

९ सब बिना काम चलेगा परंतु विश्वास बिना नहीं चलेगा

तुम गरीब हो और दान नहीं कर सकते तो काम चल सकेगा। तुम बीमार हो और तप नहीं कर सकते तो चलेगा, तुम संसारी जाल में बहुत फँसे हुए हो और योग नहीं साध सकते तो चलेगा। तुमको अच्छे अच्छे गुरु और अवसर न मिलने से गहरा ज्ञान न मिला हो तो चलेगा। तुमने पाप किये हो तब भी शायद चल सकेगा, उनकी भी भक्ति से माफी मिल सकेगी परन्तु जो तुममें विश्वास नहीं है तो उसके बिना नहीं चल सकता। तुम्हारा जहाज बहुत अच्छी अच्छी चीजों से भरा हो परन्तु जो उसके पेंदे में सूराख होगा तो वह अवश्य डूब जायगा। वैसे ही तुम चाहे जैसे अच्छे हो परन्तु जो तुममें विश्वास नहीं है तो जहाज के छिद्रसमान ही है और यह अविश्वासरूपी छिद्र इतना बड़ा है कि उसमें पैबंद (जोड़) भी लगाने से काम नहीं चलने का। विश्वास बिना काम करना वैसा ही निर्जीव है जैसा ऊपर से तो मकान को बहुत बड़ा और भपकेदार बनाना और उसमें अच्छे अच्छे सामान सजाना परन्तु नींव उसकी वायु से उड़ जानेवाली रेत से लगाना है। कारण यह है कि विश्वास ही धर्म का पाया है। इसलिये जो करो सो पूर्ण प्रेम और विश्वास से करो। श्रद्धा और विश्वास बिना ईश्वर को जानने और प्रसन्न करने का और कोई भी मार्ग नहीं है। नहीं है! ! नहीं है! ! ! इससे ईश्वरी श्रद्धा को अपने जीवन का तत्त्व बनाओ तब ही सन्तोष मिलेगा और तब ही संसारसागर पार हो सकेगा। यह अटल सिद्धांत है।

*****

१० हरिजन को शोक नहीं करना, शोक करना प्रभु से तकरार करने के बराबर है

एक मनुष्य ने अपने किसी मित्र से पूछा "आज तक तुम दिखाई नहीं देते?"

उसने उत्तर दिया "आजकल मुझे शोक है, इससे घर से बाहर नहीं निकलता।"

वह बोला "तुम तो बड़े लड़ाकू जान पड़ते हो? अब तक लड़ाई नहीं

छोड़ते!'

यह सुनकर उस शोकवाले ने कहा "क्या कहते हो! मैंने किससे लड़ाई की?"

उसने उत्तर दिया "प्रभु से! प्रभु ने तुम्हारा आदमी ले लिया इससे तुम प्रभु के साथ द्वेष रखते हो! तुम ही बताओ इतना शोक करना प्रभु से लड़ना नहीं तो और क्या है! जो प्रभु का था वह प्रभु ने ले लिया, इसमें शोक का क्या काम? सच्चा शोक तो वह है कि जैसे वह मरनेवाला मर गया वैसे ही एक दिन हमको भी मरना है। इससे अपनी मृत्यु को सुधार लेना चाहिये। सच्चा कर्तव्य तो हमारा यह है कि मरनेवालों के पीछे हमको अपने स्नेह और अपनी स्थिति के अनुसार अच्छे अच्छे काम करना चाहिये जिससे उसको भगवान् के पास पहुँचने में सहायता मिले और हमको अपना कर्तव्य पूरा करने का संतोष हो। घर में बैठे रहना और देवदर्शन तथा भगवत्सेवा जैसे अच्छे कामों से दूर रहना शोक नहीं कहलाता, यह तो प्रभु से वैर करना हुआ।" सब लोगों को यह बात अच्छी तरह याद रखनी चाहिये।

*****

११ प्रभु को दया पसंद है कोरा ठाठबाट नहीं

साधुजन कहते हैं कि प्रभु को दया पसंद है ठाठबाट नहीं, हम तो हाथ में, पैर में, कमर में, गले में, नाक में, कान में, आवश्यकता से भी अधिक जेवर पहनें, कष्ट हो तब भी पहनें, न उठ सकें तो भी पहनें, कान टूटने लगे तब भी पहने, पैरों में पट्टी बांधनी पड़े तब भी पहने, गर्दन झुक जाय तब भी पहनें, हाथ छिल जाय तब भी पहनें, रुपया पास न हो तो उधार लेकर भी पहनें, घरवालों से लड़ाई झगड़ा मचाकर भी पहने, तथा हीरे मोती से लदकर मलकते चलें, और हमारे भाई बंधु रोटी के टुकड़े बिना भूखे मरें, कपड़े बिना ठंड से मरें, दवा बिना रोग से मरें और पशुओं की सी बुरी दशा में रहे, तब भी हम उनको सुधारने और बचाने का यत्न न करे और केवल अपने गहने गांठे ही में लीन रहै। इसका नाम क्या राक्षसीपन नहीं है? ऐसी ऐसी बातें देखकर भी हमारे हृदय में दया न आवे तो मनुष्यों और राक्षसों में अंतर ही क्या? इस तरह जेवर पहनकर चटकमटक से फिरना तो फिसले पर लात मारना, जले को जलाना,

दुखिया पर डाह देना, मरे को मारना और रोते हुए के सामने बैठकर हँसने के समान है। इनसे भगवान् राजी नहीं होता क्योंकि दया बिना का भड़कीला दृश्य कठोर होता है। इसलिये प्रभु को प्रसन्न करना है तो हीरे मोती के नहीं दया के जेवर पहनो।

*****

१२ धाये हुए को हम जबरदस्ती मिठाई खिलाते हैं, परंतु भूखे को टुकड़ा रोटी का भी नहीं देते।

अपने सगे सबंधियों को, अपने मित्रों को और अपने समधियों को हम जबरदस्ती से मिठाई खिलाते हैं, उनका पेट भर गया हो तब भी उनसे और खाने का आग्रह करते हैं, उनको भूख न हो तब भी जबरदस्ती जिमाते हैं, रुचि न हो तब भी उनको बादाम का हलवा और मोहनभोग खिलाते हैं। उनको न पचे तब भी कचौड़ी पकौड़ी खिलाते हैं और वे आने से साफ इन्कार करें तब भी बारंबार न्यौता बुलावा करके जोर देके, क्रोध करके दबाके तथा लज्जित करके भी बुलाते हैं और बिना बुलाये आये हुए, पेट कूटते हुए, भूख से रोते हुए, अन्न बिना दुर्बल बने हुए, हमारे घर के नीचे खड़े हुए तथा पाखाने मोरी के पास पड़ी हुई जूंठी पत्तलों में से चावल के दाने बीन बीनकर खाते हुए अनाथ बालकों को, दीनता भरी हुई आवाजें सुनके तथा घर में बनी हुई रसोई बची रहने पर भी नहीं देते, यह क्या मनुष्यत्व है? खुले दिल से अपने गरीब भाई बंधुओं की अच्छी तरह सहायता करना ही परमेश्वर को प्रसन्न करने का एक मार्ग है। सब प्राणियों पर उदारता दिखाने के सिवाय दूसरा कोई भी परमेश्वर को प्रसन्न करने का सुगम मार्ग नहीं है। इसलिये दान देना ही हमारा एकमात्र महामंत्र होना चाहिये तब ही कल्याण हो।

*****

१३ ईश्वर का ज्ञान होता है तब माया छूट जाती है

एक छोटे लड़के के लिये एक धाय रखी गई थी, उसी को बच्चा अपनी माता जानता था इससे वह उसी का कहा मानता था, उसके पास दौड़ जाता था, उसको न देखने से रो पड़ता था और उसी पर पूरा प्रेम रखता था, उसकी सच्ची माता बड़े प्रेम से हाथ बढ़ा बढ़ाकर बुलाती तब भी वह उसके पास नहीं जाता क्योंकि वह नहीं जानता था कि यही मेरी माता है,

वही लड़का जब बड़ा हुआ और जानने लगा कि यह तो मेरी धाय है और सच्ची माता दूसरी ही है तब उसके बिना काम उसके पास जाना छोड़ दिया। यहां तक कि वह उसे अधिक बुलाती तो वह जबाब देता कि 'तू तो मेरे पिता की दासी है, मेरी माता थोड़े ही है। अब मैं तेरे पास नहीं आता, तू मुझसे दूर रह?"

इसी तरह माया प्रभु की दासी है, परन्तु हम उस बालक की तरह अज्ञानी है, इससे माया को ही अपनी माता समझ बैठे हैं, अपने सच्चे पिता समर्थ परमेश्वर को हम भूल रहे हैं, परंतु जब ईश्वर का स्वरूप समझ में आता है, तव माया हमारी दासी बन जाती है और फिर हमको हरि के चरण की शरण छोड़कर सच्चे मातापिता को छोड़कर दासी के पास जाने को मन नहीं होता, यही भक्त का लक्षण है।

*****

१४ जो प्रभु को सर्वव्यापी समझते हैं वे किसी से नहीं डरते

ईश्वर को सर्वव्यापक समझने से जैसे मनुष्य पाप से बच सकता है वैसे ही अनुभव से हम निर्भय हो सकते हैं, कहते हैं कि, एक मनुष्य किसी बालक के केवल हँसी के लिये बिना ही कारण 'हाऊ आया!' 'हाऊ आया!!" कहकर डराया करता था, जिससे वह बालक अकेला होता तब हाऊ का नाम सुनकर डरा करता था। एक दिन वह बालक अपने पिता का हाथ पकड़ किसी अँधेरे मार्ग में होकर जा रहा था कि सामने से आकर उस आदमी ने कहा "हाऊ आया!"

बालक तुरन्त बोल उठा "इस समय मैंने अपने पिता का हाथ पकड़ रखा है इसमें मैं तुम्हारे हाऊ मे नहीं डरता। हां! जब अकेला होता हूं तब हाऊ का डर लगता है।"

इसी तरह ईश्वर को साथ रखकर चलने से ईश्वर को सर्वव्यापी और सर्वव्यापी और सर्व शक्तिमान् समझकर काम करने से हम भी उस बालक की तरह निर्भय हो जाते हैं, इसलिये सदा मन में ऐसी ही भावना रखना चाहिये कि:–

सवैया

दूरहु राम समीपहु राम ही, देशहु राम विदेशहु रामे ।
पूरब राम ही पश्चिम राम ही, दक्षिण राम ही उत्तर धामे ।।

आगे हु राम ही पीछेहु राम ही, व्यापक राम ही हैं बन ग्रामे ।
सुंदर राम दशोंदिश पूरण, स्वर्गहु राम पतालहु तामें ।।

*****

१५ गरीबों के बिना स्वर्ग तक हमारा बोझा कौन उठावेगा ?

एक ज्ञानी भक्त का कथन है कि, गरीबों को धिक्कारो मत! कारण वे हमारे पक्के मित्र और साथी हैं और वे ही हमारा बोझा उठानेवाले हैं तुम विचार के तो देखो कि, हमारे धर्म का बोझा स्वर्ग तक उठाकर ले जानेवाले भिखारियों के सिवाय और कौन है? हमको अपनी एक गठरी उठाकर स्टेशन तक ले जाना होता है तो उसको ले जाने के लिये भी कुली कितने पैसे माँगते हैं? जरा विचार तो करो कि, जो कुली को एक मील का एक आना भी दिया जाय तो स्वर्ग तक के लिये कितना देना पड़ेगा? प्रथम तो वहां तक की मजदूरी देने के लिये किसी के पास इतना पैसा ही नहीं है और जो कोई देनेवाला खड़ा भी हो जाय तो स्वर्ग तक बोझा उठाकर ले जाना स्वीकार करनेवाले भिखारियों के सिवाय दूसरे हैं भी तो कौन? यहां पर हमको नोंच नोंचकर सर्वस्व खा जाने पर भी हमारी स्त्री, पुत्र, मालिक, नौकर, दोस्त या खुशामदी टट्टुओं में से कोई भी हमारे धर्म का बोझा शिर पर धर के स्वर्ग तक नहीं पहुँचा सकते। केवल भिक्षुक ही हमारा बोझा पहुँचावेंगे और वह भी मुफ्त में, केवल मुफ्त ही नहीं परंतु एक का हजार गुना देने की शर्त्त पर। ऐसे स्वर्ग में सहायता देनेवाले ईश्वर के आगे हमारे धर्म की गवाही देनेवाले भिखारियों के सिवाय दूसरे सच्चे मित्र हमको कौन मिलेंगे! इसलिये भाइयो! भिक्षुकों पर दया ही रखो और जो कुछ बने सो देते ही रहो।

*****

१६ भगवान् की इच्छा के अधीन रहना ही अच्छा है

जो कपड़े अच्छे होते हैं उनको ही कूट कूट कर धोया जाता है। कपड़ों को फाड़ डालने के लिये नहीं कूटा जाता परंतु मैल दूर करने के लिये कूटा जाता है। इसी तरह जो प्रभु के प्यारे भक्त हैं, वे ही दुःख पाते हैं, कारण दुःख की मार खाने से वे पवित्र हो जाते हैं, परंतु जो कपड़े मैले कुचैले या फटे टूटे होते हैं। वे बत्तियों और मशालों में जला दिये जाते हैं, ऐसे जलाने योग्य कपड़ों को धोने की कोई मेहनत नहीं करता परंतु अच्छे को ही धोने

की मेहनत करते हैं। इसी तरह जो परमेश्वर के प्यारे हैं उनको ही दुःख होता है। इससे दुःख से मत डरो परंतु उसको खुशी के साथ सहन करो। इसमें विशेषता इतनी ही है कि चित्त को दुःखित करके भोगोगे तो दुःख में ही डूबे रहोगे और भगवान् की इच्छा के आधीन होकर शांति के साथ भोगोगे तो तर जाओगे।

*****

१७ ईश्वर की इच्छा से आये हुए दुःख नहीं परंतु ईश्वर की दया है

किसी कुए में गिरकर डूबते हुए मनुष्य को यदि कोई दूसरा आदमी चुटिया पकड़कर निकाल ले तो उस पर इस बात की नालिश नहीं हो सकती कि इसने बाल क्यों खींचे? मरते को बचाने के लिये बाल पकड़कर खींचना अपराध नहीं कहला सकता, क्योंकि बाल पकड़ना उसके स्वार्थ के लिये नहीं वरन् परमार्थ के लिये है, इसी तरह हम इस संसारूपी समुद्र में डूबे हुए और पाप के कीचड़ में फँसे हुए हैं इसमें से बचाने के लिये ईश्वर हमको कभी २ थोड़ा बहुत दुःख देता है परंतु बचाने के उपकार को भूलकर हम दुःख देने की शिकायत करते हैं वह हमारी कैसी नीचता और ईश्वर की कैसी उत्तमता है? इस नीचता में से बचने का उपाय यही है कि, प्रभु का स्मरण करते २ शांति के साथ दुखों को भोग लिया जाय।

*****

१८ चाहे जैसा ज्ञान क्यों न हो परंतु भक्ति बिना पार नहीं पड़ता

कोई एक सेठ नाव में बैठकर कहीं जाता था। उसके साथ एक बड़ी घड़ी थी। नाव चल देने बाद थोड़ी देर में मल्लाह ने घड़ी के पास खड़े होकर पूछा "सेठ कितने बजे हैं?"

सेठ ने उत्तर दिया"अरे तुझको घड़ी देखना ही नहीं आता, कुछ पढ़ा लिखा है या नहीं?"

मल्लाह ने उत्तर दिया "नहीं माता पिता! हमको कौन पढ़ावे?"

सेठ ने कहा "अरे भले आदमी! तब तो तेरी चौथाई जिंदगी खाली ही निकल गई! यह तो कह कि तू ब्याहा है या नहीं?"

मल्लाह ने उत्तर दिया "नहीं साहब! पेट तो भरता ही नहीं तब विवाह की झंझट कौन करे?"

सेठ ने कहा "लड़के बच्चे और स्त्री बिना सुख कहां? तब तो तेरी आधी जिंदगी रद्द हुई। यह तो बता कुछ व्यापार धंधा करना भी आता है?"

मल्लाह कहने लगा "मुझको तो एक नाव खेना आता है और कुछ भी नहीं आता!"

सेठ बोला "अरे मूर्ख! व्यापार धंधा भी नहीं आता! तब तो पौन ज़िंदगी यों ही गई।"

इनमें इस तरह की बातें हो रहीं थी इतने ही में एक तूफानी लहर आई और ऐसा मालूम हुआ कि अभी पासवाले चट्टान से टकराकर नाव के टुकड़े टुकड़े हुए जाते हैं। यह देख मल्लाह बोला "सेठ साहब! तैरना भी जानते हो?"

सेठ ने उत्तर दिया "नहीं भाई! और तो सब सीख गया परंतु तैरना नहीं सीखा।।"

तब मल्लाह बोला "सेठ! मेरी तो पौन ज़िंदगी खराब गई परंतु तुम्हारी तो सारी जिन्दगी ही खराब गई।"

इतना कहकर मल्लाह तो पानी में कूदकर पार हो गया और सब सीखने और केवल तैरना न खीखनेवाला सेठ डूबकर मर गया।

हम तो अपने मन से सर्वगुणसंपन्न बने फिरते हैं और औरों के आगे अपनी डीगें हाँकते हैं। परंतु भाइयों! याद रखो! अभी हम परमेश्वर का नाम नहीं जानते। जब तक राम का नाम नहीं जानते तब तक तैरना नहीं जानते। और तैरना न आया तब तक और सब बातें जानना किस काम का? कारण संसारसा गर में कालरूपी तूफान तो आवेगा ही। इससे भाइयों! तैरना सीखो! तैरना सीखो! व परमेश्वर का नाम लेना सीखो!!!

*****

१९ सत्संग की महिमा में श्रीकृष्ण का उपदेश

श्रीमद्भागवत के एकादशस्कंध के बारहवें अध्याय में सत्संग की महिमा में श्रीभगवान् ने उद्धवजी से उपदेश करते कहा कि "दैत्य, राक्षस, पशु गंधर्व, अप्सरा, नागलोक, सिद्धलोग, चारण, यक्ष, विद्याधर और मनुष्य में भी वैश्य शूद्र, स्त्री तथा चांड़ाल कि जो रजोगुणी और तमोगुणी थे वे भी उस युग में हे उद्धव! केवल सत्संग से ही मुझको प्राप्त हुए हैं।

फिर देखो! वृत्रासुर, वृषवर्पा, बलीराजा, बाणासुर, मयदानव, बिभीषण, सुग्रीव, हनुमान्, जाम्बवान्, गजेंद्र, जटायु, तुलाधार बनिया, धर्मव्याध, कुब्जा, व्रज की गोपियां, यज्ञ करने वाले ब्राह्मणों की स्त्रियां, तथा और भी बहुत से वैसे ही जन सत्संग से मुझे प्राप्त हुए हैं ये लोग वेद नहीं पढ़े थे, पढ़ने के लिये उन्होंने महात्माओं की सेवा नहीं की थी। तप भी नहीं किया था, तब भी केवल सत्संग करने से ही मुझे प्राप्त हो गये थे। इसलिये हे उद्धव! तुम भी विधिनिषेध को छोड़कर सत्संग द्वारा सर्वात्मभाव से मेरी शरण में आओ और मुझको प्राप्त कर संसार के सब भय में से छूटो!"

सवैया

जो कोइ जाय मिलै उनसों नर, होत पवित्र लगै हरि रंगा ॥
दोष कलंक सबै मिटि जाया सु, नीचहु जाय जु होत उतंगा ॥
ज्यों जल और मलीन महा अति, गंग मिल्यो हुई जात है गंगा ।
सुंदर शुद्ध करे तत्कालजु, है जगमाहिं बडो सतसंगा ॥

*****

२० इस मिठाई का स्वाद खाने वाले को मिलता है, बात करने वाले को नहीं

एक मनुष्य ने किसी बच्चे को बहुत बढ़िया मिठाई खिलाई उसे खाकर बच्चा बहुत प्रसन्न हुआ और घर जाकर पिता से बोला "पड़ोसी ने मुझे बहुत ही बढ़िया मिठाई खिलाई। वैसी मिठाई मैंने कभी नहीं खाई मुझे वैसी ही मिठाई ला दो।"

बाप मन में विचारने लगा कि ऐसी बढ़िया मिठाई वह कौनसी थी खैर! बालक को साथ लेकर वह उस मिठाई देने वाले पड़ोसी के यहां गया और बोला 'भाई! यह बालक आपकी दी हुई मिठाई की बड़ी प्रशंसा करता है। यह तो बताओ कि उसका स्वाद कैसा है?"

उसने उत्तर दिया "उसका स्वाद तो खाने वाले को ही मालूम होता है, न कहने से स्वाद आ सकता है न सुनने से। ब्रज की प्रेम में पागल गोपियां जिस स्वाद में मस्त रहती थीं उसका स्वाद वैष्णव ही जान सकते हैं, और नहीं।"

धर्म का आनन्द भक्ति का सुख और सत्संग का मजा तो वे ही जानते हैं

जो उसका अनुभव लेते हैं, उसका वर्णन नहीं हो सकता, हमने कोई नये प्रकार का फल या पदार्थ खाया हो उसका ही स्वाद हम दूसरों को नहीं समझा सकते तब अपने हृदय में भरा हुआ ईश्वरीय आनन्द दूसरों को क्योंकर समझाया जा सकता है, उस आनन्द का स्वाद तो वाणी से बाहर है। थोथे पोथे में वह आनन्द नहीं है और न किसी दूसरे के समझाने से वह आनन्द समझ में आ सकता है। इसलिये भाइयो! जो ऐसा अलौकिक आनन्द लूटना है तो सत्संग में लग जाओ और तन, मन, धन से प्रभु में लीन हो जाओ।

*****

२१ जो बुरी वस्तुएं माया से ऊंची दीखती हैं, वे ही वस्तुएं सत्संग से नीची पड़ जाती हैं

दो मनुष्य बंबई की चौपाटी से बालकेश्वर की टेकरी (पहाड़ी) पर चढ़ने लगे, चढ़ते २ दोनों थक गये तो उनमें से एक पीछा नीचे उतर आया और दूसरा बीच २ में विश्राम लेता हुआ शनैः २ ऊपर जा पहुँचा नीचे से जो जो चीजें बहुत बड़ी दीखती थीं वे ही ऊपर चढ़ जाने से उस आदमी को छोटी छोटी दीखने लगीं। कोलाबा का लाइट हौस (दीपकगृह), राजाबाई टावर, बोरीबन्दर, सेक्रेटरियट, म्युनिसिपाल ऑफिस और मिलों (पुतलीघरों) के ऊंचे २ धुआंकाश भी उससे नीचे हो गये। परंतु जो मनुष्य नीचे उतर गया था उसको वे सब ऊंचे के ऊंचे ही दीखते रहे।

इसी तरह सत्संग और भक्ति के आगे सब कुछ नीचे हो जाते हैं और विना सत्संग या भक्ति के आगे सब कुछ ऊंचे हो जाते हैं अर्थात् व्यवहार की जाल चौपाटी अर्थात् नीचा गढ़ा है जहां से सब चीजें ऊँची ही ऊँची दिखाई देती हैं और भक्ति बालकेश्वर की ऊंची पहाड़ी है जहां से सब चीजें नीची दीखती हैं। भक्ति सत्संग औंर माया व्यवहार में इतना ही अन्तर है। यही एक बड़ा रहस्य है। इस रहस्य को समझकर उसका आनन्द लेना ही बुद्धिमानी है; उसी का नाम भक्ति है और उसी से जीवन की सफलता है, परन्तु ये सब सत्संग ही से होते हैं। इसलिये सब भाइयों को सत्संग से भक्ति की शांत पहाड़ी पर चढ़ने की हिम्मत रखनी चाहिये, परन्तु सत्संग के मार्ग में से हारकर पीछा नहीं लौटना चाहिये,

क्योंकि लौटने से पीछा गढ़े में ही गिरना पड़ता है। इसलिये भाइयो! सत्संग के मार्ग में आगे ही आगे बढ़ते जाने की इच्छा रखो! प्रबल इच्छा रखो!! हार्दिक इच्छा रखो!!!

*****

२२ सत्संग में पड़े रहने विना पार नहीं गया जा सकता

एक मनुष्य किसी बड़े आदमी के पास काम के लिये गया। द्वार बन्द था इससे उसने खटकटाया परंतु किंवाड़ खुलने में कुछ देर होने से वह पीछा चल दिया। थोड़े दिन पीछे वह फिर उसके यहां गया परंतु सेठ किंवाड़ खोलने आया इतने ही में वह लौट गया। इस तरह कई बार वह आदमी उसके यहां गया परन्तु द्वार खुलने से पहले ही पहले लौट आया। इस तरह जल्दबाजी करने से वह उस सेठ से न मिल सका और काम उसका पार न पड़ा।

हम भी उसी मनुष्य की तरह जल्दबाज हैं। हम सत्संग में जाते हैं और भक्ति करने लगते हैं परंतु उसका फल प्राप्त होने का समय आता है उससे पूर्व ही भक्ति और सत्संग को छोड़ देते हैं। फिर पीछे भी जब कोई प्रसंग आ पड़ता है तब अथवा दिवाली, होली, अथवा ग्यारस, मावस आदि दिनों में करते हैं परन्तु उससे सत्संग का कोई लाभ नहीं होता क्योंकि सत्संग करने कें लाभ स्वरूप ईश्वर की कृपा प्राप्त होने का समय आने से पहले ही हम उसे छोड़ बैठते हैं। इससे पूर्ण प्रेम और धैर्य के साथ सत्संग में लगे रहना चाहिये और एकाग्रचित्त से पूर्ण विश्वास के साथ भक्ति करना चाहिये तब ही ईश्वर की कृपा संपादन हो सकती है, जरा जरा सी स्वार्थ की बातों के लिये बीच बीच में भक्ति छोड़ देना नहीं किंतु लगातार अधिक २ विश्वास से करते ही रहना चाहिये तब ही संसार सागर तैरने में आ सकता है। याद रखो कि, संसार सागर को तैरने के लिये सत्संग से बढ़कर सुगम मार्ग दूसरा नहीं है! नहीं है!! नहीं है!!!

*****

२३ हम सत्संग में नहीं जाते इसका कारण क्या

कारण यही है कि, हम सत्संग के गुणों को नहीं जानते। जैसे किसी बच्चे के हाथ में एक बताशा और एक रुपया साथ २ रखा जाय तो वह बताशे को तो रहने देता है, क्योंकि वह मीठा लगता है और रुपये को फेंक

देता है क्योंकि अज्ञान से उसे रुपये की कीमत नहीं मालूम है।

यह उदाहरण हमको लगता तो अच्छा है परंतु हम यह नहीं जानते कि यह हम पर ही घटित होता है। बताशे रूपी मीठी लगने वाली माया में अर्थात् नाटकशाला, नाचरंग, महमानदारी, तमाशे, शृंगाररस की पुस्तकें और रूखे भोग विलास की निर्जीव वस्तुओं में हम लगे रहते हैं और सत्संग रूपी रुपये को जिससे ईश्वर रूपी हीरा प्राप्त हो सकता है हम फेंक देते हैं, परंतु यह नहीं विचारते कि जैसे एक रुपये में बहुत से बताशे आ सकते हैं वैसे ही इस संसार के थोड़े-से समय के मौज शौकं केवल माया की ही जाल है इसमें फँसकर ईश्वर को भूल जाना ही अज्ञान है सत्संग रूपी रुपये के न होनें से ऐसा होता है। इसलिये भाइयो! अनंत ब्रह्मांड़के नायक ईश्वर को भूल जाय ऐसा मत करो! मत करो!! मत करो!!! ऐसी भूल से बचने के लिये सदा सत्संग में लगे रहो!

*****

२४ जिसको सत्संग का रंग लगता है उसकी माया छूट जाती है

एक छोटी लड़की जब अपने पिता के घर थी तो अपनी बराबर वाली छोटी २ लड़कियों के साथ हँसती, बोलती और खेला करती थी, थोड़े दिन बाद जब उसका विवाह हो गया तो वह कुछ लज्जावती हो गई और घर के काम धंधे करने में लगी अब तो वे लड़कियां उसे खेलने को बुलाने आतीं तो वह जबाब देती "मेरा विवाह हो गया। अब मुझसे खेलते नहीं बनता।"

इसी तरह हम जब सत्संग में लग जाते हैं तो हमारा ईश्वर के साथ विवाह हो जाता है। फिर उस विवाहिता लड़की की तरह हमको भी सत्संग छोड़कर पराये घरों में जाना अच्छा नहीं लगता और प्रभु के नाम का रस छोड़कर लोगों की तेरी मेरी करने की इच्छा नहीं होती ऐसी हलकी इच्छाएं तो तब ही तक होती हैं जब तक हम सत्संग में नहीं लगते ईश्वर के साथ विवाह हो जाने बाद प्रभु जैसे आनंद स्वरूप पति को छोड़कर औरों की निरर्थक बातें करने सुनने को कौन जाय? याद रखो कि ऐसे सुख स्वरूप पति के साथ सत्संग से ही विवाह होता है सत्संग

विना ऐसा सुन्दर स्वरूपवान् ऐसा छैल छबीला और ऐसा कन्हैया कुँवर जैसा वर मिलने का ही नहीं यह निश्चय है।

*****

२५ सत्संग में जाने से हमको अपनी भूलें मालूम हो जाती हैं, और तब ही हम ईश्वर के मार्ग में लग सकते हैं

किसी नगर में चोरियां बहुत होती थीं। इससे दु:खित होकर वहां के राजा ने नगर के द्वार तो बंद करा दिये और दरवाजों पर तथा किले पर मजबूत पहरे रख दिये। बहुत दिन तक ऐसा ही हाल रहा तब भी चोरी होना बंद न हुआ कारण इसका यह था कि चोर उसी नगर के रहने वाले थे बाहर के नहीं अंत में सब नगर के भीतरी चोरों को पकड़ना जारी हुआ तब चोरी होना बंद हुआ।

इसी तरह हम जो पाप करते हैं वे सब अंदर ही के विकारों से हैं। इन पापों को दूर करने के लिये जो हम बाहर के दरवाजे बंद कर, अर्थात् बहुत से उपवास करें, बहुत सा स्नान करें, बहुत सा छुवाछूत का विचार रखें बहुत से तिलक छापे लगावें, बहुत सी माला कंठियें बाधें, और बहुत बड़ी २ बातें करें तो इनसे भीतर के पाप थोड़े ही मिट सकते हैं? हां! भीतरी चोरों को पकड़ने के लिये सत्संग की आवश्कता है। हमारे मन में जितनी २ इच्छाएं छिपी हुई होती हैं वे सब सत्संग करने से मालूम हो जाती हैं। हममें द्वेषबुद्धि हो, निंदा करने का स्वभाव हो, लोभ की इच्छा हो, बड़प्पन का अभिमान हो, धन, रूप या जवानी का मद हो, व्यभिचार की इच्छा हो, धूल जैसी हलकी बात में भी जी जलाने की आदत हो, अथवा और भी इसी प्रकार की अन्य बुरी २ आदतें हों तो उनको भीतरी चोर समझना चाहिये। ये चोर सत्संग से ही पकड़े जा सकते हैं। बाहर के दरवाजे बंद करने से वे पकड़ने में नहीं आते। इसलिये भीतर के विकार और दुर्गुणों को छोड़ने के लिये और पाप से बचने के लिये तथा समर्थ ईश्वर को जानने के लिये दृढ़ता के साथ सदा सत्संग में ही लगे रहो!

*****

२६ मायावादी संसारियों को सत्संग अच्छा नहीं लगता

किसी नगर में एक बार अकस्मात् पागल खाने में आग लग गई और चारों ओर से बड़ी २ ज्वालाएं उठने लगीं यह देखकर नगर निवासी लोग

तथा आग बुझाने के सरकारी एंजिन वाले दौड़कर वहां जा पहुँचे वहां जाने पर लोगों ने नीचे से क्या देखा कि ऊपर वे पागल लोग खूब नाचते कूदते और बड़ी खुशी में आकर गाते हैं। यह देख वे लोग चिल्लाकर उन लोगों से कहने लगे "भाइयो! जल्दी नीचे आओ जल्दी! तुम्हारे मकान में आग लगी है आग! जल्दी करो! देर मत करो!"

तब तो उन्होंने उत्तर दिया "जाओ! जाओ मूर्खो! ! भागो यहां से! ! ! तुमको किसने सयाना बनाया है? हमारे मकान में कभी एक चिराग भी नहीं जलता। आज बड़ी कठिनाई से जुबिली जलसे की सी रोशनी हुई है तब तुम कहते हो कि जल्दी नीचे आओ! हम ऐसे मूर्ख नहीं हैं जो तुम्हारे कहने से ऐसी बढ़िया रोशनी का मजा छोड़कर नीचे आ जायं।"

इतना कहकर वे फिर नाचने कूदने लगे और आपस में कहने लगे "ये मूर्ख लोग चाहे जितना कहें परंतु हमको नीचे नहीं जाना चाहिये हो! क्या हम इन मूर्खो के कहने से अपना मजा खो दें!"

उन लोगों के बहुत कुछ कहने समझाने पर भी उन पागलों ने एक न मानी और इस तरह पर नीचे उतर आने वाले दो चार को छोड़कर सब के सब जलकर मर गये।

इस बात का सार यह है कि सरकारी एंजिन वाले रूपी संतजन माया में जलते हुए संसारी लोगों को बहुत २ समझाकर कहते हैं कि माया की आग से बचने के लिये सत्संग करो! सत्संग करो! ! परंतु वे उलटे जबाब में यह कहते हैं कि "आज जब हमको धन मिला है, आज जब हमको घर, महल हवेलियां और बाग बगीचे मिले हैं, आज जब हमको गाड़ी घोड़े मिले हैं, आज जब हमको अच्छी स्त्री और अनेक प्रकार के कारखाने मिले हैं, आज जब हमारी बड़ी २ दूकानें चलती हैं, आज जब हमारा नगर में बड़ा नाम हो रहा है, आज जब नाटक शालाएँ, सरकस और दूसरे दिल बहलाने के साधन मिले हैं, आज जब हमको पराये पैसे से मौज शौक करके दिवाला निकाल अदालत दीवाला या गरीबी कोर्ट)Insolvent Court* में जाने का मौका मिला है, आज जब हमारे नाम अखबारों में छपने लगे हैं, आज जब हमारी जगह २ प्रशंसा होती है और आज जब हमको खिताब मिले हैं और मिलने वाले हैं तब ऐसी खुशी के दिन तुम

कहने लगे हो कि, बाबा 'बैरागियों में मिलकर सत्संग करो!" जाओ जाओ!! एक ओर हटो!!! ऐसे मजे को छोड़कर क्यों हम तुम बैरागियों में मिलें? ऐसे सुख को छोड़कर क्यों हम विरक्तों में मिलें? अपनी इतनी प्रतिष्ठा को छोड़कर हम हरिजनों में मिलें? और अपने ऐसे वैभव को त्यागकर वैष्णव बनें? जाओ! जाओ!! तुम तो मूर्ख हो! तुम कहने वाले तो पागल हो परन्तु हम सुनने वाले पागल नहीं हैं। हमारे ऐसे आनन्द के आगे तुम्हारे सत्संग वत्संग की कुछ नहीं चलेगी! अपने सत्संग को तुमही अपने पास रखो! हम तो इसी तरह मौज उड़ावेंगे। देखो तो ये बुद्धिमान् बनकर हमको समझाने आये हैं! बड़ी कठिनाई से तो ये आनन्द मिला है और अब ये कहते हैं कि इसे छोड़कर सत्संग में मिलो! देखो इन मूर्खों की बातें! जाओ! जाओ! हमारे यहां तुम्हारी कुछ नहीं चलेगी।'

भाइयो! इनमें मूर्ख कौन? मायावादी या हरिजन? हम भी इस पागलखाने के पागलों की तरह माया की आग को दीवाली की रोशनी मानते हैं, और इसी से उसमें पड़े रहते हैं परन्तु सत्संग का लाभ नहीं लेते इस उदाहरण से हमको समझना चाहिये कि ईश्वर के पवित्र नाम विना ये सब माया की आग के समान हैं। इससे इस बात की पूरी सँभाल रखना चाहिये कि उन पागलों की तरह हम भी जलकर न मर जायँ।

सवैया

तात मिलै पुनि मात मिलै, सुत भ्रात मिलै युवती सुखदाई ।
राज मिलै गज वाजि मिलै, सब साज मिलै मनवांछित पाई ।।
लोक मिलै सुरलोक मिलै विधिलोक मिलै बैकुण्ठहु जाई ।
सुंदर और मिलै सबही सुख, संत समागम दुर्लभ भाई ।।

*****

२७ सत्सङ्ग से हम और हमारे कुटुंब दोनों को लाभ होता है

सत्संग करने वाले को तो लाभ होता ही है परन्तु उसके कुटुम्ब और वंशभर को लाभ होता है। प्रमाण विना आजकल के सुधरे हुए लोग इस बात को नहीं मानेंगे इससे साधुओं का प्रमाण यहां पर दिया जाता है:–

एक बहरा आदमी किसी भक्त मंडली में नित्य कथा सुनने जाया

करता था, किसी आदमी ने उससे एक दिन पूँछा "बाबा! तुम कान से सुनते तो हो ही नहीं फिर वृथा धक्के खाने क्यों जाते हो?

उसने उत्तर दिया "भाई! मैं अपने लिये नहीं, अपने बालबच्चों के फायदे के लिये जाता हूँ।

पहले आदमी ने पूँछा "तुम खुद तो सुन ही नहीं सकते फिर तुम्हारे बच्चों का फायदा क्या होगा?

उसने उत्तर दिया "यह तो सच है कि, मैं नहीं सुनता परन्तु मुझे सत्संग में जाते मेरे लड़के नित्य देखते हैं इससे उनके हृदय में इसका संस्कार जमता जाता है, इस समय तो यह बीज बोने के समान है, परन्तु काल पाकर वह बीज उग उठेगा और तब मेरे लड़के भी मेरी तरह सत्संग में जाने लगेंगे यह लाभ कुछ ऐसा वैसा नहीं है। लड़कों बच्चों में नकल करने की बड़ी आदत होती है और जिसमें भी माता पिता की तो वे जैसी की तैसी नकल कर सकते हैं। इसलिये अपने लड़के बच्चों के आगे अपना उदाहरण रखने और उनके मन में सत्संग की छाप लगाने के लिये ही मैं सुन न सकने पर भी नित्य सत्संग में जाता हूं।"

सब भाइयों को यह बात अच्छी तरह ध्यान में रखनी चाहिये। इसमें से यह बात सीखने योग्य है कि सत्संग कैसी बड़ी चीज है। सत्संग से तो फायदा तुरंत ही होता है, परन्तु जो कदाचित् हमको लाभ न हो तब भी हमारे लड़के बच्चों के फायदे के लिये तो हमको अवश्य ही सत्संग करना चाहिये।

*****

२८ सत्संग से जो मोक्ष न हो तब भी अन्तःकरण की शुद्धि हुए विना तो रहती ही नहीं

एक चेले ने अपने गुरु से कहा "महाराज! मैं नित्य सत्संग में जाता हूं परंतु कुछ लाभ नहीं हुआ मैं तो जानता कि सत्संग में जाने से ईश्वर साक्षात्कार हो जायंगे और स्वर्ग के सुख मेरे घर में आ जायँगे। परंतु आज तक वैसा नहीं हुआ तब सत्संग में जाने से क्या लाभ?

गुरु ने उत्तर दिया "बेटा! एक काम कर! तो तुझको अपने सवाल का जबाब अपने आप मिल जायेगा" इतना कहकर गुरु ने चेले को एक बांस की टोकरी दी और कहा कि इसमें नदी में से पानी भर ला! चेला टोकरी

लेकर नदी पर गया और उसमें पानी भरने लगा परन्तु जब तक टोकरी पानी में रही तब तक तो उसमें पानी भरा रहा और बाहर निकालते ही सारा पानी बह गया! दस बीस बार इसी तरह करने पर भी जब उसमें पानी न ठहरा तो वह गुरु के पास पीछा आया और बोला "महाराज! क्या कभी टोकरी में भी पानी आया है?

गुरु ने उत्तर दिया "बेटा! देख तो सही! धीरज रखेगा तो इसमें से भी कुछ मिलेगा ही।"

दूसरे दिन फिर भी गुरु ने वही टोकरी लेकर चेले को पानी लाने को भेजा। पांच सात दिन तक इसी तरह चलता रहा परन्तु उसमें पानी आया नहीं। तब एक दिन चेला घबराकर बोला "गुरु महाराज! वृथा ही क्यों श्रम देते हो? टोकरी में भी कभी पानी आया है?"

गुरु ने कहा "बेटा! यह तो ठीक है कि, टोकरी में पानी नहीं आता परन्तु यह तो देख कि नित्य पानी में डुबकने से टोकरी में कुछ अन्तर भी पड़ा है या नहीं?"

चेले ने उत्तर दिया "महाराज! पहले यह बहुत मैली थी परंतु अब साफ हो गई और पहले बहुत कड़ी थी सो अब नरम और ढ़ीली पड़ गई।"

गुरु ने कहा "तो इतना अन्तर पड़ना कुछ कम है क्या? टोकरी में पानी न आया तो न सही परन्तु साफ तो हो गई!"

हमारे मन की भी ठीक उस बांस की टोकरी की सी ही स्थिति है। अर्थात् माया का मोटा कचरा तो उसमें ठहर जाता है परन्तु पानी जैसी पतली, नहीं नहीं, पानी से भी पतली ईश्वर की भक्ति उसमें नहीं ठहर सकती? इससे ईश्वर का स्वरूप समझ में न आवे तब भी उस टोकरी का जैसे नित्य प्रति पानी में डुबाने से मैल साफ हो गया वैसे ही नित्य प्रति सत्संग में जाने से हमारे मन पर से भी पाप का मैल हटता जाता है, और संसार के दुःखों के घाव से तथा सुखों के अभिमान से हमारे मन जो कठोर हो रहे हैं वे सत्संग से नरम अवश्य पड़ जाते हैं। यह लाभ क्या कम है। जो पाप धुल जाय और अंतःकरण की भीतर से शुद्धि हो जाय तो शनैः २ प्रभु का आनंद भी किसी दिन आपो आप आने लगेगा इसलिये भाइयो! प्रारम्भ में प्रत्यक्ष रूप पर लाभ न दीखे तब भी सत्संग में लगे ही रहो!

लगे ही रहो! !

२ पद

सतसंगतिसुख गाढ़ौ साधो २ रे, रोम रोम ह्वै बाढ़ो ।।टेक।।
अरसठ तीरथ बहैं ताहिमैं, अँगमंजन करि काढ़ो रे ।।
तृष्णा ताप आप चलि जावै, शांति शीतता चाढ़ो रे ।।१।।
या सुख तुलिवे स्वर्गलोकसुख, मोक्ष सुखहु ना चाढ़ो रे ।।
वेद पुराण गाय इमि थाके, योह सब ऊपरि माढ़ो रे ।।२।।
रामजीवन को जीवन योह सुख, रोम रोम रंग चाढ़ो रे ।।
कोटि कुसंगभंगकरि हारे, सो तो कढ़ो न काढ़ो रे ।।३।।

*****

२९ सत्संग का मजा दूर खड़े होकर देखने से नहीं आता, सच्चा मजा तो उसमें घुस पड़ने से ही आता है

जाड़े के दिन में जब हम तालाव या नदी में नहाने के लिये उतरते हैं तब पानी बड़ा ठंड़ा लगता है। थोड़े २ पैर भीग जाते हैं तब भी नहाने को मन नहीं चाहता। कमर भर पानी में घुस जाने तक भी ठंड़ लगती रहती है परंतु डुबकी मारते ही ठंड़ भाग जाती है और खूब मल २ कर नहाने की इच्छा होती है तथा तैरने को मन होता है। वैसे ही, आरंभ में सत्संग करना या धर्म पालना कठिन जान पड़ता है परंतु जब उसमें मन गहरा घुस जाता है तब कठिनाइयां भाग जाती हैं, और फिर, आनंद ही आनंद आने लगता है, सत्संग की कमी से हम लोगों में धर्म की प्रवृत्ति जागृत नहीं हुई है यही हमारा जाड़े का मौसम है, और इसी से धर्म का शांत पानी हमको ठंड़ा लगता है, परन्तु यह ठंड़ तब ही तक के लिये है जब तक हम उससे बाहर हैं, जहां भीतर घुसे कि फिर तो तैरने में मजा आने लगता है धर्म और सत्संग को भी इसी तरह समझना चाहिये। हम जब तक हरिजन नहीं हुए हैं तब तक ही हमको धर्म पालना कठिन जान पड़ता है, परन्तु जब कड़ा मन करके उसमें कूद पड़ते हैं तब वे सारी कठिनाइंया आपो आप भाग जाती हैं। इसलिये भाइयो! निर्जीव अड़चनों से न डरकर सत्संग की पाल (पार) पर से धर्म के झरने में कूद पड़ो। उसमें ठंड़ नहीं है वरन् आनंद है, ठंड़ तो बाहर खड़े लोगों के लिये है,

भीतर कूद जाने वालों के लिये तो आनंद ही आनंद है! इसे खूब याद रखो!

*****

३० बाहरी अड़चनों से सत्संग का मजा मत खो! सच्चा मजा तो भीतर ही है

एक माली ने किसी से कहा "सेठ साहब! मेरे बाग में बेर बड़े मीठे हैं। वे आपके ही खाने योग्य हैं।"

उसने उत्तर दिया "अच्छा किसी दिन देखेंगे! फुरसत मिलेगी उस दिन आऊंगा।

इसके बाद वह एक दिन उस बाग के पास होकर निकला तो मार्ग में पड़े हुए कुछ बेर उठाकर उसने चखे परन्तु वे खट्टे निकले। कुछ दिन के पीछे एक दिन फिर वह माली मिला तब सेठ ने उससे कहा "तुम तो अपने बाग के बेरों की बड़ी प्रशंसा करते थे परन्तु मैंने एक दिन उनको चखा तो वे खट्टे निकले।

माली ने पूछा "सेठ साहब! वे बेर आपने कहां से खाये?"

सेठ ने उत्तर दिया "एक दिन तुम्हारे बाग के पास होकर जाता था तब वहां पर पड़े हुए बेर मैंने चखे थे सो खट्टे निकले।"

माली ने कहा "वे खट्टे बेर तो दूर से मँगवाकर वहां पर जान बूझकर लगाये गये हैं परंतु मीठे बेर बाग के बीचों बीच लगे हैं।"

सेठ ने पूँछा "इसका कारण क्या? खट्टे बेर जान बूझकर कौन लगावेगा।?"

माली ने उत्तर दिया "मीठे बेरों की रक्षा करने के लिये खट्टे बेर लगाये गये हैं। खट्टे बेर जान बूझकर दरवाजे पर और बाहर की ओर वाले हिस्से पर इसलिये लगाये गये हैं कि बदमाश लड़के उन्हें खट्टे समझकर बाहर से ही चले जाँय और मीठे बेरों का नुकसान न करें।"

इस तरह बातें हो चुकने पर वह सेठ माली के साथ उसके बाग में गया और मीठे बेरों को खाकर बहुत प्रसन्न हुआ। इसी तरह व्रत, उपवास, तीर्थ, स्नान, दान, दर्शन, यम, नियम आदि धर्म के प्रारंभ की प्रथम सीढ़ी का ज्ञान हमको सत्संग में मिलता है और वह हमको कठिन जान पड़ता है परंतु भीतर के आत्मिक आनंद का रहस्य कुछ और ही है। इसलिये

दरवाजे पर खट्टे बेरों से निराश न होकर भीतर घुसो! जो मजा है वह तो भीतर ही है। धर्म के मार्ग में आने वाले स्नान, दान, व्रत और उपवास तो धर्म की बाड़ हैं। सच्चे फल तो सत्संग से उत्पन्न होने वाली भक्ति के ही अंदर हैं। इसलिये भाइयो! कांटे वाली बाड़ से डरकर फल के मजे को मत छोड़ो!

*****

३१ पापीजन सत्संग में नहीं जाते उसका क्या कारण?

किसी भक्त ने एक महात्मा से पूँछा कि "पापीजन सत्संग में नहीं जाते इसका कारण क्या है?"

महात्मा ने उत्तर दिया "सत्संग एक प्रकार की तोप है और उसमें होने वाले उपदेश हैं वे तोप के गोले हैं। वे गोले पापियों की छाती को फाड़ डालते हैं इससे पापीजन उन गोलों के आगे ठहर नहीं सकते अर्थात् वे सत्संग में नहीं आ सकते।"

जो सत्संग में न जाते हों उनको निश्चय पापी समझना चाहिये वे अभागे हैं! उनको धर्म ज्ञान की और ईश्वर ज्ञान की प्रबल इच्छा नहीं हुई है इससे वे दया के पात्र हैं अभी वे अपने कल्याण को नहीं समझने लगे इसी से सत्संग की तोप के उपदेश रूप गोलों को वे सहन नहीं कर सकते। हे परमेश्वर! ऐसे अभागों पर दया कर और उनको सत्संग में शामिल होने की बुद्धि दे!

*****

३२ समय मिलने और बहुत सी सुविधाएँ होने पर भी जो सत्संग का लाभ नहीं उठाते वे अंत में पछताते हैं

बरसात शुरू होने से पहले जो किसान अपना खेत हाँककर तैयार नहीं कर रखता उसके बारह महीने यों ही जाते हैं। वैसे ही जो मनुष्य अपने इस अमूल्य जीवन में सत्संग करके ईश्वर की पहचान नहीं कर लेता है उसका सारा जन्म ही खराब जाता है। यह जीवन है सो ही हमारे लिये मौसम है और मनुष्य का अवतार है वह ईश्वर की कृपा का फल है। इस मौसम अर्थात् ईश्वरीय कृपा का लाभ जो हम सत्संग करके नहीं ले सके तो वह ऐसी निकम्मी वस्तु नहीं है कि जो बार बार ही हमको मिल जाय। संसार की और २ वस्तुएं तो हमको दुबारा भी मिल सकती हैं परंतु

जिंदगी ऐसी वस्तु नहीं है जो क्षण भर के लिये भी हमको दुबारा मिल सके। ऐसा अमूल्य जीवन, सत्संग का लाभ लिये विना, ईश्वर को याद किये विना, ईश्वर का स्वरूप समझे विना, और ईश्वर की आज्ञा पालन किये विना चला जाय तो क्या थोड़े दुःख की बात है! ऐसा न होने देने के लिये भाइयो! सचेत हो! सचेत हो!! और सदा सत्संग में लगे रहो!!!

३ पद

ता सम कौन अधम अज्ञानी, जानै सतसंग बुद्धि न ठानी ।।टेक।।
सींग पूँछ बिन पशुसम सो नर, नरतनु रह्यो दिखानी ।।
कहा भयो तन भूषण पहिरे, हस्ती तुरग चढानी ।।ता० ।।१।।
हम घर संपत हमरो नौ जोबना, यों लघू जगत दिखानी ।।
खान पाग मैथुन नींदरिया, विषय नसो न अघानी ।।ता० ।।२।।
चेतन नाहिं चातुरी मांही, कालकी चाल न जानी ।।
जीवन राम जीवन बहुथोरो, जिमि घन बिज्जु दिखानी ।।ता० ।।३।।

*****

३३ कोई भी मनुष्य हमारा बुरा करे तो उससे द्वेष न मानना वरन् उसे ईश्वर की इच्छा मानकर शांत रहना

किसी ने कुत्ते पर पत्थर फेंका। पत्थर कुत्ते को लगा परन्तु कुत्ता पत्थर के साथ न लड़ा, किंतु पत्थर फेंकने वाले की ओर भोंकने लगा। कुत्ते को भी इतना ज्ञान होता है कि, फेंके हुए पत्थर से लड़ाई करने में लाभ नहीं है किंतु उसके फेंकने वाले को ढूँढकर उससे लड़ना चाहिये। खेद है कि, हमको कुत्ते जितना ज्ञान भी नहीं है।

जो हम इतना ज्ञान रखें तो हमको दुःख से लड़ना न पड़े और दुःख से दुःखित न होना पड़े क्योंकि वे दुःख भी तो फेंके हुए पत्थर की तरह ही है, उनके सामने हाथापाई और लात घूंसे करने से लाभ ही क्या? उन दुःखों को भेजने वाले की ओर देखना जरूरी है, क्योंकि दुःख अपने आप तो आते ही नहीं हैं वे तो ईश्वर के भेजने से आते हैं। इससे हमकों दुःखों की ओर न देखकर अर्थात् दुःखों से दुःखित न होकर उनके भेजने वाले परमेश्वर की ओर देखना चाहिये, अर्थात् दुःखों से बचने के लिये परमेश्वर से प्रार्थना करना चाहिये, और आगे दुःख न पड़े वैसे काम करना चाहिये। यही बचने

का उपाय है। दुःख से हारकर निराश हो बैठना बचने का उपाय नहीं है, उलटा वह तो डूबने का उपाय है।

*****

३४ हरिजन दुःख में निराश नहीं होते

तुमने देखा होगा कि, प्रायः पक्षियों को पालने वाले पहले उनके पंख काट डालते हैं। पंख इसलिये नहीं काटे जाते हैं कि, पक्षियों को उनका बोझा लगता हो परन्तु काटे इसलिये जाते हैं। कि जिससे वे उड़कर घर में से चले न जायँ। पंख काटना उन पक्षियों को दुःख देने के लिये नहीं है परन्तु वे मालिक को प्रिय होते हैं इसी से उनको आंखों के आगे से दूर न होने देने के लिये है। इसी तरह खूब याद रखना चाहिये कि, जो भक्त ईश्वर को प्यारे होते हैं उनको ही दुःख होता है। मालिक का प्रेम होते हुए भी जैसे पक्षी घर में से उड़ जाना चाहते हैं वैसे ही हम भी ईश्वर की अपार कृपा होते हुए भी उसमें से निकल भागना चाहते हैं। दयालु परमेश्वर हमको अपने ही घर में अर्थात् स्वर्ग और मोक्ष में रखना चाहता है परन्तु तब भी हम अभागे हैं कि, संसार के तुच्छ सुखों के लिये स्वर्ग छोड़ देने को तैयार होते हैं। तब विवश होकर परमेश्वर हमको दुःख देता है जिससे पंख कटा हुआ पक्षी जैसे घर छोड़कर बाहर नहीं जा सकता वैसे ही हम भी दुःख के मारे परमेश्वर के मार्ग से बाहर नहीं निकल सकते। इसलिये भाइयो! आज से समझ रखो कि, दुःख है, सो दुःख नहीं है वरन् ईश्वर की कृपा है। दुःख पाप से बचने का उपाय है, दुःख संसार सागर को पार करने की बड़ी नाव है,

*****

३५ पशुपक्षी ही अपने मालिक की आज्ञा मानते हैं तब हम परमेश्वर की आज्ञा न माने तो कितनी बुरी बात है

हमको परमेश्वर की इच्छा के अधीन होना चाहिये, क्योंकि वह हमारा स्वामी है, उसकी हम पर अनंत दया है और उसने हमको सब प्रकार के सुख दे रखे हैं। जो परमेश्वर की आज्ञा नहीं पालता और जो परमेश्वर का स्वरूप पहचानने की इच्छा नहीं करता वह पशुओं से भी नीच है क्योंकि हम देखते हैं कि, एक टुकड़ा रोटी के लिये कुत्ता अपने स्वामी का कैसा नमक हलाल रहता है, बंदर अपने मदारी की कैसी

आज्ञा पालता है और गाय अपने ग्वाल पर कितना प्रेम रखती है? जब जरा से फायदे के लिये पशु ही अपने स्वामी के लिये बहुत २ काम करते हैं तब विचार तो करो कि हम तो पशुओं से हजार दर्जे बढ़कर हैं और पशुओं के स्वामी (मनुष्य) से हमारा स्वामी (परमेश्वर) अनन्त गुना अधिक समर्थ है तब भी हम उस दयालु परमेश्वर को जानने की अंतःकरण से इच्छा नहीं करते और उसकी सुगम से सुगम आज्ञा का भी पालन नहीं करते सो क्या पशुओं से भी बढ़कर हलकापन नहीं है? विषैला सर्प भी जब अपने पालने वाले के अधीन रहता है, तब हम क्या साँप से भी बुरे हैं कि अपने पालनेवाले परमेश्वर के अधीन न रहें। देखो, तुम्हारा मन अपनी भूल स्वीकार करता है और तुम्हारा अंतःकरण कहता है कि आज से ही प्रभु के अधीन रहने का पक्का ठहराव कर लो! अपने इस ठहराव को दृढ़ और बलवान् करने के लिये शुद्धचित्त से परमेश्वर की प्रार्थना करो और प्रेमपूर्वक माँगो कि तेरी इच्छा के अधीन होने को हमें बल दो! कृपाभिलाषियो! देखो तो सही, थोड़े दिन में क्या चमत्कार जान पड़ता है! देखो तो सही कि, तुम पर ईश्वर की कैसी कृपा होती है और थोड़े ही समय में तुम कैसे बदल जाते हो! इस स्वाद को तो चखो! इसके आगे संसार के सब विषयसुखों का आनन्द तुच्छ है।

*****

३६ पति का माल खाकर व्याभिचारिणी होनेवाली स्त्री जितनी बुरी है उससे भी अधिक बुरा वह है जो ईश्वर का नमकहराम होता है

जो स्त्री अपने पति से सौभाग्य प्राप्त करती है, पति के पैसे ही से मौज उड़ाती है, पति के ही जेवर और कपड़े पहनती है, ईश्वर की शपथ खाकर पति के साथ पवित्र आचरण करने को विवाह के समय बँध जाती है और जिसको पति ने अपने सुख का साझी बनाया है, जिस पर पति ने विश्वास रख छोड़ा है, जिसको पति ने अपना दिल देर रखा है और जिसके सुख के लिये पति हजारों आपदाएं तथा कष्ट उठाता है वह स्त्री जो अपने पति को छोड़कर दूसरों से व्यभिचार करे तो उसकी कैसी नीच समझनी चाहिये? और उसको कैसा कड़ा दंड मिलना चाहिये? शास्त्र कहते हैं कि ऐसी स्त्री को बीच बाजार के या चौहट्टे के नंगी खड़ी करके सब लोगों के

देखते हुए शिकारी कुत्तों से फड़ा डालना चाहिये। अपने मनुष्य पति से विमुख होनेवाली स्त्री को जब ऐसा दंड देना लिखा है तब इस बात का तो विचार करो कि अपने महापति परमेश्वर से विमुख होनेवाले हम लोगों को कैसी बड़ी सजा होगी? उस समय अपने बचाव के लिये हमारे पास क्या उपाय है? भाइयो! प्रभु का नाम स्मरण करके सिवाय उस समय कोई भी वस्तु काम न आवेगी। इससे पूर्ण प्रेम के साथ परमेश्वर का भजन करो! भक्ति करो!! स्मरण करो!!!

*****

३७ स्वामी से वेतन लेने पर भी नमकहरामी करनेवाला नौकर जितना धिक्कारने योग्य है उससे अधिक धिक्कारने योग्य वह है जो परमेश्वर के गुणों को न माने

जो कोई मनुष्य वेतन पाने पर भी अपने स्वामी के शत्रु से जा मिले तो वह कैसा बुरा? लोगों में उसकी कैसी मानहानि हो? और सरकारी कानून के अनुसार वह कितना दोषी हो? वैसे आदमी को हम भी धिक्कारते हैं, परन्तु अपने अन्तःकरण से तो पूछो कि स्वयं हम ही अपने स्वामी परमेश्वर के साथ कैसा बर्ताव रखते और उसकीं आज्ञा को कहाँ तक पालते हैं? क्या यह पाप जब तक तुम्हारे अन्तःकरण को नहीं डसता? इतने पर भी इस पाप के लिये क्या कभी ईश्वर पर प्रेम लाकर तुमने सच्चा पश्चात्ताप किया है? भाइयो! जो पाप हो चुके हैं उनसे छूटने और दूसरे न होने के लिये शुद्धान्तःकरण से सच्चे मन से पश्चात्ताप करो। ईश्वर दयालु है। जो तुम्हारा पश्चात्ताप सच्चे दिल से होगा तो पापों के कटने में देर नहीं लगेगी। कारण पाप करनेवाले तो हम अल्पज्ञ मनुष्य है परन्तु कृपा करनेवाला सर्वज्ञ परमेश्वर है तब प्रभुकृपा के आगे पाप बिचारा किस गिनती में? परंतु मुख्य बात यह है कि, करना चाहिये। बिना किये कुछ नहीं होता। करना भी कुछ अधिक नहीं केवल इतना ही जहाँ तक बन सके, वहाँ तक किसी न किसी सूरत से अपने भाई बंधुओं को सहायता पहुँचाना और परमेश्वर का स्मरण करना बस यही सब साधनों का एक साधन है। इसलिये सोते, उठते, बैठते, चलते, फिरते, खाते, पीते और कामकाज करते भी परमेश्वर का स्मरण करो! परमेश्वर का नाम आग है और पाप है लकड़ी, अग्नि थोड़ी हो तब भी लकड़ी को

जला देना उसके लिये कठिन नहीं है। इससे भाइयो! प्रभु का नाम स्मरण करो!

*****

३८ जो बच्चे मातापिता का सामना करते हैं उनको तो हम नालायक बताते हैं परंतु हम अपने परमेश्वर के साथ कैसा बर्ताव करते हैं इसका भी तो विचार करो

जिन लकड़ों ने मातापिता से जन्म पाया, मातापिता से पोषण पाया, मातापिता से विद्या पायी, मातापिता से धन दौलत पाया, मातापिता से इज्जत पायी और मातापिताकी ही सहायता से जो स्त्री पुत्रवाले हुए वे लड़के मातापिता के अनंतगुणों को भूलकर मातापिता के विरुद्ध चलें तो वह कैसा बुरा! ऐसे बुरे चलन के लिये लोग उनको कैसा धिक्कारें? मातापिता के निःश्वास उनका कितना बिगाड़ करें? मातापिता के लाखों उपकारों का क्या ऐसा बदला होना चाहिये? यह कितना बड़ा पाप दुनियाभर के धर्मशास्त्र एकवचन होकर कहते हैं कि "ऐसे खलनायक लड़कों के लिये नर्क हैं" परंतु हमारे लिये क्या है? क्योंकि हम अपने पिता परमेश्वर से प्रेम कहाँ रखते हैं? उसकी इच्छा के अधीन होने के लिये हमने क्या क्या किया है? उसका महत्त्व और स्वरूप समझने के लिये हमने कब ध्यान दिया है? हमको केवल औरों को बुरा कहना ही आता है परंतु अपनी पहाड़ जैसी बड़ी बड़ी भूलों को हम कब देख सकते हैं? मातापिता की आज्ञा न पालनेवाले लड़कों को हम नालायक कहते हैं परंतु अपना घर भी तो हमको देखना चाहिये? हम अपने पिता परमेश्वर में कैसा भाव रखते हैं सो भी तो देखें! ईश्वर हमसे और कुछ नहीं चाहता केवल एक ही वस्तु सदाचार चाहता है। संसार और स्वर्ग के सारे सुख और वैभव तो वह हमको देता है और हमसे एक सदाचार माँगता है सो तो हमको भी देना चाहिये। सदाचार सैंकड़ों प्रकार का होता है। जो एक एक सदाचार को पकड़ने जायँ तब तो अनेक जन्म पूरे हो जाने पर भी सारे सदाचार हाथ नहीं आ सकते। इसके लिये तो सस्ते से सस्ता और सुगम से सुगम केवल एक ही उपाय है और वह उपाय परमेश्वर का नाम स्मरण करना है। नाम स्मरण करने में ही सब सदाचार आ जाते हैं। नाम में अनंत गुण और बल हैं। भृगुजी ने भगवान् से भी अधिक महिमा

भगवान् के नाम की बताई है। वे कहते हैं कि–

"नामैव तव गोविंद नाम त्वत्तः शताधिकम् ।
ददात्युच्चारणान्मुक्तिं भवानष्टांगयोगतः ।।"

अर्थात् हे गोविंद! तुम्हारा नाम ही तुमसे सौ गुना अधिक है, क्योंकि तुम्हारा नाम तो उच्चारण करने से ही मुक्ति देता है और तुम अष्टांगयोग से मुक्ति देते हो। श्रीभगवान् ने ही श्रीमद्‌गीता में कहा है कि 'यज्ञानां जपयज्ञोऽस्मि' अर्थात् 'सब यज्ञों में जपयज्ञ मैं हूं' इससे सिद्ध होता है कि परमेश्वर को नाम स्मरण बहुत प्रिय है। इसलिये भाइयो!! ईश्वर का नाम स्मरण करो! नाम जपो!! नाम रटो!!!

*****

३९ छाछ से जैसे मक्खन अलग है वैसे ही जगत् से भक्त अलग है

भाइयो! भक्त कुछ जगत् से अलग नहीं है। भक्त भी जगत् में ही होते हैं परन्तु तब भी वे जगत् से न्यारे ही रहते हैं। जैसे दूध में दही, दही से छाछ और छाछ से मक्खन निकलता है परन्तु मक्खन हो जाने बाद पीछे छाछ में नही मिल सकता। इतना ही नहीं वरन् छाछ में डाल दिये जाने पर भी मक्खन छाछ में मिलता नहीं है। वैसे ही भक्त जगत् में रहते हुए ही छाछ मक्खन की तरह माया से जुदे ही रहते हैं। गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने कहा है कि "ज्ञानियों और अज्ञानियों में अंतर इतना ही है कि अज्ञानी तो सारे काम अपने ही लिये अति आसक्ति और अहंकार के साथ करते हैं और ज्ञानी अहंभाव छोड़कर प्रत्येक काम संसार के हित के लिये और ईश्वर के निमित्त करते हैं, भक्तों और व्यवहारी लोगों में यही अंतर है।"

*****

४० स्वर्ग में कौन कौन है? सब हैं! परंतु आलसी लोग नहीं हैं

एक मनुष्य ने किसी महात्मा से पूछा कि स्वर्ग में कैसे आदमी रहते हैं। महात्मा ने उत्तर दिया 'स्वर्ग में भले आदमी हैं और बुरे भी हैं, चोर भी हैं, लुच्चे हैं, लफंगे है, व्यभिचारी है, क्रोधी हैं, लोभी है, निंदक है, लुटेरे हैं, रिश्वतखोर हैं, हत्यारे हैं, झूंठ बोलनेवाले हैं और भी बहुत प्रकार के

अपराधी हैं।"

उसने पूछा "महाराज! वे लोग स्वर्ग में कैसे पहुँच गये?"

महात्मा ने उत्तर दिया "परमेश्वर की शरण में जाने से उनके पाप छूट गये। इसी से वे स्वर्ग में पहुँच गये।

उसने पूछा 'महाराज! ऐसे ऐसे पापी ही स्वर्ग में पहुँच जाते हैं तब ऐसे कौन मनुष्य हैं जो वहाँ न पहुँच सकते हैं?"

महात्मा ने उत्तर दिया 'स्वर्ग में सब पहुँच सकते हैं केवल आलसी मनुष्य नहीं पहुँच सकते। आलसी मनुष्य भले हो तब भी स्वर्ग में जाने के अधिकारी नहीं हैं क्योंकि वे नित्यप्रति सुनते हैं सब कुछ तब भी करते कुछ नहीं है और दूसरे लोग पूर्वावस्था में पाप किये हों तब भी हरि के चरण की शरण में जाने से पापमुक्त होकर स्वर्ग में जाते हैं। इसलिये भाइयो! आलस्य छोड़कर ईश्वर का भजन करो! भजन करो!! भजन करो!!!

*****

४१ चने की मुट्ठी बंधी रखने से जैसे बंदर का हाथ घड़े में अटक जाता है वैसे ही माया हमको नहीं पकड़ती परंतु हम माया को पकड़े रखते हैं

एक तंग मुँह के घड़े में चने भरे थे। बंदर ने उसमें हाथ डालकर चने की मुट्ठी भरी परंतु जब वह निकालने लगा तो हाथ न निकला। उसने बहुत ही हाथ को खींचा ताना परन्तु मुट्ठी बड़ी और घड़े का मुँह छोटा होने से हाथ निकल सका नहीं। इस पर बंदर ने मन में समझा कि 'घड़े के भीतर से किसी ने मेरा हाथ पकड़ लिया है' और इससे वह रो रोकर अपने सजाति बंदरों से कहने लगा कि मुझे बचाओ रे बचाओ परंतु वे उसकी कुछ भी सहायता नहीं कर सके। इतने ही में उसके उस्ताद मदारी ने आकर उसे समझाया कि मुट्ठी खोल दे तो तेरा हाथ निकल जायगा। बंदर ने मुट्ठी खोल दी और उसी समय उसका हाथ निकल आया।

इसी तरह माया हमको नहीं पकड़ती परंतु हम झूठी माया को पकड़े रहते हैं जिससे हैरान हुआ करते हैं। इसलिये हर तरह माया से बचना चाहिये। माया को छोड़ने का प्रयोजन यह नहीं है कि घरबार छोड़कर वन में चले जाना परन्तु उसे छोड़ने का अर्थ यही है कि:–

संसार में ही रहता है, पर मन है मेरे पास ।
संसार में लिपटै नहीं, तो जानो मेरा दास ।।
अर्जुन सुनो गीता सार, पांडव मानना निर्धार ।।

*****

४२ कल के दिन का भरोसा नहीं है इससे कल खाने की मिठाई आज ही खा लेना इस तरह की माया बढ़ानेवाली बात न करो किंतु धर्म में जल्दी करो।

एक भट्टजी किसी मंदिर में कथा सुना रहे थे! कथा में आया कि माया मिथ्या है, देह क्षणभंगुर है और कालचक्र सदा फिरा ही करता है इससे जो काम करना हो सो आज ही कर लो, कल पर मत छोड़ो क्योंकि कल का क्या भरोसा?

वहां पर एक बच्चा भी बैठा था। उसने भी यह बात सुनी। उसका पिता उसके लिये बाजार से अच्छी अच्छी चीजें लाया करता था और उनमें से आवश्यकता के अनुसार उसको देकर बाकी दूसरे दिन के लिये रख छोड़ता था। उस दिन भी वह कुछ नई वस्तु खाने को लाया और उसमें से थोड़ी सी उस बच्चे को देकर शेष दूसरे दिन के लिये रख छोड़ने लगा। तब वह बोला–पिताजी! आज तो मुझको सारी की सारी वस्तु दे दो!"

पिता ने पूछा "क्यों! आज क्या है?"

लड़के ने उत्तर दिया "आज कथा में आया था कि माया मिथ्या है और कल का भरोसा नहीं इससे कल करने का काम आज ही कर लो! इस पर से मैंने भी यही विचार कि, जो वस्तु कल खाने की है उसे आज ही खा लेना अच्छा है, कल की किसे खबर है?"

भाइयो! हम भी कई बार अपने शास्त्रों का अर्थ उस बालक की ही तरह लगाते हैं। कथा कहने वाले का अर्थ तो यह था कि माया मिथ्या है इसलिये जहां तक बन सके वहां तक उससे बचना और अच्छे २ काम करने में उतावली करनी चाहिये इसी वचन का मायावादी उलटा अर्थ करते हैं और कहते हैं कि, कल का कुछ भरोसा नहीं इससे जो कुछ मौज

करना है सो आज ही कर लेना चाहिये जगत् के मिथ्यापन का ऐसी बातों में उपयोग करना अच्छा नहीं है ईश्वर को जानने की प्रबल इच्छा तब ही हो सकती है जब माया को मिथ्या माना जावे जब तक हम माया में अधिक २ लीन होते जायँगे तब तक परमेश्वर का स्वरूप कदापि नहीं समझ सकते इसलिये ईश्वर को जानने के लिये ही माया को मिथ्या बताया गया है स्वार्थ और मलिन विकारों को बढ़ाने वाला ऐसा अर्थ कभी नहीं करना चाहिये कि, कल का भरोसा नहीं है इससे माया को आज ही भोग लें!

*****

४३ कोई भिखारी अपने दान देने वाले को लूट ले वैसे ही ईश्वर की दी हुई शक्तियों का हम ही विरुद्ध उपयोग करते हैं

एक गरीब भिक्षुक ने किसी भले आदमी से भिक्षा माँगी तो उसने दया करके उसको एक रुपया दे दिया, रुपया लेकर वह अपने साथी दूसरे लुच्चे लफंगे भिखारियों के पास गया और बोला "अमुक मनुष्य के पास बहुत पैसा है। चलो हम उसे लूट लावें।"

भाइयो! देखो तो उसकी कैसी नीचता है! जिससे उसे एक रुपया दिया उस को लूटने को वह तैयार हो गया!

वह भिखारी और कोई नहीं हम आप ही हैं। हमने जब बहुत २ प्रार्थना की है। और हजारों बार ईश्वर से विनय पूर्वक भीख माँगी है तब कृपा करके उसने हमको यह मनुष्यावतार दिया है, परन्तु हम उसको सार्थक नहीं कर सकते, उलटे ईश्वरीय शक्ति का दुरुपयोग करते हैं। ईश्वर ने कृपा करके जिस रूप दिया है वह व्यभिचार करता है, जिसको बल दिया है अह औरों पर अत्याचार करता है जिनको ज्ञान दिया है वे दूसरों को माल ही नहीं गिनते। जिनको अधिकार दिया है वे अभिमान करते हैं, जिनको पैसा दिया है वे अपनी नीच इच्छाओं को पूरा करने ही में मौज मानते हैं जिनको त्यागी किया है वे क्रोधी होते हैं और जिनको प्रभु ने अपने मंदिर के द्वारपाल (गुरु) बनाया है वे प्रभु का द्वार ही बंद करते हैं। इस तरह हम भी उस भिखारी की तरह अपने दाता परमेश्वर को लूटने का ही काम करते हैं। इसका नाम पाप है और ईश्वरीय बखशीशों

का अच्छे से अच्छा उपयोग करना पुण्य है।

*****

४४ जिन पत्तों की आड़ में हिरन छिपा था उन्हीं को वह खा गया इससे मारा गया इसी तरह जो परमेश्वर हमको सब तरह का सुख देता है उसकी आज्ञा को हम मानते नहीं हैं, तब विचार तो करो कि, हमारी क्या दशा होगी?

एक शिकारी ने हिरन का बहुत पीछा किया तब हिरन दौड़कर एक झाड़ी में छिप गया। शिकारी भी उसके पीछे घुसा परन्तु झाड़ी घनी और दुर्गम होने से हिरन उसको न दीख सका। तब वह बाहर ही बैठ गया और हिरन के लौटने की राह देखने लगा। उधर हिरन जिन पत्तों के पीछे छिपा था उन्हीं को खाने लगा। खाते २ जब पत्ते पूरे हो गये सो हिरन की ओट मिट गई और वह दीखने लगा। उसे खुला हुआ देखते ही शिकारी लपककर उसे पास पहुँचा और कहने लगा "बोल! अब भागकर कहाँ जायगा?"

हिरन ने जबाब दिया "अब तू मुझे मार ले! मैं मरने योग्य हो गया हूं क्योंकि जिस झाड़ी ने मुझे शरण दी और मुझे बचाया उसी झाड़ी को मैंने खा डाला तब तो मैं मारने ही योग्य हुआ।"

हमारी भी यही दशा है। परमेश्वर हमारी सहायता करता है और हमको बचाता है, इतने पर भी हम उसका सामना करते हैं, और उसकी आज्ञा नहीं मानते तब उस हिरन की सी ही दशा हमारी भी हो तो क्या आश्चर्य है! इसलिये भाइयो! चेतो!! चेतो!!!

*****

४५ बहुत पानी पिलाने और राह देखने पर भी जब वृक्ष में फल न लगा तब माली ने उसे उखाड़ फैंका इसी तरह हम भी ईश्वर की इच्छा के अधीन न होंगे तो हमारी भी वही दशा होगी

बाग में बहुत से पेड़ होते हैं। उन सबको माली फल पाने की आशा से पानी पिलाता है, खाद देता है, उनका रस चूंस जानेवाले घास फूस को उनकी जड़ में से खोद फैंकता है और सब तरह से उनकी रक्षा करता है।

बहुत बरस तक इस तरह रक्षा करते करते समय निकल जाने पर भी जो पेड़ नहीं फलता उसको माली काट डालता है। काटने में उसके चित्त को दुःख होता है परन्तु जब दूसरा कोई उपाय नहीं चलता तब ही उसे काटना पड़ता है, खाद पानी देने में और फल के लिये धैर्य से राह देखने में माली कसर नहीं रखता परन्तु अन्त में जब पेड़ नही ही फलता तब वह उसे काटता और जला देता है।

हम भी जो न समझे तो अन्तमें यही दशा हमारी भी हो।ईश्वर हमारा माली है। वह हमारा भरण पोषण करता है, हमको दुःख दरदो से बचाता है और हमसे भक्तिरूप फल पाने की आशा करता है। इतना ही नहीं वरन् उसके लिये धैर्य के साथ राह देखता है परन्तु जो हम परमेश्वर के नाम को याद करेंगे नहीं, परमेश्वर की दया को समझेंगे नहीं, परमेश्वर के नियम को पालेंगे नहीं और परमेश्वर की इच्छा को मानेंगे नहीं तो उस पेड़ की तरह हमारी भी नाश हो जायगा।

*****

४६ नदी, पवन, वायु, पर्वत आदि सब ही वस्तुएँ परमेश्वर की आज्ञा पालती हैं परन्तु मनुष्य नहीं पालते

ईश्वर कहता है कि मैंने नदी से कहा कि तू बहाकर, समुद्र से कहा कि तू सदा ज्वार और भाटे में चढ़ा उतराकर तथा मर्यादा में रहकर, सूर्य से कहा कि तुम प्रकाश किया करो, वृक्षों से कहा कि तुम छाया दिया करो। फूलों से कहा कि तुम सुन्दरता बढ़ाया करो और सुगंधि फैलाया करो। तारों से कहा कि तुम आकाश में फिरा करो, वर्षा से कहा कि तू मेरी आज्ञा से बरसाकर, पर्वतों से कहा कि तुम स्थिर रहा करो, पवन से कहा कि तू फैलता रहा कर और अग्नि से कहा कि तू गरमी दिया कर। इन सबने मेरा कहना माना और वे मेरी आज्ञा के अनुसार ही चलते हैं परंतु मनुष्य मेरा कहा नहीं मानते। मैंने मनुष्य से कहा कि मेरी और देख परन्तु उसने दिया कि तेरी मैं आज्ञा नहीं मानूँगा। जैसे एक नया मस्त बैल अपने कन्धे पर जुआ नहीं रखने देता और बारम्बार बलपूर्वक जुए के नीचे से खिसक जाता है वैसे ही मनुष्य भी ईश्वर की आज्ञा पालने में खिसक जाता है, परन्तु उस बैल की तरह यह नहीं जानता कि बारम्बार बदमाशी करके जुआ न उठाने से मेरी ही हानि होगी और जुआ उठाने से मेरा

लाभ होगा तथा दाना खाने को मिलेगा। ईश्वर की आज्ञा पालने में दुःख नही है कि आनन्द है। यह सदा याद रखने की बात है।

मनुष्य अपने तईं संसार भर की सब वस्तुओं से उत्तम मानता है परन्तु यह नही समझता कि मैं उत्तम तब ही हूँ जब ईश्वरीय मार्ग में रहकर ईश्वर को जानूँ, नहीं तो संसार की सब वस्तुओं में हलका हूँ, कारण सब वस्तुएँ ईश्वर की आज्ञा का पालन करती है और उसकी महिमा दिखाती हैं। परन्तु मनुष्य अपनी निर्जीव वासना और स्वार्थ के लिये परमेश्वर की आज्ञा का भङ्ग करता है, और ईश्वर की कृपापूर्वक दी हुई अमूल्य ज्ञानशक्ति, जीवन तथा अवसरों का दुरुपयोग करता है। यही मनुष्य की सबसे बढ़कर नीचता है। इसलिये ऐसी नीचता से बचने के लिये भाइयो! प्रार्थना करो कि 'हे परमेश्वर! हमको तेरी भक्ति करने और तेरी इच्छा के अधीन होकर चलने की शक्ति दो।

*****

४७ जिस स्थान को हम एकांत समझते हैं उस स्थान में भी परमेश्वर तो है ही। इस तरह ईश्वर की सर्वव्यापकता समझने से बुरे काम नहीं होने पाते

एक शिक्षक ने अपने विद्यार्थियों से कहा "ईश्वर सर्वव्यापक है। वह सर्वत्र है, आकाश में हैं, पाताल मे है, ऊपर है, नीचे है, समुद्र में है, पर्वत में है, पृथ्वी में है, पेड़ में है, पत्ते में है, पानी में है, पवन में है और हमारे मन तक में है। जहाँ कोई न हो वहाँ भी वह है। उससे कोई भी स्थान या वस्तु खाली नहीं हैं।"

इसे सुनने वालों में एक किसान का लड़का भी था, उसने इसको बड़े ध्यान से सुना। एक दिन जब वह अपने घर आया तो उसका पिता उसे अपने साथ लेकर किसी दूसरे किसान के खेत पर पहुँचा और बोला "बेटा! मैं इस खेत में से थोड़ा घास काट लेता हूँ। तू देखता रहना कोई आदमी न आ जाय।"

लड़का बिचारा बैठ गया और पिता घास की चोरी करने लगा, थोड़ी देर में पिता ने पूछा "बेटा! कोई आता तो नहीं हैं?"

उसने उत्तर दिया "पिताजी! तुम्हारे और मेरे सिवाय यहां और कोई

तीसरा आदमी तो दीखता नहीं है परंतु मेरे गुरु ने मुझे पढ़ाया है कि:–

४ कुंड़लिया

आस पास ऊरध अधै भू दिश विदिश अकाश ।
मशक मतंग रु तृण तरू विश्वपतीको बास ।।
विश्वपतीको बास खासकर निजजनमाहीं ।
राईसम थल नाहिं जाहिं प्रभु पूरन नाहीं ।।
सोई दशरथसुत रामजीवन वन निजजन ताहीं ।
लीला करि धरि देह नीक भवतरन लखाहीं ।।१।।

लड़के के मुँह से ये शब्द सुनते ही किसान के हाथ से हँसिया छूट पड़ी। उसी दिन से उसने चोरी करना छोड़ दिया। जो ईश्वर की सर्वव्यापकता को यथार्थरूप से जानते समझते हैं वे एकांत में भी बुरा काम नहीं करते। इस बात को कभी भूलना नहीं चाहिये कि, हम जिस स्थान को एकांत समझते हैं उस स्थान में भी परमेश्वर तो मौजूद ही है।

*****

४८ ईश्वर की सर्वव्यापकता राजा के आगे नौकर बुरा काम नहीं कर सकते

जो ईश्वर को सर्वव्यापी समझते हैं वे एकांत में भी बुरा काम नहीं कर सकते, कारण एकांत में भी ईश्वर तो हमारे पास, हमारे सामने, हमारे आसपास, हमारे साथ और हम में ही होता है। इससे जैसे लड़का गुरु के आगे, पुत्र माता पिता के आगे, स्त्री पति के आगे, सेवक स्वामी के आगे और सिपाही राजा के आगे बुरा काम नहीं कर सकता वैसे ही जो ईश्वर को सर्वव्यापी समझते हैं वे भक्त भी ईश्वर के आगे बुरे काम वा बुरे विचार नहीं कर सकते क्योंकि वैसे भक्त केवल वचन से ही नहीं परंतु मन से भी इस बात को जानते हैं कि ईश्वर सब जगह है। इसलिये पाप से छूटने के लिये हम सब भाइयों को ईश्वर को सर्वव्यापी मानने का अभ्यास बढ़ाना चाहिये।

*****

४९ गुरु ने पूछा कि ईश्वर कहाँ है? शिष्य ने कहा कि; ईश्वर कहाँ नहीं है

ईश्वर की सर्वव्यापकता समझाते २ परीक्षा लेने के लिये गुरु ने शिष्यों से पूछा "ईश्वर कहाँ है? जो इसका उत्तर देगा उसको मैं एक नारंगी दूंगा।'

एक शिष्य ने उत्तर दिया "ईश्वर कहाँ नहीं है? इसका उत्तर देने वाले को मैं दो नारंगी दूंगा।"

तात्पर्य यह कि, ईश्वर सर्वत्र है। इसलिये कहीं भी एकांत में भी कभी पाप नहीं करना चाहिये। ईश्वर को सर्वव्यापी समझना पाप से बचने के लिये है केवल मुँह से कहने के लिये नहीं है। सर्वव्यापकता समझने से यह बात समझ में आ जाती है कि, मछलियाँ जैसे पानी में रहती हैं, पक्षी जैसे हवा से घिरे रहते हैं और फूल जैसे माला में पिरोये रहते हैं वैसे ही हम ईश्वर में और ईश्वर हम में समाया रहता है।

श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है:-

"मत्तः परतरं नान्यत् किंचिदस्ति धनंजय ।
मयि सर्वमिदं प्रोतं सूत्रे मणिगणा इव ।।"

अ० ७ श्लो० ७

अर्थ–हे अर्जुन! मेरे सिवाय और कुछ भी सत्य नहीं है। जैसे एक धागे में कई दाने पिरोये रहते हैं वैसे मुझ में यह सारा जगत् पिरोया हुआ है।

भगवान् ने और भी कहा है कि:-

यो मां पश्यति सर्वत्र सर्वं च मयि पश्यति ।
तस्याहं न प्रणश्यामि स च मे न प्रणश्यति ।।"

अ० ६ श्लो० ३०

अर्थ–जो सब में मुझे देखता है, और सबको मुझ में देखता है उससे मैं दूर नहीं हूं और वह मुझसे दूर नहीं है।

*****

५० भक्त का ईश्वर भी बुरा नहीं कर सकता तब निंदा करने वाले तो कर ही क्या सकते हैं

कबीरजी से किसी भक्त ने पूछा "तुम्हारा ईश्वर कैसा है? कबीरजी ने उत्तर दिया "मेरा ईश्वर सर्वशक्तिमान् है। वह चाहे सो कर सकता है।"

भक्त ने कहा "यह बात झूंठी है एक बात ऐसी है कि, जो तेरे ईश्वर से भी नहीं हो सकती।"

कबीरजी ने उत्तर दिया "संसार में ऐसी कोई बात है ही नहीं जो मेरे ईश्वर से न हो सकती हो।

भक्त ने कहा "अपने भक्त का बुरा करना ईश्वर से भी नहीं हो सकता।"

यह सुनकर कबीरजी हार मान गये। उन्होंने कहा "तुम्हारा कहना ठीक है। ईश्वर सर्व शक्तिमान् है परन्तु वह अपने भक्त का बुरा करने को समर्थ नहीं है।"

इन दोनों बड़े २ भक्तों का यह संवाद क्या कम शिक्षा देने वाला है? भक्त पर ईश्वर की कैसी अटूट दया होती है। भक्तिमान् भाइयो! लोग चाहे तुम्हारी दिल्लगी करें परंतु तुम निराश न हो! स्वयं ईश्वर ही जब तुम्हारा बुरा नहीं कर सकता तब दूसरे तुम्हारी निंदा करके क्या फल पा सकते हैं इससे सदा भक्ति में लगे रहो! भक्ति में लगे रहो!! यहां पर लोगों की दृष्टि में तुम्हारी कीमत चाहे कम हो परंतु परमेश्वर के दरबार में तुम्हारा हक पहला है और दरजा बड़ा है। जो तुम्हारी निंदा करते हैं वे तुम्हारी ऊंचे दरजे को देखकर जलते हैं ऐसी निंदा से डरकर भक्ति मत छोड़ देना! तुम्हारे विपक्ष में तो थोड़े से खराब आदमी ही होंगे परंतु तुम्हारे पक्ष में तो स्वयं परमेश्वर है। भगवान् ने कहा है कि:–

"अनन्याश्चिंतयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥"

अ० ९ श्लो० २२

अर्थ–जो आदमी अनंतभाव से मेरा चिंतवन करता है और मेरी ही भक्ति करता है उस समान चित्त वाले के योगमोक्ष की मैं रक्षा करता हूं।

५ पद

दिलसो मत बिसरो न कबऊँ बसे क्युं ना कोश करोर ।।टेक।।
गगनमंडल में बसत चंद्रमा धरनी पै बसत चकोर ।।१।।
गगनमंडल मैं घन गरजत हैं, धरनी पै कूकत मोर ।।२।।
रामशरण मन बसत सांवरो, लगरही प्रेम की डोर ।।३।।

*****

५१ भाईयो! कैसे आश्चर्य की बात है कि, यहां के कोर्ट के केस के लिये तो इतनी खटपट और इतना खर्च करते हैं और मुक्ति के केस के लिये कुछ भी नहीं!

हाईकोट में हमारा कोई भारी मामला चलता हो तो उसके लिये कितनी बड़ी २ तजवीजें करनी पड़ती हैं, कैसे बड़े २ वकील बैरिस्टर करने पड़ते हैं, कितना भारी खर्च करना पड़ता है, और कितनी चिंता रहती है? यह सब क्यों करना पड़ता है? केवल मुकद्दमा जीतने को! कारण हार जाने से खर्च उठाना पड़ता है, मान मर्यादा कम हो जाती है और बड़ी हानि सहनी पड़ती है। जब एक ऐसे साधारण मामलेके लिये ही हमको इतना करना पड़ता है, और उसमें हार जाने से ही इतनी बड़ी हानि होती है तब विचार करके तो देखो कि हमारा मुक्ति पाने का मामला कितना बड़ा है? उसमें हार जाने से कितनी बड़ी हानि होती है कि सारा जीवन ही रद्द हो जाता है? इतने पर भी इस मामले को जीतने के लिये हम कुछ भी तजवीज या शोच नहीं करते। इस भयंकर बेपरवाही का हम अपने मालिक परमेश्वर के आगे क्या उत्तर देंगे?

५२ जिसके बाहर से तो तूफान की फटकार लगे और भीतर तले में हो जाय छिद्र, वह जहाज कहां तक बच सकता है? इसी तरह दुनिया तो बिगड़ी हुई है ही और हमारा मन भी बिगड़ जाय तब काम कैसे चले?

जिस जहाज को बाहर से तो तूफान का धक्का लगे और भीतर तले में छिद्र हो जाय उस जहाज के बचने की क्या आशा? वैसे जहाज में बैठे हुए यात्रियों का तो नाश ही होता है। वैसे ही जहाज के बाहर के तूफान की तरह तो हमारे आसपास की दुनिया बिगड़ी हुई है और भीतरी छिद्र की तरह जो हमारा मन भी बिगड़ा हुआ हो तो फिर बचने की क्या आशा?

जो जहाज के भीतर छिद्र न हो तो बाहरी तूफान के आगे वह टिक भी जा सकता है, वैसे ही हमारा मन दृढ़ और भक्तिमान् हो तो बाहरी दुनिया के आगे टिकाव हो सकता है, परंतु जो मन ही बिगड़ा हुआ हो तो फिर बचने की कोई आशा नहीं। इससे भाइयो! अपने मन को सुधारो! मन को सुधारना ही सबसे कठिन काम है और वही सबसे जरूरी है। महात्माओं ने कहा है।

"मन एव मनुष्याणां कारणं बंधमोक्षयोः ।"

अर्थात् मनुष्य का मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है। भगवान् ने भी गीता में कहा है।

"बंधुरात्मात्मनस्तस्य येनात्मैवात्मना जितः ।
अनात्मनस्तु शत्रुत्वे वर्त्तेतात्मैव शत्रुवत् ।।"

अ० ६० श्लो० ६०

अर्थ–जिसने अपने मन (आत्मा) से मन को जीता है उसका मन हीं उसका मित्र है और जिसने मन से मन को नहीं जीता उसका मन ही शत्रु बनकर शत्रु का काम करता है।

इसलिये भाइयो! मन को वश में करना सीखो! और संसार की बिगड़ी हुई वस्तुओं से बचने का यत्न करो!

*****

५३ घर में आग लगी, सब बच गया परंतु बच्चा भीतर रह गया

किसी घर में आग लग गई घर वाला सब सामान बाहर निकालने लगा, उसने अलमारी, कुरसी, सन्दूक, कपड़ों की गठरी, पुस्तकें, चित्र, खजाना आदि बहुत सी वस्तुएँ बाहर निकालीं इतने ही में आग बढ़ निकली और भीतर जा सकने योग्य न रहा। तब किसी ने उससे पूछा "भाई! सब बाहर निकल आया या कुछ भीतर भी रह गया?"

उसने इधर उधर देखकर कहा "और तो सब सामान निकल आया परन्तु मेरा एक छोटा बच्चा भीतर का भीतर ही रह गया।"

यह सुनकर सब लोग उसे फटकार ने और कहने लगे "अरे मूर्ख! कपड़े लत्ते और धन दौलत तो बाहर निकाल लाया और बच्चे को भीतर भूल आया! हाय! हाय! अफसोस! बच्चा जल गया!"

भाइयो! हम भी इसी तरह करते हैं। अपने आत्मारूप निर्दोष बालक को हम भी भूल जाते हैं। उसको तो हम मायारूपी आग में छोड़ देते हैं और जिन चीजों की वास्तव में कुछ कीमत नहीं है वैसी मोहक वस्तुओं को इकट्ठा करने में हम रात दिन लगे रहते हैं, इसलिये भाइयो! आग तो लगी हुई है ही परन्तु अभी वह बढ़ी नहीं है तब तक कुरसी, मेज आदि को छोड़कर अपने बच्चे को बचालो! अपने आत्मा को बचालो! बचालो!! बचालो!!! उसकी अधोगति न करो! उसका नाश मत करो! याद रखो कि, तुम्हारी कुरसी, मेज और माल खजाने की कीमत उसके करोड़वें हिस्से के बराबर भी नहीं है, अब भी समय है चेतो! चेतो! समय निकल जाने पर कुछ भी नहीं बन सकेगा!

*****

५४ नालायकी करके लड़का बाप के घर में से निकल गया अन्त में दुःखित होकर जब उसने क्षमा मांगी तब पिता ने कह दिया कि बेटा! घर में जो कुछ है सब तेरा ही है! वैसे ही ईश्वर कहता है कि, मेरे मार्ग में मेरे घर में आओ तो सब तुम्हारा ही है

एक लड़का अपने भले माता पिता की आज्ञा का उल्लंघन करने लगा और पिता माता को छोड़कर घर से चला गया। पिता के मित्रों ने उसे बहुत २ समझाया परन्तु उस नालायक लड़के ने एक भी न मानी थोड़े ही दिन में उसकी बहुत बुरी दशा हो गई। झूंठी माया के झूंठे भोग विलास से वह लड़का बड़ा भोगी रोगी हो गया और यहां तक तंग हुआ कि पहनने को चिथरे तक न रहे। अन्त में लाचार हो वह अपने पिता के पास गया और दीनता से अपने अपराधों की क्षमा मांगने लगा तब पिता ने कहा "बेटा! मुझे तुझसे द्वेष तो है ही नहीं! मैंने तुझे निकाला नहीं है तू ही आपो आप निकल गया है। तू अपनी चाल सुधार तो मेरे धन दौलत का मालिक है, तू पाप करना छोड़ दे तो फिर तू मेरा है और मैं तेरा हूँ।"

इसी तरह हमारा समर्थ पिता ईश्वर बड़ा दयालु है परन्तु हम ही उसकी परवाह नहीं करते और उसे छोड़ देते हैं तब दुःख पाते हैं इससे सुख पाने का सच्चा उपाय यही है कि सर्वात्म भाव से ईश्वर की शरण में जाना और खुले दिल से दीनता पूर्वक प्रेम से क्षमाप्रार्थी होना, ऐसा करने

से ईश्वर हमारा ही है। भगवान् ने गीता में कहा है:—

"समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेषोऽस्ति न प्रियः ।
ये भजंति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम् ।।"

अ० ९ श्लो० २९

अर्थ—मैं सर्वभूतों में समान हूं। मुझे किसी से द्वेष नहीं है और किसी से स्नेह नहीं है, परन्तु तब भी जो भक्ति पूर्वक मुझे भजता है वह मुझ में है और मैं उसमें हूँ।

६ पद

भक्तिपदारथ नीको, साधी भक्तिपदारथ नीको हो ।।टेक।।
याके आगे स्वर्गलोक पुनि, ब्रह्मलोकहू फीको हो ।
पुण्य भोगि पडबेके कारन, संशय जाय न जीको हो ।।१।।
हरिजन सकल त्यागि निशदिनहू, पावैं नाम अमीको हो ।
धन्य धन्य ताके जीवनको, डर नहिं कालबलीको हो ।।२।।
नंदलालगोपाललालकी, रति बिनु सुख नहिं जीको हो ।
सकल सुकृतमधि हरिभक्तिहु तिमि, जिमि माथेपर टीको हो ।।

*****

५५ पापियों को चिंताग्रस्त नहीं होना चाहिये कारण रोगी वैद्य के पास जाय तो वैद्य को असाध्य रोगी की चिंता अधिक रहती है। इसी तरह हम भी परमेश्वर के पास चले जाँय तो हमारी चिंता उसको करनी पड़ती है

हमसे चलते फिरते, सोते बैठते, खाते पीते, हँसते बोलते और कामधन्धा करते किसी न किसी प्रकार का मन, वाणी या कर्म से छोटा मोटा पाप बन ही जाता है। ऐसे पाप से कोई भी नहीं बच सकता भगवान् ने भी कहा है:—

"सहजं कर्म कौंतेय सदोषमपि न त्यजेत् ।
सर्वारंभा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः ।।"

अ० १८ श्लो० ४८

अर्थ—हे अर्जुन! सब कर्मदोष वाले हैं, जैसे धुआं विना आग नहीं हो

सकती वैसे ही दोष विना कर्म नहीं हो सकते। इसलिये कर्म दोषवाले होने पर भी स्वभाव से प्राप्त होने वाले सहज कर्म करना चाहिये। कर्म दोषवाले हैं तब भी उनको किये विना काम नहीं चल सकता इसी से पुराने ऋषियों ने कहा है।

"पापोऽहं पापकर्माऽहं पापात्मा पापसंभवः ।
त्राहि मां पुंडरीकाक्ष सर्वपापहरो मम ॥"

[प्राचीन ऋषियों की प्रार्थना]

इस तरह हम पाप में पड़े हुए हैं परंतु वे पाप हरि की शरण में जाने से हट जाते हैं। इसलिये पापी भी जो प्रभु की शरण में चले जाय तो उनको कुछ चिंता की बात नहीं है। क्योंकि ईश्वर दयालु है, वह इतना दयालु है कि, उसकी दया का हमको ख्याल तक नहीं आ सकता जैसे २ हमारे पाप बढ़ते जाते हैं वैसे २ उसकी दयालुता भी बढ़ती जाती है, इससे पापियों को भी निराश नहीं होना चाहिये क्योंकि उनके लिये तो और भी अच्छा अवसर है। जैसे माली सूखते हुए नये निर्बल पौधे को वारंवार पानी पिलाता है, जैसे माता पिता अपने अंधे, लूले, लँगड़े, पागल या बीमार बच्चों से अधिक सावधानी रखते हैं जैसे गुरू मंदबुद्धि शिष्यों के साथ अधिक मगजपच्ची करता है, और जैसे डॉक्टर असाध्य रोगी की अधिक खबरदारी रखता है वैसे ही दयालु परमेश्वर पापियों को अधिक संभाल लेता है, परन्तु शर्त इसमें इतनी ही है कि, उसकी शरण में जाना और उसकी आज्ञा पालना चाहिये। जो प्रभु की शरण ली तो फिर पाप कूंचकर जाते हैं। स्वयं भगवान् ने गीता में कहा है।

"सर्वधर्मान्परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज ।
अहं त्वा सर्वपापेभ्यो मोक्षयिष्यामि मा शुचः ॥"

अ० १८ श्लो० ६६

अर्थ–सब धर्मों को छोड़कर एक मेरी शरण में आजा! तू सौच मतकर! मैं तुझको सब पापों से छुड़ा दूंगा और मोक्ष दूंगा।

ईश्वर की इतनी बड़ी दया है और उसने प्रण किया है इससे पापियों को चिंता में न पड़कर सच्चे मन और दीनता से उसकी शरण में जाना चाहिये। अब भी कुछ बिगड़ा नहीं है यद्यपि देर हो गई है तब भी अभी

भगवान् की शरण लेकर क्षमा माँगने योग्य समय है। इससे भाइयो! पाप की नींद में से जागो! जागो!! और अपने हित को समझो!!! हरि की शरण बिना पाप नाश करने का दूसरा उपाय नहीं है इससे जो पाप बन गये हैं उनसे न घबराकर ईश्वर की शरण गहो! और सच्चे मन से क्षमा मांगो, तो तुम्हारे पाप कट जायँगे और तुमको अवश्य क्षमा मिलेगी।

*****

५६ ईश्वर के दिये हुए वैभवों को ईश्वर का स्मरण किये विना भोगना चोरी करने समान है

एक साहूकार ने अपने रहने के लिये एक बहुत बड़ा सुन्दर मकान बनाया और लाखों रुपये खर्च करके सब प्रकार के नये २ सामान से सजाया। थोड़े दिन बाद एक दिन वह किसी महात्मा को अपना मकान दिखाने के लिये घर ले गया। सेठ ने उसको अपना सारा मकान दिखाया और वैभव भी दिखाया इस अरसे में महात्मा को थूँकने की जरूरत पड़ी परंतु वहां कहीं भी थूकने की जगह न मिली। जहाँ देखो वहाँ सुंदर गलीचे, बड़े २ कांच बड़े २ खटछप्पर और मखमल से मढ़ी हुई कुरसियां तथा आराम कुरसियां ही देखने में आईं। सारा मकान देख चुकने पर महात्मा ने पूछा "बाबा इसमें मंदिर कहां है? ईश्वर प्रार्थना का स्थान कौनसा है?"

सेठ ने उत्तर दिया "महाराज! वह तो मैंने इसमें नहीं बनवाया?"

इतना सुनते ही साधु ने सेठ के मुँह पर थूंक दिया। तब तो वह बड़ा नाराज हुआ और कहने लगा "महाराज! यह क्या? यह भी क्या रीति है?"

साधु ने कहा "तो क्या करूं? तुम्हारे इस सुंदर घर में तुम्हारे मुँह के सिवाय दूसरी मुझे थूंकने की कोई जगह ही नहीं दीखती, क्योंकि अपने लिये तो तुमने इतना बड़ा और बढ़िया मकान बनाया परंतु जिसने तुमको इतना वैभव दिया उस परमेश्वर को स्मरण करने के लिये इसमें कहीं एक छोटी सी कोठरी भी न बनवाई!"

इतना सुनकर सेठ लज्जित हो गया और क्रोध उसका जाता रहा।

इस पर से हमको यह बात सीखने की है कि प्रत्येक काम में हमको ईश्वर को आगे रखना और प्रत्येक शुभ कर्म ईश्वर के अर्पण करना

चाहिये, जो हम ऐसा करें तो सारे ठाठबाठ और वैभव में भी हम निर्दोष रह सकते हैं, परंतु अपने उत्पन्न करनेवाले परमेश्वर को अपने दयालु पिता को भूल जांय और सब कुछ केवल अपने ही लिये करें तो वही पाप है। भगवान् ने भी कहा है:–

"इष्टान्भोगान्हि वो देवा दास्यंते यज्ञभाविताः ।
तैर्दत्तानप्रदायैभ्यो यो भुंक्ते स्तेन एव सः ॥"

अ० ३, श्लोक १२

अर्थ–देवों का दिया हुआ देवों के अर्पण किये बिना जो भोगता है उसको चोर ही समझना चाहिये।

इससे पापों से बचने के लिये हमको प्रत्येक काम महान् प्रभु के पवित्र नाम से प्रभु के अर्पण करना चाहिये।

*****

५७ बडप्पन का अभिमान मत करो! अपने गांव में या अपनी जाति में तुम बड़े होगे परंतु जगत् में तुम किसी गिनती में नहीं हो

किसी धनवान् ने एक ज्ञानी संन्यासी को भोजन के लिये अपने घर बुलाया। बातें करते करते उसने अपना वैभव दिखाने के लिये कहा कि यह हवेली मेरी है, सामने का बँगला मेरा है, अमुक पुतलीघर मेरा है, उसके पास का तालाब भी मेरा है, पासवाला मकान लेने की इच्छा है, अमुक नगर में मेरी कोठी है और अमुक स्थान में मेरी हवेली है। इस तरह वह अपनी बड़ाई मारने लगा। संन्यासी त्यागी और ज्ञानी था। उसको ये बातें अच्छी न लगीं, उसने समझ लिया कि यह अभिमानी है, ईश्वर के अखूट वैभव में से इसको अणु का भी अणु जितना अंश मिला है उसे भी यह नहीं पचा सकता। उसने अपने मन में विचारा कि इसके लिये इसको अवश्य समझाना चाहिये क्योंकि गृहस्थ के घर साधु जाय तो उसका यही फल है वह यह भी जानता था कि आजकल के धनवान् ऐसे नहीं होते जो साधुओं के उपदेशपूर्ण कटुवचनों को सहन कर सकें। इसने उसने मन में एक तजवीज सोची। पास ही में सेठ का लड़का पढ़ रहा था और नक्शा देखना सीखता था। उससे साधु ने पूछा "यह क्या है?"

लड़के ने उत्तर दिया "पृथ्वी का नक्शा"

संन्यासी ने पूछा "इसमें हिन्दुस्तान कहाँ है?"

लड़के ने उस पर अंगुली फेरकर कहा "यह है हिन्दुस्तान"

संन्यासी ने कहा "इतने बड़े नक्शे में हिन्दुस्तान इतना ही सा है?"

लड़के ने कहा "हां महाराज! सारी दुनियां के आगे हिंदुस्तान कितना सा?"

साधु ने पूछा "इसमें बंबई कहां पर है?"

लड़के ने जबाब दिया "महाराज! यह जरा सी बिंदु है वही बंबई है!"

साधु ने पूछा "इसमें तेरे पिता का पुतलीघर कहां है सो बता"

लड़का साधु के मुँह की ओर देखने लगा और बोला "महाराज! इस नक्शे में पुतलीघर नहीं है।"

साधु ने पूछा "इतना बड़ा कारखाना और इतनी बड़ी हवेली हैं, फिर भी वह इसमें क्यों नहीं?"

लड़के ने जबाब दिया "महाराज! पृथ्वी के नक्शे में हिंदुस्तान एक अमरूद के बराबर है और हिंदुस्तान में बंबई एक बिंदु के समान है उसमें हमारा मकान कहाँ से हो? दुनिया के आगे हमारा मकान किस गिनती में?"

साधु ने सेठ की ओर देखकर कहा "देखो सेठ! यह तुम्हारा लड़का क्या कहता है! दुनियां के एक बिंदु में से तुम एक परमाणु भी नहीं हो परंतु तब भी तुमको कितना अभिमान है? अपने मन में तुम चाहो जितने बड़े हो जाओ परंतु जगत् के हिसाब में और परमेश्वर के दरबार में तुम किसी भी गिनती में नहीं हो! इससे झूँठा अभिमान न करो! जो जगत् में बड़ा होना हो और परमेश्वर के पास भला बनना हो तो दान परमार्थ करो! अपना अपना करने से काम नहीं चलेगा। अहंकार को प्रभु ने आसुरीभाव कहा है।" गीता में लिखा है :–

"दंभो दर्पोऽभिमानश्च क्रोधः पारुष्यमेव च ।
अज्ञानं चाभिजातस्य पार्थ संपदमासुरीम् ।।"

अं० १६, श्लोक ४

अर्थ–हे अर्जुन! दंभ, दर्प, अहंकार, क्रोध, पारुष्य और अज्ञान ये आसुरी संपत्ति है। ऐसी आसुरी संपत्ति में फँस जाने से सच्ची भक्ति नहीं हो सकती। इससे किसी भी नाशवंत वस्तु का अभिमान नहीं करना

चाहिये।

यह सुनकर वह सेठ लज्जित हो गया। उसको अपनी भूल स्पष्ट रूप से मालूम हो गई। उसी दिन उसने वैसी भूल फिर न करने का पूरा पूरा विचार कर लिया। हमको भी ऐसी भूलों से, ऐसे पापों से बचते रहना का प्रयत्न करना चाहिये।

*****

५८ राजा और विदूषक। ऊपर तलवार और नीचे आग

किसी राजा के पास एक मसखरा रहता था। वह मसखरी करने में बड़ा प्रवीण था। चाहे जिस तरह से विचित्र मसखरी निकालकर वह लोगों को हँसाया करता था। एक दिन उसने राजा को हँसाने के लिये कई प्रकार की हँसी दिल्लगी की, बहुत से ढोंग बनाये और अनेक युक्तियां लडाईं परंतु तब भी राजा को हँसी न आई। तब उसने राजा से पूछा "महाराज! आज किसी भी तरह आपको हँसी नहीं आती, इसका क्या कारण है?"

राजा ने उत्तर दिया "इसका भेद किसी दिन खुल जायगा।"

कई दिनौं के बाद एक दिन राजा ने जान बूझकर किसी बहाने से मसखरे पर बड़ा क्रोध किया और उसे एक टूटी कुरसी पर बैठाया, कुरसी ने नीचे उसने एक जलती हुई आग की अंगीठी रखवाई और शिर पर घड़ी भर में टूट पड़ने योग्य एक पतली रस्सी में बांधकर नंगी तलवार लटकवा दी। अब तो मसखरा बहुत डर गया। प्रथम तो कुरसी ही टूटी हुई थी, फिर नीचे आग दहक रही थी और सबसे बनकर शिर पर नंगी तलवार लटकती थी जिसके लिये यह नहीं मालूम था कि कब टूटकर गिर पड़ेगी। इसके मारे बिचारा विदूषक थर थर कांपता था। वैसे ही में राजा ने उसके हाथ में मिठाई दी और कहा कि इसे खुश होकर खा। तब मसखरा बोला "महाराज! इस समय मिठाई अच्छी नहीं लगती। यह तलवार और अँगीठी हटाई जाय तो मिठाई भावे! इस काल के गाल में फँसे हुए को मौज कहाँ? इस समय तो राम! राम! के सिवाय कुछ भी नहीं सूझता।"

राजा ने कहा "तू उस दिन मुझे फँसाना चाहता था परंतु मुझे हँसी कैसे आती! कारण हमारे शिर पर तो सदा मौत की तलवार लटका करती है, इस बात का कुछ भी भरोसा नहीं है कि काल कब आ

दबावेगा। चिंतारूपी अँगीठी नीचे मौजूद ही है। यह हम जानते ही हैं कि, आगे या पीछे किसी न किसी दिन हमको इस अमरशय्या (चिता) में सोना है और राजगद्दी तथा अन्य अधिकाररूपी टूटी कुरसी पर हम बैठे हुए हैं। ऐसी दशा में हँसी कैसे आ सकती है? इसी से मुझे हँसना नहीं आता। मुझे तो प्रभु के भजन में मस्त रहना ही अच्छा लगता है।

भाइयो! हम सब लोगों की स्थिति ऐसी ही है, इसलिये समय है तब तक हमको सचेत हो जाना चाहिये। सचेतों के लिये भी तलवार और अँगीठी तो है ही परंतु अंतर इतना है कि ईश्वर के पवित्रनाम से उनको काल का भय नहीं लगता, तलवार और अँगीठी के बीच में भी वै धैर्यवान् रहते हैं और उस टूटी हुई कुरसी पर बैठकर भी वे सार्थकता कर लेते हैं परंतु बिना चेते हुए उनसे डरते हैं, दु:खी होते हैं और नरक में जाते हैं। इससे मृत्यु को सुधार लेना ही अच्छा है। भगवान् ने भी कहा है—

"तस्मात्सर्वेषु कालेषु मामनुस्मर युद्धच च।
मय्यर्पितमनोबुद्धिर्मामेवैष्यस्यसंशयम् ॥"

गी० अ० ८, श्लोक ७

अर्थ—इसलिये सदा मेरा स्मरण कर और युद्ध आदि स्वधर्माचरण कर, मुझको मन और बुद्धि अर्पण करने से तू मुझको ही प्राप्त होगा, इसमें संदेह नहीं है।

इस तरह पर परमेश्वर हमारे साथ वचनवद्ध होता है, इससे तुच्छ भोग विलास और हँसी दिल्लगी तथा नाच तमाशे छोड़कर ईश्वरभजन में मस्त रहना चाहिये, यही जीवन का कर्तव्य और यही जीवन की सार्थकता है।

*****

५९ अपनी बुराई करनेवाले पर भी भलाई ही करना सज्जन का स्वभाव है, बेर का वृक्ष पत्थर मारने पर भी फल ही देता है

एक राजा शिकार के लिये वन में गया और थककर एक बेर के वृक्ष के नीचे लेट गया, उसी समय वहाँ होकर एक भिक्षुक निकला। भिक्षुक भूख से पीड़ित हो रहा था, उस पेड़ पर बहुत पक्के बेर लगे देखकर उसके दूर ही से उस पर एक कंकर फेंका, कंकर पेड़ में लगकर नीचे सोते हुए राजा पर गिरा, तुरंत सिपाहियों ने उस भिक्षुक को पकड़कर राजा के पास पहुँचाया। राजा ने उससे पूछा "तूने मुझ पर पत्थर क्यों फेंका?"

भिक्षुक ने नम्रता से उत्तर दिया "महाराज! मैंने आप पर पत्थर नहीं फेंका, मैंने तो उस बेर के वृक्ष पर इस आशा से पत्थर फेंका था कि, कुछ फल गिरें तो मैं अपनी भूख मिटाऊं!"

भिक्षुक की बात सुनकर राजा को उस पर दया आई और उसने अंजली भरके उसको मोहरें दे दीं, तब तो सेवक बोले "महाराज! इसने तो आपको पत्थर मारा है फिर आप इसको मोहरें क्यों देते हैं?"

राजा ने कहा "सुनो भाइयो! बेर का वृक्ष जैसा जड़ पदार्थ ही अपने ऊपर पत्थर मारनेवाले को खाना देकर एक बार का पेट भर देता है तब मुझे मारनेवाले को मैं उमर भर खाने देकर पेट न भर दूं तो मैं राजा काहे का?"

बड़े आदमियों के मन भी ऐसे बड़े ही होते हैं। भलाई करनेवाले पर तो सब ही भलाई करते हैं उसमें विशेषता क्या? परंतु बुराई करनेवाले पर भलाई करने में ही बड़ाई है। सब पर क्षमा रखना, सबकी भलाई चाहना और बुराई करनेवाले पर भी भलाई करना महात्माओं का स्वभाव होता है। हम जरा जरा सी बातों में बिगड़ बैठते हैं और द्वेषबुद्धि से वैरभाव बढ़ाते जाते हैं, परंतु यह कितनी बुरी बात है सो इस ऊपर के उदाहरण से समझना चाहिये। हम जो अपने मन को वश में न रख सकें और हम पर बुराई करनेवाले को क्षमा न कर सकें तो हमसे जड़ पदार्थ ही अच्छे। चन्दन को घिसने पर भी वह सुगंधी ही देता है, अगरबत्ती को जलाने पर भी सुगन्धि ही मिलती है और गन्ना दबाने से भी मीठा रस ही देता है। इसी तरह बुराई करनेवाले पर भी भलाई ही करना सज्जनों का सहज स्वभाव होता है।

७ पद

भक्तहृदय माखनसों कोमल, दुख देतेहु सुखदानी रे ।।टेक।।
त्रास दई अतिशय प्रह्लादहु, हिरनाकुश अज्ञानी रे ।
नरहरितनु धरि चीतर पेटकों, गति मांगी ना छानी रे ।।१।।
पांच पुत्र पांचाली के हति, बालहत्या जिहि ठानी रे ।
अश्वत्थामा सोऊ उबार्‍यो, भीमसेन मति भानी रे ।।२।।
दुर्वासानै जो दुख दीयो, अंबरीष नृप जानी रे ।
तब अस्तुति करि चक्र हटाओ, दुर्वासा मन मानी रे ।।३।।
रामजीवन को हरिजन संगति, साची हृदय समानी रे ।

नरतनु पाय न राज्यो सतसंग, तासों परै न हानी रे ।।४।।

*****

६० पापियों के सुख से किसी को लोभ में नहीं पड़ना क्योंकि वह सुख उनका नाश करने ही को दिया गया है। कसाई के मोटे बकरे और दुबले कुत्ते का उदाहरण

बहुत से आदमी कहते हैं, "ईश्वर न्यायी है तब पापियों को सुख क्यों मिलता है, बहुत सी जगह ऐसा देखने में आता है कि "करता है पुण्य सो फोड़ता है करम और करता है पाप सो खाता है धाप, इसका कारण क्या है?"

इसका उत्तर बहुत सुगम है, देखियेः–

एक कसाई के पास एक तो था कुत्ता और एक था बकरा। बकरे को वह सदा बँधा हुआ रखता था तब भी अच्छा अच्छा खाना देता और उसके मोटे होने की इच्छा रखता था, परंतु कुत्ता दिन भर उसकी सेवा करता था तब भी सूखे रूखे बासी टुकड़े पाता था। इससे कुत्ते को बहुत बुरा लगता था वह अपने मन में कहा करता था कि मैं इतनी सेवा करने पर भी झूंठे टुकड़े पाता हूं और बकरा काम करता न काज करता तब भी अच्छा अच्छा खाना पाता है। इसका कारण क्या है? अंत में एक दिन उसने देखा कि स्वामी की सेवा चाकरी किये बिना अच्छा अच्छा माल खानेवाला बकरा मारा गया और टुकड़े खानेवाला कुत्ता ज्यों का त्यों बना रहा।

इसी तरह पापियों को बड़ा किया जाता है सो उनका नाश करने ही के लिये। पापियों को जलदी नाश करने ही के लिये भगवान् उनके पूर्वजन्मों के अच्छे कर्मों का फल जल्दी दे देता है जिससे संसार की नजर में तो वे सुखी दीखते हैं परंतु वे सुख उनके थोड़ी ही देर के और उनका नाश करनेवाले होते हैं। इसमें कोई संदेह नहीं, इसलिये किसी पापी को सुखी देखकर हमको अपने में में किसी तरह का बुरा विचार नहीं करना किंतु यही समझना चाहिये कि वे उसका नाश करनेवाले हैं। पूर्वजन्म के अच्छे कर्मों का फल ईश्वर उनको इसीलिये एक साथ दे देता है कि जिसमें उनका फल एक साथ भोग चुकने पर उनका नाश जलदी ही हो जाय। इसलिये पापियों के सुख को उनका भविष्यत् का दुःख मानकर उस सुख से खुश न होना और न उनसे द्वेष मानना चाहिये। पापियों के सुख का स्वरूप

बताने में भगवान् ने कहा है:–

"यदग्रे चानुबंधे सुखं मोहनमात्मनः ।
निद्रालस्यप्रमादोत्थं तत्तामसमुदाहृतम् ।।"

गी० अ० १८, श्लोक ३९

अर्थ–जो सुख आरंभ में और परिणाम में अपनी बुद्धि को मोह उत्पन्न करनेवाला है तथा जो सुख निद्रा आलस्य और प्रमाद से उत्पन्न हुआ है वह सुख तासम कहलाता है।

पापियों के सुख ऐसे ही तामसी होते हैं इससे उनमें किसी भी भक्त जन को मोहित नहीं होना चाहिये, क्योंकि वह सुख बकरे की तरह नाश नरक के लिये ही है। भक्तों के दुःख भी परिणाम में स्वर्ग के सुख जैसे हैं। इसके लिये श्रीभगवान् ने गीता में कहा है:–

'यत्तदग्रे विषमिव परिणामेऽमृतोपमम् ।
तत्सुखं सात्त्विकं प्रोक्तमात्मबुद्धिप्रसादजम् ।।"

गी० अ० १९, श्लोक ३७

अर्थ–जो सुख प्रारंभ में विष जैसा परंतु अंत में अमृत जैसा है, और जो सुख आत्मा को जतानेवाली बुद्धि के प्रसाद से उत्पन्न हुआ है उस सुख को योगियों ने सात्त्विक सुख कहा है।

८ कवित्त

मधुर आहारभोग नीको लगै खातमाहि, पर अंतमाहिं सो तो रोग उपजात है । अधम कुनारी व्याह चाह करै सत्वराशि, पर परिणाम सो तो दुःख को दिखात है ।। खल मित्र नेह करि चाहै चित्तरंजनकों, पर वित्तभंजनसों शोक सो गहात है । तैसहू कुसंग पाय रंग राच्यो नंदलाल, पर अंतमाहि रंगभंगहू लखात है ।।१।।

*****

६१ जिस तरह भारी भारी लकड़ी के लट्ठों को पानी में खींचने में बोझा नहीं जान पड़ता वैसे ही हमारा पापों की हमको यहां पर खबर नहीं पड़ती, परंतु धर्मराज के यहां उनका फैसला होगा तब मालूम पड़ेगी

ब्रह्मदेश से मलाबार में लकड़ी के बड़े बड़े लट्ठे जहाजों में आते हैं। उतारते समय उनको समुद्र में डाल देते हैं और ऐसे ऐसे कई लट्ठों को एक रस्सी से बांध कर छोटे छोटे लड़के किनारे पर खींच लाते हैं परंतु जब

उनको पानी में से निकालकर जमीन पर ले जाना पड़ता है तब एक एक लट्ठे को दो दो सो मजदूर ही ले जा सकते हैं। तात्पर्य यह है कि पानी में बोझा नहीं जान पड़ता

इसी तरह हमारे पापो के लिये भी समझना। जैसे पानी में लकड़ी का बोझा नहीं जान पड़ता और एक ही मनुष्य सैंकड़ों लट्ठों को खींच ले जा सकता है, वैसे ही हमारे इस वर्तमान जीवन में हमको अपने पापों का बोझा जान नहीं पड़ता जिससे हम हजारों पाप करते हैं परंतु मरने पर ईश्वर के दरबार में न्याय के समय वह बोझा उठाना बहुत कठिन हो जायगा।

प्रभु का दरबार जमीनरूप समझो। जमीन पर लट्ठों का बोझा उठाना बहुत कठिन पड़ता है। इसलिये भाइयो चेतो! चेतो!! साधुलोग हमको बड़े सुगम सुगम उपायों से समझाते हैं परंतु हम अभागे उनको सुनते नहीं और सुनते समझते हैं तब भी उनके अनुसार चलते नहीं। यह हमारी बहुत बड़ी भूल है। इसलिये भाइयो! पाप को कभी छोटा मत समझो! उसका बोझा, उसकी भयंकरता और उसकी जोखिम हमको यहां पर नहीं मालूम होती क्योंकि अभी वह बीजरूप है परंतु ईश्वर के दरबार में पहुँचकर वह वृक्षरूप हो जायगा। यहां पर वे बड़ के बीच की तरह खस खस के दाने जैसे छोटे दीखते हैं परंतु ईश्वर के दरबार में पहुँचकर वे बड़े बड़ के पेड़ जैसे हो जायँगे, उन एक एक पेड़ में लाखों बुराईरूप फल लग जायंगे। एक एक फल में लाखों कीड़े उत्पन्न हो जायँगे और तब वे सब हमको ही भोगने पड़ेंगे। इसको कभी भूलना नहीं चाहिये। इससे अब भी समय है तो चेतो! चेतो!! नहीं तो जानते बूझते भी खराबी होगी। दिया लेकर कुएं में गिरने बराबर होगा। भाइयो! अब भी कुछ सोचो! कुछ तो विचार करो!

९ कवित्त

अरे अपराधी यह मति तोहि साधी काह, ठग ठग लोग काम करत ठगाई को। वित्तमाहिं चित्त धार मोती जश खोयो पार, भयो कभों नाहिं माता पिता गुरु भाई को ।। पर यह बात जग जाहिर लखात मूढ, बोय के बबूर चाखी आम की खटाई को। पर छुप छुप कीने पाप यहैं पूछे नाहिं, परलोकमाहीं ना राज पोपांबाईको ।।१।।

*****

६२ देखने में छोटा सा पहलवान। ईश्वर के बल की मरने पर खबर पड़ती है

एक बड़ा शूरवीर पहलवान था, लोगों में उसका बड़ा नाम था, उसकी बहुत प्रशंसा सुनकर राजा ने उसे देखने को अपने पास बुलाया, वह पहलवान देखने में छोटा और दुवला था, इससे राजा ने कहा "तुम्हारे लिये तो लोग बड़ी बड़ी बातें मारते हैं परंतु देखने से तो तुममें वैसा पराक्रम नहीं जान पड़ता।"

पहलवान ने उत्तर दिया "साहब! मेरे बल की खबर यहां नहीं पड़ सकती किंतु लड़ाई की मैदान में पड़ सकती है!"

इसी तरह परमेश्वर कहता है कि, तुम अभी मुझे नहीं पहचानते परंतु अपने न्याय के समय पहचानोगे। अपना न्याय कराते समय ईश्वर को पहचानने से पहले ही उस समर्थ ईश्वर की सामर्थ्य को जान लेना और उसके अधीन हो जाना अच्छा है। इसी में हमारी शोभा है और यही बचने का उपाय है। ईश्वर का बल मरे बाद जानने और नरक में पड़ने की अपेक्षा उसकी कृपा में जीना और स्वर्ग का ऐश्वर्य भोगना अच्छा है। इसी का नाम मनुष्यत्व है। इसी का नाम पुरुषार्थ है और यही इच्छा करने योग्य है।

*****

६३ धर्मी को धक्के क्यों लगते हैं? अच्छा देने के लिये ईश्वर बुरा ले लेता है

प्राचीनकाल में एक महात्मा थे। उनका लिये ऐसा प्रसिद्ध था कि वे ईश्वर से बातें करते थे। उनसे किसी गरीब भक्त ने कहा "आप समझदार हैं, ईश्वर के भक्त हैं, मेरी एक बात का जबाब दीजिये।"

महात्मा ने कहा "कहो क्या बात है! मुझसे बनेगा वैसा उत्तर देने को मैं तैयार हूं।"

उसने कहा "मैं एक गरीब आदमी हूं और दिन प्रतिदिन गरीब ही होता जाता हूं। मेरे पास कुछ भी नहीं है। केवल एक घास की टपरिया थी उसमें भी कल आग लग गयी, इसका कारण क्या है? ईश्वर जिसके देता है उसके तो खूब ही दे देता है और जिसका लेता है उसका सब ही ले लेता है। 'दुःखी पर डाम और फिसले पर लात' वाली मुझ जैसी दशा संसार में बहुत से लोगों की होती है। इसका कारण क्या है?

गरीब की यह बात सुनकर महात्मा बड़े विचार में पड़े। वे भी ऐसे ऐसे बीसियों उदाहरण देख चुके थे परंतु सबब कुछ भी नहीं जान सके थे। इससे उन्होंने उत्तर दिया "मैं भगवान् से पूछकर तुमको इसका जवाब दूंगा।'?

फिर उस महात्मा ने ईश्वर से कहा "ऐ भगवन्! तू बड़ा दयालु है, तू सच्चा न्यायी है, तू गरीबों को बेली (सहायक) है और तू भक्तों को योगक्षेप करनेवाला है, फिर भी तेरा नियम उलटा क्यों है? तेरे भक्त ही दु:खी होतें हैं, फिसले पर तू लात क्यों मारता है? और जो गरीब है उसी को अधिक अधिक गरीब क्यों बनाता है? मुझसे एक भक्त ने यह प्रश्न पूछा है, अब तू कैसे कहे सो उत्तर दूं।"

भगवान् ने कहा "मुझे एक ईंट चाहिये सो ले आ! फिर मैं तुझको इसका उत्तर दूंगा।"

महात्मा वहां से चलकर नगर के किसी भपकेदार मकानवाले महोल्ले में गया परंतु उन सुंदर मकानों में से ईंट निकाल्नने को उसकी इच्छा न हुई। वहां से वह गरीबों के महोल्ले में गया और एक टूटे हुए मकान में से ईंट लेकर भगवान् के पास पहुँचा। भगवान् ने पूछा "यह ईंट तू कहां से लाया?"

महात्मा ने उत्तर दिया "किसी गरीब के घर की एक दीवार टूटी पड़ी थी और और भी अधिक टूटने पर आ रही थी, उसी में से मैं यह ईंट निकाल लाया।"

भगवान् ने कहा "अरे! यह तो तूने बहुत बुरा किया! बड़े बड़े महल छोड़कर एक गरीब की टूटी हुई दीवार में से क्यों लाया? उस टूटी हुई दीवार को और भी उसी टूटी हुई स्थिति में रहने देताऔर उसके बदले में किसी महल में एक ईंट खैंच लाता तो क्या अडचन थी? ऐसा क्यो नहीं किया?

महात्मा ने कहा "महाराज! बड़े महल में से एक ईंट खींचने से महल की सुन्दरता बिगड़ जाती परंतु टूटी दीवार में से ईंट खींचने से वह सारी दीवार ही गिर गयी जिसके स्थान में अब नयी दीवार बन जायगी।"

भगवान् ने कहा "बस! यही मेरा कायदा है और इसी में दुनिया का फायदा है। उस भक्त से जाकर कहना कि, तुझे अधिक देने ही के लिये तेरा थोड़ा ले लिया जाता है। तुझको अच्छा देने के लिये तेरा बुरा ले लिया है।

तुझे निवृत्ति देने के लिये तेरा प्रपंच हर लिया जाता है और तुझे स्वर्ग देने के लिये तेरे पास से माया खेंच ली जाती है। यह भक्तों की कसोटी है। जो भक्त ऐसी माया कसोटी में मेरी इच्छा के अधीन बने रहते हैं वे ही भक्त मुझे प्यारे हैं।"

यह सब लोगों के याद रखने योग्य है कारण इससे हमको संतोष और धैर्य मिलता है और प्रभु की इच्छा के अधीन होने का हममें बल आता है। इसलिये कदाचित् कोई हानि हो तब भी वह भले ही के लिये है। ऐसा समझकर भक्तजनों को उसका शोक कभी न करना चाहिये। हलकी २ बातों का शोक करने से बचें तो ही हम शांति में रह सकते हैं। इसलिये गरीबी में भक्तजनों को उदास नहीं होना चाहिये।

६४ पक्षियों के पानी पी जाने से तालाब नहीं सूखता यथाशक्ति दान देने से मनुष्य गरीब नहीं होता

किसी बड़े सरोवर में से पक्षी पानी पी जायँ तो सरोवर कम नहीं होता इसी तरह धनवान् लोग यथाशक्ति गरीबों की सहायता करें तो निर्धन नहीं हो जाते।

महात्मा कहते हैं कि धन की तीन ही गति हैं, (१) दान, (२) भोग, (३) नाश। जो दान नहीं देते और भोग नहीं भोगते उनके धन का नाश ही होता है। दान देना बीज बोने के समान है इसमें एक का सौ गुना हो जाता है, इसलिये, जिनको ईश्वर ने दिया हो उनको दान देने में संकोच नहीं करना चाहिये, जो यहाँ देने में संकोच करेंगे उनको परमेश्वर के पास खाली हाथ जाना पड़ेगा। जीवन तो क्षणिक है परंतु वहां का रहना अनंत काल तक है। इससे क्षणिक काल तो भरे हुए रहना और अनंत काल खाली रहना बुद्धिमानी नहीं है। यथाशक्ति दान देने से मनुष्य खाली नहीं हो जाता भक्तराज तुलसी दासजी ने कहा हैः—

दोहा—तुलसी पंछिनके पिये, घटै न सरिता नीर ।
धर्म किये धन ना घटै, सहाय करै रघुवीर ॥

६५ कुए में से पानी ज्यों ज्यों निकलता है त्यों त्यों नया पानी आता जाता है वैसे ही परोपकार से धन बढ़ता जाता है

जैसे कुए में से पानी निकाला जाता है त्यों त्यों उसमें नया ताजा पानी आता जाता है, वैसे ही दान करने से धन घटता नहीं किंतु पवित्र होता

और बढ़ता है। कारण दान सदा गरीबों को दिया जाता है और गरीबों के अंतःकरण के आशीर्वाद एक ऐसी अलौकिक वस्तु है कि, पानी में डूबती नहीं, आग में जलती नहीं, हथियार से कटती नहीं, चोर से चुराई जाती नहीं, उठाने में बोझा लगता नहीं, उसमें कोई हिस्सेदार खड़ा होता नहीं और हवा से सूखती नहीं ऐसे अलौकिक आशीर्वाद, कि जो कल्याण के सीधे साधन हैं दान से ही मिलते हैं इसलिये जो बने सो पात्र ही को देना यही महात्माओं का सिद्धांत है और यही हमारे धर्म की उत्तमता है। इसलिये जैसे बनै वैसे अपने गरीब भाई बंधुओं की सहायता करो।

१० छप्पय

अतिउदारता नाहिं, तऊ साधो परमारथ ।
निष्फल आन व्योहार, यहै सांचो है स्वारथ ॥
विश्वंभर जो दियो, तासों कुछ दान करीजै ।
जिमि अंजलिको, नीर इमी तन छन छन छीजै ॥
बूंद बूंद सरवर भरै, कंकर कंकर पाल ।
इमि संचित करि दानधन, लीजै सँग ततकाल ॥१॥

*****

६६ ईश्वर कहता है कि सब बातों से मुझे दान देना अधिक प्रिय लगता है

ईश्वर कहता है कि, मुझे जितनी बातें प्रिय हैं उन सबमें दूसरों को देना अधिक प्रिय लगता है। मेरा सब है। अनंत ब्रह्मांड मेरे हैं, और तब भी मैंने अपने पास कुछ नहीं रखा है; सब कुछ तुमको तुम्हारे सुख के लिये दे डाला है। वैसे ही तुम भी यथाशक्ति अपने भाई बंधुओं को दो! देने में जो मजा है वह और किसी दूसरी चीज में नहीं है। देने से लेनेवाले का अंतःकरण जैसे प्रसन्न होता है वैसे ही देनेवाले को भी एक उत्तम प्रकार का मानसिक आनंद और आत्मिक संतोष मिलता है। भगवान् ने कहा है कि:–

"यज्ञदानतपःकर्म न त्याज्यं कार्यमेव तत् ।
यज्ञो दानं तपश्चैव पावनानि मनीषिणाम् ॥"

गी० अ० १८ श्लो० ५

अर्थ–यज्ञ, दान और तप ये काम छोड़ने ही नहीं, क्योंकि ये मनुष्य को पवित्र करने वाले हैं।

ईश्वर कहता है कि, दान मनुष्य को पावन करने वाला है। इससे बढ़कर विश्वास हमको और क्या चाहिये? इससे बढ़कर हमको और चाहिये भी क्या, क्योंकि पावन शुद्ध होने से ही हम ईश्वर के पास पहुँच सकते हैं, और दान से शुद्धि होती है। इसलिये प्रत्येक मनुष्य को सदा यथाशक्ति मन, वचन और कर्म से दान करना चाहिये।

*****

६७ तोप का गोला तीन चार मील जा सकता है अन्न का गोला स्वर्ग तक पहुँचता है

जानते हो! दान का महत्व कितना बड़ा है? एक साधु ने किसी से पूँछा कि, "पत्थर कितनी दूर तक जा सकता है।" उसने उत्तर दिया "हाथ का फेंका हुआ पत्थर १०० हाथ से अधिक नहीं जा सकता और गोफन से फेंका हुआ ३०० हाथ जाता है।"

साधु ने पूँछा "ऐसी भी कोई वस्तु है जो इससे अधिक दूर पहुँचती हो?" उसने उत्तर दिया "बंदूक की गोली हजार हाथ तक जा सकती है और तोप का गोल ३–४ मील जाता है।

साधु ने पूँछा "इससे भी दूर जाने का कोई साधन है?" उसने उत्तर दिया "नहीं!"

तब साधु ने कहा "बेटा! भूखे आदमी को खिलाये हुए अन्न का गोला स्वर्ग तक पहुँचता है!"

दान का ऐसा महत्त्व है। इसलिये जिसे ईश्वर ने दिया हो उसे देने में संकोच नहीं करना चाहिये। दीनों की सहायता करने के लिये अपने पास धन होते हुए भी जो सहायता नहीं करते वे अभागे हैं, भाग्यहीन हैं और परस्पर सहायता करने के ईश्वरीय नियम के विरुद्ध चलने वाले हैं इस अपराध के लिये उनको जो कढ़ी सजा मिलेगी उसका विचार करते हुए हमको खेद होता है, ईश्वर! वैसों पर दया कर और उनको दान देने की सन्मति दे!

दोहा–दया धर्मको मूल है, पापमूल अभिमान ।
तुलसी दया न छाँडिये, जबलग घट में प्रान ।।

*****

६८ दान न देना ईश्वर का ऋणी रहना है ईश्वर का ऋणी कैसे सुखी हो सकता है?

संसार के सब धर्मों की यही आज्ञा है कि, किसी का ऋणी नहीं रहना चाहिये। जहाँ तक बने सब का ऋण चुका देना चाहिये। सत्य महाराजा हरिश्चंद्र ने अपनी रानी को बेंचकर तथा स्वयं "आपको भंगी के हाथ बेचकर ऋण चुकाया था कहावत प्रसिद्ध है कि, "जो इस जन्म में ऋण नहीं चुकावेंगे उनको दूसरे जन्म में बैल बनकर चुकाना पड़ेगा।

संसार के ऋण के लिये जब ऐसा है। पैसे के ऋण के लिये जब इतना है, तब हृदय के ऋण के लिये और परमेश्वर के ऋण के लिये कितना होना चाहिये? इसका विचार तो करके देखो! ईश्वर ने हम को जो कुछ दिया है उसमें थोड़ा बहुत तो ईश्वर के पवित्र नाम पर ईश्वर के बालकों को, नहीं नहीं, हमारे ही भाई बंधुओं को भी देना चाहिये। औरों को देने की शर्त पर ही परमेश्वर ने हम पर कृपा करके इतना दिया है। अपने खजाने में ईश्वर के ऐश्वर्य को कैद करने के लिये यह ऐश्वर्य हमको नहीं दिया गया। ईश्वरीय ऐश्वर्य सार्वजनिक है। उसको कैद करने का किसी को अधिकार नहीं है जो ईश्वर के ऐश्वर्य को अपना बनाकर कैद करते हैं वे ईश्वर के बड़े अपराधी हैं, क्योंकि ईश्वरीय ऐश्वर्य को अपने खजाने में कैद करना ईश्वर का सामना करने के बराबर है यह ईश्वर का स्पष्ट अनादर है, यह ईश्वर के तेज को धुंधला करने के समान है, और पैसा होते हुए भी दूसरों को रुलाने के लिये दिवाला निकाल देने के समान है याद रखना चाहिये कि इस तरह का बदनीयत रखने से ईश्वर के ऋण में से छुटकारा थोड़ा ही होता है? ऐसे पापियों को यहां पर अपने हलके से स्वार्थ में मजा आता है अर्थात् वे इधर उधर के बहाने करके धर्म, व्यवहार और राज्य के कायदों को तोड़ अपने और दूसरों के मन को समझा देते हैं परंतु उनको याद रखना चाहिये कि उनके यहां के बहाने यमदूतों के आगे काम नहीं आवेंगे, ईश्वर के दरबार में पोपांबाई को राज्य नहीं है। इसलिये जैसे बनै वैसे गरीबों की ओर का अपना कर्तव्य जल्दी पूरा करो! गरीबों की ओर का कर्तव्य पूरा करना ही ईश्वर के ऋण को चुकाना है।

*****

६९ राजा का ऋण चुकाने बिना नहीं चलता तब ईश्वर का ऋण चुकाये बिना कैसे चलेगा

एक मनुष्य पर राजा का ऋण था। यद्यपि ऋण चुकाने का उसके पास साधन था परंतु इधर उधर के बहाने करके उसने ऋण न चुकाया और अंत में ऋणी ही मर गया। तब तो राजा ने उसके पुत्र से ऋण चुकाने का तकाजा किया, घर पर पहरा बिठा दिया और सब घर बार खालसे करके सब जमीन जायदाद नष्ट भ्रष्ट कर डाली। साधारण मनुष्य का रुपया चुकाने ही में बहानेबाजी नहीं चलती तब राजा का ऋण चुकाने में कैसे चल सकती है क्योंकि वह अधिकार वाला है। और जब राजा के ही आगे बहानेबाजी नहीं चलती तब परमेश्वर के आगे कैसे चल सकती है? क्योंकि वह तो राजाओं का राजा और महाराजाओं का भी महाराजा ठहरा! इसलिये हजार काम छोड़कर पहले ईश्वर का ऋण चुकाना चाहिये, इसी में इज्जत आबरू है, इसी में मजा है और इसी से ईश्वर की कृपा संपादन हो सकती है! यह ऋण चुकाना और कुछ भी नहीं केवल अपने भाई बंधुओं की आवश्यकता के समय बनती सहायता देना है।

*****

७० चक्की में खीले की शरणवाले दाने पिसने से बच जाते हैं, वैसे ही ईश्वर की शरण में जाने वाले नरक से बच जाते हैं

दोहा–माया ऐसी डाकिनी, खायो सब संसार ।
एक न खायो कबीर जो, रह्यो राम आधार ।।

समर्थ ईश्वर की शरण लिये विना नरक से बचने का कोई मार्ग नहीं है। मोक्ष पाने का एक मात्र उपाय परमेश्वर की शरण में जाना ही है, उदाहरण के लिये देखो कि, चक्की में जो अनाज गिरता है वही पिस जाता है। परंतु जितना सा खीले की शरण में रहता है अर्थात् खीले के आसपास रहता है वह चक्की के बीच में होने पर भी पिसने से बच जाता है। वैसे ही संसार का चक्र है वही कालरूप चक्की है और उसमें ईश्वर रूप खीला है, जो उस खीले की शरण में जाते हैं वे बच जाते हैं और जो खीले को छोड़ देते हैं वे पिस जाते हैं। हम जरा जरा सी और हलकी २ बातों के लिये बड़े आदमियों का सहारा तकते हैं, क्योंकि बड़ों की सहायता ही से काम पार पड़ता है, तब यह तो विचार करो कि, परमेश्वर के सिवाय दूसरा बड़ा कौन होगा? हम जिन साधु संतों, पीर पैगंबरों और देव

दानवों की शरण लेते हैं वे भी जब परमेश्वर ही की शरण लेते हैं तब हम ही सीधे सर्वशक्तिमान् परमेश्वर की शरण क्यों न लें? इसलिये हमको बड़े से बड़े, दयालु से दयालु और सब आश्रय के भी आश्रय समर्थ ईश्वर की सर्वात्म भाव से शरण लेनी चाहिये। यही दुःख से, नरक से पाप से बचने का और कल्याण मार्ग है। ईश्वर ने भी कहा है:–

"तमेव शरणं गच्छ सर्वभावेन भारत ।
तत्प्रसादात्परां शांतिं स्थानं प्राप्स्यसि शाश्वतम् ।।"

गी० अ० १८ श्लो० ६२

अर्थ–हे अर्जुन! सर्वभाव से प्रभु ही की शरण में जा! उसकी कृपा से परमशांति को और कभी नाश न होने वाले अखंड़ स्थान को प्राप्त होगा।

ईश्वर हमसे इस तरह प्रण करता है इससे अनंतकाल के मोक्ष का आनंद भोगने के लिये भाइयो! तन मन धन से ईश्वर की शरण में जाओ! शरण में जाओ!

पद

हरिसन्मुख हो रहना भूले प्रभु सन्मुख हो रहना रे ।।टेक।।
जो कोई कहै कहनदे वाकों, आप कछू ना कहना रे ।
जो कोई निंदा करत आपनी, सुन चुपका हो रहनारे ।।हरि० १।।
बस बागड अधवा कंचनगिरि, मिलत आपनो लहना रे ।
तासों काटि आशकी फांसी, चिंताचिता नदहनारे ।।हरि० २।।
लाख पहरि पौसाख रतनमणि, कनकजडाऊ गहना रे ।
मानि कहूँ अभिमाननदी में, रामशरणहिंबहना रे ।।हरि० ३।।

*****

७१ बडे भाई ने कहा कि, मेरे आठ आने स्वर्ग में आना छोटे भाई ने उत्तर दिया कि यह कैसे बन सकता है? बड़े भाई ने कहा कि तू पैसा खर्च नहीं करता तब अपने लाखों रुपयों को वहां कैसे ले जा सकेगा

दो भाई थे, दोनों धनवान् थे परंतु बड़ा उदार था और छोटा मक्खीचूंस। बड़ा भाई अच्छे २ दान देता, गरीबों की खबर लेता, पड़ोसियों को मदद देता, दुःखियों को संतोष कराता, रोगियों की सेवा करता, विद्यार्थियों को सहायता देता और अनाथों को सँभाल लेता था,

अच्छे कामों में वह खुले हाथ से खर्च करता था। परंतु छोटा भाई धर्म में एक दमड़ी भी नहीं देता था। एक बार बड़ा भाई बहुत बीमार हो गया तो उसने सबके खाते चुकते कर दिये। उसी समय छोटा भाई आया, उससे भी उसने कहा कि मेरी ओर तेरा जो कुछ लेना हो सो लेजा। छोटे भाई ने उत्तर दिया "तुम्हारी ओर मेरा लेना कुछ नहीं है, किंतु मेरी ओर तुम्हारे आठ आने लेने हैं सो मैं दे जाऊंगा।"

बड़े भाई ने कहा "मैं तो अभी जाता हूं। तू आवे तब स्वर्ग में लेता आना।"

छोटे भाई ने कहा "यह कैसे? स्वर्ग में लेते आना कैसे बन सकता है?"

बड़े भाई ने कहा "अपने लाखों रुपयों को तो तू ले ही जावेगा तब मेरे आठ आने को नहीं ले जा सकेगा? उसमें तुझको क्या बोझा लगेगा?"

छोटे भाई ने कहा "वहां कैसे ले जाना बन सकता है?"

बड़े भाई ने कहा "यहां तो हमको थोड़े समय तक रहना है और वहां पर अनंत काल तक रहना है। थोड़े रहने के लिये तो इतनी धाम धूप और इतना संग्रह और अनंत काल के लिये कुछ भी नहीं! जहां पर तुझे अधिक रहना है वहां पर जब तू कुछ भी नहीं ले जा सकता तब यहां पर इकट्ठा किया हुआ तेरे किस काम आवेगा?"

बड़े भाई की इन बातों से छोटे भाई की समझ में अपनी भूल अच्छी तरह आ गई वह लज्जित हो गया उसी दिन से उसने परमार्थ करना आरंभ कर दिया।

सब भाइयों को अच्छी तरह याद रखना चाहिये कि, यहां पर इकट्ठा किया हुआ धन वहां पर काम नहीं आता परंतु यहाँ पर खर्च किया हुआ धन ही वहां पर काम आता है। जिसको भगवान् ने दिया हो उसे परमार्थ करने में कभी पीछे न हटना चाहिये। ईश्वर कहता है कि, मेरे बालकों की सेवा करना ही मेरी सेवा करना है, इससे जो मुझे प्रसन्न करना चाहे वह तन से, मन से धन से अथवा और किसी रीति से बने वैसे मेरे बालकों की सेवा करे। सृष्टि की सुंदरता बढ़ावे, जगत् को पूर्णता पर पहुँचाने और मनुष्य को देवता बनाने के मेरे उद्देश्य में सहायता दे, इसी में जगत् का उद्धार है और इसी में मैं हूं, इससे परमार्थ को ही अपना मंत्र मानो!

१२ छप्पय

जिमि घांचीको बैल रात दिन फेरै घांची ।
जिमि कुम्हराके गधा भार बहने मति रांची ।।
नेक होत अवकाश आश विषयकी जोवैं ।
जिमिकूकर खर श्वानतिमि मानुष तन खोवें ।।
रामजिवन कह जिवन यो, अनुप अनोख अमोल ।
जीती बाजी हारिकै, लखचौरासी डोल ।।१।।

*****

७२ कुत्ता गाड़ी के नीचे चला जाता है और मन में अभिमान करता है कि मैं ही गाड़ी को खींचता हूं ऐसा तुम मत करना!

परमार्थ करने में बहुत से आदमी अपनी बड़ाई समझते हैं परंतु यह उनकी भूल है। महात्माओं का कथन है कि, परमार्थ करना तो हमारा कर्त्तव्य है इसमें अभिमान काहेका? ज्ञानी गुरु नानक ने कहा है:–

तू कहेगा मैं दाता हूं माल कहां से लाया है?
दान करो गरीब को बाबा मगरूरी से धोखा है

हम दाता तो बनते हैं परंतु यह नहीं विचारते कि, हमको भी तो किसी ने दिया ही है। ईश्वर ने हमें दिया है! हम ईश्वर के पवित्र नाम पर देकर ब्रह्मार्पण कर डालें। कुत्ता गाड़ी के नीचे चला जाता है और मन में अभिमान करता है कि मैं ही इस गाड़ी को खींचता हूं। ऐसा मिथ्या अभिमान हमको नहीं करना चाहिये। ईश्वर की दी हुई वस्तुएँ ईश्वर के पवित्र नाम पर ईश्वर के निमित्त ईश्वर के बालकों को अपने भाई बंधुओं को देना चाहिये। संसार भर के सब धर्मों में इसी को मुख्य कर्त्तव्य माना है। यज्ञ दान और तप करने में अभिमान न करने के लिये ईश्वर ने भी कहा है:–

"एतान्य यितु कर्माणि संगं त्यक्त्वा फलानि च ।
कर्तव्यानीति मे पार्थ निश्चितं मतमुत्तमम् ।।"

गी० अ० १८ श्लो० ६

अर्थ–हे अर्जुन! ये कर्म भी फल की इच्छा छोड़कर तथा अभिमान छोड़कर करने चाहिये। यह मेरा उत्तम और पक्का मत है।

यज्ञ अर्थात् ईश्वर की ओर का काम, दान अर्थात् मनुष्य जाति और प्राणी मात्र की ओर का काम और तप अर्थात् मन को वश में रखना ये

तीनों मुख्य काम जो कर्तव्य कहलाते हैं, ईश्वर के ही लिये करने के हैं। अभिमान करने से इन कामों का महत्व घट जाता है इसके लिये भगवान् ने गीता में कहा है:–

"यज्ञार्थात्कर्मणोऽन्यत्र लोकोऽयं कर्मबंधनः ।
तदर्थं कर्म कौंतेय मुक्तसंगः समाचर ॥"

गी० अ० ३ श्लो० ९

अर्थ–मेरे निमित्त करने के जो कर्म हैं उनको छोड़कर बाकी सब कर्म बंधन करने वाले हैं इससे हे अर्जुन! आसक्ति छोड़कर तू ईश्वर के निमित्त कर्म कर!

ईश्वर की ऐसी स्पष्ट आज्ञा होते हुए भी जो हम अपने अहंभाव से परमार्थ करें तो वह परमार्थ भी बंधन कारक ही हो पड़ता है। ऐसा न होने के लिये हमारे दान धर्म आदि ईश्वर ही के अर्पण होने चाहिये, उसमें न तो किसी प्रकार की विशेषता समझना और न अभिमान करना चाहिये, जो कुछ भी अभिमान का अंश आया तो अच्छे कर्म भी बंधन कारक हो जायँगे। इसलिये भाइयो! रुखे मानपान के लिये अथवा घड़ी दो घड़ी के मान पर्तबे के लिये नहीं, परंतु ईश्वर के लिये अंतःकरण की शुद्ध इच्छा से परमार्थ करो!

*****

७३ अभिमान करने से शुभकर्म भी निर्बल और मलिन हो जाते हैं

व्यवहार में हम देखते हैं कि निर्मल हृदय से जो अनेक काम किये जाते हैं उनका मूल्य बड़ा हो जाता है तब परमार्थ के लिये किये हुए और वे भी ब्रह्मार्पण किये हुए कामों का मूल्य ईश्वर के दरबार में कितना बड़ा हो जायेगा और अहंकार वाले काम वहां पर कितने हलके हो जाय इसका तो विचार करो! हमारे अच्छे कामों की कीमत कम न होने देने किंतु और बढ़ाते ही जाने के लिये ईश्वर ने दया करके कहा है कि:–

"यत्करोषि यदश्नासि यज्जुहोसि ददासि यत् ।
यत्तपस्यसि कौंतेय तत्कुरुष्व मदर्पणम् ॥"

अ० ९ श्लो० २५

अर्थ–जो करो, जो खाओ, जो हवन करो, जो दो, जो तप करो वह सब हे अर्जुन! मेरे अर्पण करो!

ईश्वर की यह बहुत स्पष्ट और बड़ी आज्ञा है। ऐसा करने से क्या होता है सो भी ईश्वर ने कहा है:–

**"ब्रह्मण्याधाय कर्माणि संगं त्यक्त्वा करोति यः ।
लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवांभसा ॥"**

अ० ५ श्लो० १०

अर्थ–जैसे कमल का पत्ता पानी में रहने पर भी भीगता नहीं है वैसे ही आसक्ति छोड़कर कर्म ईश्वर के अर्पण कर देने से तुम कर्म करने पर भी बंधन में नहीं पड़ोगे!

ईश्वर के कर्म अर्पण करने से मनुष्य कर्मों के स्वाभाविक दोष से बच सकता है इससे परमार्थ करने में अभिमान कदापि नहीं करना, परंतु ईश्वरीय कर्तव्य समझकर, मनुष्य का मनुष्यत्व समझकर, आत्मा की उन्नति समझकर, जीवन की सार्थकता समझकर, धर्म का तत्त्व समझकर, अपना कर्त्तव्य समझकर और ईश्वर की आज्ञा समझकर शुद्ध अंतःकरण से, खुले दिल से, ईश्वर के पवित्र नाम से ईश्वर के निमित्त परमार्थ करना चाहिये। जो इसमें संकोच करें अथवा अहंकार करें तो हम अपने ही हाथ से उसकी कीमत कम कर देते हैं और फल घटा देते हैं। इससे परमार्थ में कभी अहंकार नहीं लाना चाहिये। यही मनुष्य की उत्तमता है। यही महात्माओं का अंतिम उपदेश है और यही ईश्वर की इच्छा है।

*****

७४ दूसरों की बनाई चीजों का हम उपयोग करते हैं तब हम को भी तो दूसरों के लिये कुछ करना चाहिये

ईश्वर की इच्छा है और शास्त्रों की आज्ञा है इसी से दान करना आवश्यक नहीं है किंतु व्यावहारिक रीति से भी हम दान करने को बँधे हुए हैं! कारण यह कि, दूसरों के बोये हुए वृक्षों के फल हम खाते हैं, दूसरों के लिखे हुए पुस्तक पढ़कर हम ज्ञान प्राप्त करते हैं, दूसरों के खुदाये हुए कुएं तालावों का पानी हम पीते हैं, दूसरों के बनाये हुए कपड़े हम पहनते हैं। दूसरों के बोये हुए अनाज से हम पेट भरते हैं, दूसरों की जमीन पर हम चलते फिरते हैं, दूसरों की गाड़ी में हम बैठते हैं, दूसरों की निकाली हुई दवाइयों का लाभ हम लेते हैं, दूसरों के चुने हुए घरों में हम रहते हैं, दूसरों के निकाले हुए यंत्रों और युक्तियों से फायदा हम उठाते हैं और दूसरों की सहायता से हम उत्पन्न हुए हैं। तात्पर्य यह कि, हमारे

जीवन का प्रत्येक श्वास ईश्वर की कृपा से और दूसरों की सहायता से ही लिया जाता है। जाने और अजाने दूसरों ही के उपकारों से हम दबे हुए हैं। इसलिये दूसरों के लिये भी कोई न कोई अच्छा काम तो हमको भी करना ही चाहिये, जो ऐसा नहीं करते वे कृतघ्न हैं। अपने ऊपर किये हुए उपकारों का बदला न देना ही पाप है, और वही अधमता है। इससे ऐसी अधमता से बचने के लियें ईश्वर के पवित्र नाम पर ईश्वर के निमित्त अपने गरीब भाइयों को यथाशक्ति सहायता देना चाहिये।

*****

७५ दान देना धरोहर जमा कराना है

दोहा--करो भलाई कोइपर, यही धर्मका कर्म ।
दूसरे कल्पित धर्म हैं, मनमें समझो मर्म ।।

दान देने का अर्थ क्या? तुम्हारे विचारे अनुसार दान देने का अर्थ दे डालना नहीं है। हम दान देने का ठीक अर्थ नहीं समझते इसी से खुले हाथों से दान नहीं दे सकते। महात्माओं का कहना है कि, दान देने का अर्थ दे डालना नहीं है परन्तु दान देने का अर्थ है ईश्वर के यहां धरोहर जमा करना। दानरूप ईश्वर के यहां जमा कराई हुई धरोहर समय पड़ने पर हमको ब्याज सहित मिल जाती है। जब जाने और अजाने किये हुए बुरे कर्मों से उत्पन्न हुए पापरूप शत्रु हमपर हमला करते हैं और हम आपत्ति में आ पड़ते हैं तब हमको उससे बचने के लिये ईश्वर के यहां जमा कराई हुई धरोहर सूद सहित काम आती है। इसमें किसी को भी संदेह न करना चाहिये, क्योंकि हम अपनी आँखों से देखते हैं कि, कोई भी भला मनुष्य दूसरों की धरोहर को नहीं खा जाता, तब सबसे अच्छे में अच्छा परमेश्वर हमारी धरोहर को क्योंकर डुबा देगा? इतना तो हमको अवश्य ही विश्वास रखना चाहिये कि, दानरूप ईश्वर के यहाँ जमा कराई हुई हमारी छोटी सी रकम के लिये तो ईश्वर दिवाला निकाल ही नहीं देगा? इसलिये भाइयो! दान करो! दान करो! ! दान करो! ! ! दान देना दे डालना नहीं है परंतु अपने ही हित के लिये, अपने ही बचाव के लिये अमानत जमा कराना है, यह अमानत रकम यह रिजर्व्डफंड़, यह सेविंग्स बैंक में जमा किया हुआ धन जितना अधिक होगा उतना ही अधिक लाभ होगा, उतना ही अधिक बचाव होगा इसलिये भाइयो! अपने गरीब भाइयों को देने से हाथ मत खींचो! मत खींचो! ! सहायता देने का हाथ

तो अधिक २ बढ़ाने ही में मजा है।

१३ पद

काहुको रिण न बकाया, गिरिधर व्याजसमेत चुकाया ।। टेक ।।
विप्र सुदामा तंडुल पाया, भरि भरि भरि मुष्टि स्वादसों खाया ।
कनकजड़ित जाके महल चुनाया, अरु संपतिसों कुबेर लखाया ।।१।।
कुब्जा कुटिल कंसकी दासी, चंदन लेय चली बनि खासी ।
प्रभुले चंदन माथ चढाया, कुब्जा रूप अधिक प्रगटाया ।।२।।
द्रुपदसुता करि टेर पुकारी, द्वारावती सुनी गिरिधारी ।
आवतही प्रभु चीर बढ़ाया, दुःशासन खल पार न पाया ।।३।।
रामजिवन दीनन दुख टारी, प्रभुशरणोहू न आन निहारी ।
यह जग सब जंजाल लखाया, मायामय कथि हरिजन गाया ।।४।।

*****

७६ दान देना बीज बोने के समान है

गरीबों को दान देना फेंक देना नहीं परंतु बीज बोने के समान है। यहाँ जमीन में हम एक दाना भी अनाज का बोवे तो उसके हजारों दाने हो जाते हैं और आम की एक गुठली बोवें तो उसमें से हजारों फल सैकड़ों वर्ष तक लगते रहते हैं, तब स्वर्ग की भूमि तो पृथ्वी से लाखों गुनी अच्छी है और अनाज के दाने तथा आम की गुठली से दान का बीज हजारों गुना अच्छा है तब उसमें कैसे अच्छे और कितने फल लगेंगे और वे कितने समय तक मिलते रहेंगे, इसका भी तो विचार करो! शास्त्र कहते हैं कि, सात पीढ़ी तक पुण्य का असर पहुँचता है। इसी पर से हम लोगों में कहने की चाल है कि "बड़ों के पुण्य से हम सुखी हैं।"

परमार्थ का बीज बोने में इतना गुण और इतना मजा है। इस पर से यह समझना चाहिये कि, दान करना केवल हमारे ही लिये नहीं है किंतु अपने बच्चों और बच्चों के बच्चों के हित के लिये भी हमको दान देना चाहिये। पृथ्वी की भूमि और अनाज का बीज ही जब सैंकड़ों गुना दे सकता है तब स्वर्ग जैसी भूमी और परमार्थ जैसा बीज कितना अधिक दे सकेगा सो विचार करने से बड़ा आनंद आता है। भाइयो! जैसे बने वैसे गरीबों को मदद दो! देने ही में मजा है! क्योंकि दान देना फेंक देना नहीं है परंतु ऋतु में बीज बोने के समान है। जो साधन होते हुए भी बीज नहीं बोवेंगे वे विना फल के रह जायँगे और समय पर पछतावेंगे। अब भी

समय है कि बीज बोओ! धर्म के बीज बोओ! यही मनुष्यत्व है! यही ईश्वर की आज्ञा है! और इसी में कल्याण है!

*****

७७ दान देने से आज तक कोई भी कंगाल नहीं हुआ, और कोई हो भी गया हो तो वह उसी में अच्छा लगता है

दान देने से दुनियां में कोई भी गरीब नहीं हुआ और जो कोई हुआ भी हो तो वह गरीबी ही में अच्छा लगता है। दुनिया में माँगने वाले ही गरीब हैं, देने वाले गरीब नहीं। जिसको परमेश्वर ने कुछ दिया है उसका यथाशक्ति पात्र को दान करने से कुछ भी कम नहीं होता।

कवियों ने कहा है कि:–

दोहा–कुंजरमुखते गिर पड्यो, घट्यो, न गज आहार।
लाखों चींटी ले चलीं, पालन को परिवार॥

इसी तरह राजा और धनवान् लोग हाथी के समान हैं और गरीब लोग चींटी के समान हैं अपने खाने के लिये जो न खर्च होने योग्य पदार्थ बने हैं उनमें से थोड़ा सा गरीब लोगों को दे दिया जाय तो उन धनवानों का तो कुछ कम नहीं हो सकता परन्तु गरीबों का उसमें कुटुंब सहित पालन हो सकता है। मेले ठेले में से अमीर आदमी दो चार खिलौने कम खरीदें तो सहज में दस बीस रुपये बच सकते हैं और उन ही रुपयों की पुस्तकें खरीदकर गरीब विद्यार्थियों को दी जायँ तो बहुत बड़ा उपकार हो सकता है। रेल से यात्रा करने में पहले दरजे के बदले दूसरे दरजे की गाड़ी में यात्रा की जाय और वे बचत के रुपये गरीबों को तथा विधवाओं को दिये जायँ तो उसमें देने वाले का कुछ भी खर्च नहीं होता। बंबई जैसे नगर में परेल से कोलाबा जाने में घोड़ा गाड़ी का एक रुपया खर्च न कर ट्राम में एक आना देकर काम चला लिया जाय और बाकी बचे हुए पंद्रह आने की पूड़ियां खरीदकर गरीबों को खिलाई जायँ तो १०–१५ आदमियों का एक बार पेट भर सकता है जो स्त्री के जेवर में पचीस हजार रुपये लगाते हों वे दस ही हजार के जेवर से काम चला लें और शेष पंद्रह हजार रुपयों का सूद प्रतिवर्ष धर्म में लगाया करें तो क्या उनकी स्त्री बेडौल हो जायेगी? कभी नहीं! किंतु दान से तो और और उसका तेज बढ़ेगा! परन्तु ऐसा होना बहुत कठिन है, कारण हम तो अपने अहंभाव में लगे हुए

हैं तब ईश्वर के नाम पर जो देना चाहिये सो देवे कौन? यही बंधन है। यही पाप मरता है और यह न देना ही ईश्वर के मार्ग में आगे बढ़ने से रोकने वाला है। भाइयो जैसे बनै वैसे देने का मार्ग साफ करो जिसमें स्वर्ग का तंग मार्ग भी चौड़ा हो जाय!

*****

७८ देने में मजा है लेने में नहीं, देने वाले के घर हाथी घोड़े हैं लेने वाले के घर नहीं

संसार में देने में ही मजा है, लेने में नहीं। संसार में जो सुन्दर मकान हैं, बगीचे हैं, जवाहरात है, गाड़ी घोड़े हैं, कारखाने हैं, दुकानें हैं, खजाने हैं और बड़े २ वैभव हैं वे सब देने वाले के ही यहां हैं, लेने वाले के यहां उनमें से एक भी नहीं है, यह अच्छी तरह याद रखना चाहिये। एक बड़े धर्मोपदेशक ने अपने व्याख्यान में कहा था "अब मैं बूढ़ा हुआ हूं और बचपन से आज तक हजारों आदमियों से कुछ न कुछ नित्य लेता ही रहा हूं तब भी मैं तो गरीब का गरीब ही बना रहा। कहावत है कि, भीख की हंड़िया छीके नहीं चढ़ती। सो ठीक ही है इसलिये लेने की इच्छा न रखो! सदा देने ही की इच्छा रखो! संसार में देने ही में मजा है।"

विद्वानों का कथन है कि, हम अपने ही लिये नहीं किन्तु जगत् भर के लिये उत्पन्न हुए हैं, इससे दो! देने में सुख है क्योंकि देना ईश्वर को बड़ा प्रिय है। देने से ईश्वर बहुत प्रसन्न होता है, इसी से उसने हमको बहुत सा दिया है और चाहता है कि, हम भी दूसरों को बहुत कुछ दें। इसलिये जैसे बनै वैसे अपने भाई बंधुओं को मदद दो।

१४ कुंड़लिया

दया हृदयमधि राखिये कीजै पर उपकार ।
यहै काम सबसों भलो सर्वधर्मको सार ।।
सर्वधर्मको सार सुवेद पुराणन गायो ।
याहीके आधार हरिजनन भव तरपायो ।।
इमि कर जोरे कहै रामजीवन मनमांहीं ।
प्रभु मम हृदय बिसारि दया कबहू नहिंजाहीं ।।१।।

*****

७९ दान का महत्त्व

पहले के लोग दान देने के लिये कैसी २ युक्तियां करते थे? प्राचीन ऋषि मुनि कंद मूल फल खाकर रहते और जो कभी वे भी न मिलते तो उपवास कर जाते, परंतु दान माँगने नहीं जाते थे। मांगने जाना तो एक ओर रहा परंतु राजा और धनवान् लोग उनके पैरों में गिर गिरकर कोई वस्तु मांगने की प्रार्थना करते थे तब भी वे किसी से कुछ नहीं लेते थे और अपने शरीर की मेहनत से तथा ईश्वर की इच्छा से जो कुछ मिल जाता था उसी पर अपना निर्वाह करते थे। कारण दान देने से पुण्य, तप, धर्म, यश, आयु और ईश्वर कृपा का क्षय होता है। इस बात को वे अच्छी तरह जानते थे इसी से वे आजकल के कलियुगी साधुओं की तरह किसी पर बोझा नहीं डालते थे। जो मांगना और दान ले अच्छा होता तो ऋषिमुनि उससे क्यों इनकार करते? पुरानी बातों और पुराणों से हमको मालूम होता है कि, ब्राह्मणों का अर्थात् विद्वानों तथा भलों को दान देने के लिये राजाओं को बड़े २ यत्न करने पड़ते थे, अर्थात् वे खाने के पान में (बीड़ी में) दान के गावों का नाम लिख देते थे फलों में मोहरें छिपाकर देते हैं। तात्पर्य यह कि उनको इस तरह पर छिपाकर दान देना पड़ता था जिसमें ब्राह्मणों को खबर न पड़े, क्योंकि खबर पड़ जाने से वे लेते नहीं थे। ऐसी २ युक्तियों से दान दिया जाता था तब ही सच्चे भक्त लेने से इनकार कर देते थे।

उत्तम पात्रों को दान देने से क्या लाभ होता है और दान लेने से कैसी खराबी होती है सो समझने के लिये हमको ऐसी बातें पढ़नी सुननी चाहिये और उनमें से यह शिक्षा लेनी चाहिये कि, जैसे बने वैसे अपने गरीब भाई बंधुओं को होनहार विद्वानों को तथा भक्तों को यथाशक्ति सहायता देना यही ईश्वर को सबसे अधिक प्रिय है।

*****

८० भगवान् का वचन है कि लेने वाला तो हलका है, और देने वाले का मैं भी दास हूं

दान माँगना बहुत बुरा और लज्जा का काम है यहां तक कि, श्रीकृष्ण भगवान् को भी बलीराजा से दान माँगने में वामन अर्थात् छोटा सा बनना पड़ा था। बड़ों को माँगना शोभा नहीं देता और माँगे वह बड़ा नही हो सकता। माँगते समय वामन रूप धर के श्रीभगवान् ने दिखा दिया है

कि, माँगना बहुत हलका काम है इतना ही नहीं परंतु दान देने वाले बलीराजा के द्वारपर द्वारपाल बन के भगवान् ने प्रमाणित कर दिखाया है कि देने वाले का मैं दास हूं। इस लिये दान देने की सदा इच्छा करो परंतु लेने की कभी मत करो क्योंकि जो लेता है उसे नहीं मिलता, परंतु जो देता है उसी को मिलता है। इससे जो लेना सो भी देने ही के विचार से लेना, तो बुरा नही है।

८१ हम सारी दुनियां के ऋणी हैं, ऋण न चुकाना ही पाप है

साधन होते हुए भी दूसरों को न देना अपने को ऋणी बनाये रखने के समान है। साधन होते हुए भी दूसरों को न देना अपना कर्तव्य पूरा न करने के बराबर है। साधन होते हुए भी दूसरों को उनके उचित स्वत्व न देना ईश्वर का सामना करने के समान है और साधन होते हुए भी दान न देना नरक है।

एक महात्मा ने ईश्वर की प्रार्थना करने में कहा है कि, "हे प्रभु! हमको अपना ऋण चुकाने का साधन दे जिससे हमको मरते समय उनको देखकर लज्जा के मारे जल्दी आंखें न मूँदनी पड़ें।"

हम सारी दुनियां के उपकारों में डूबे हुए हैं, सारी दुनियां के ऋणी हैं और ईश्वर के ऋणी हैं। ये सब ऋण दान देने से छूट सकते हैं दान लेने से नहीं। लेने से तो ऋण और बढ़ता है। इससे प्रार्थना करो कि, हे भगवन! हमको ऋण चुकाने का साधन दे।

१५ छप्पय

स्नान दान जप होम सोमव्रत बहुविध कीने ।
तीर्थन पग पग जाय जाय बहु दान जु दीने ।।
जला रु अग्नि ढिग बैठि बहु ध्यान लगायो ।
अन्न रु जलको त्यागि नेह तजि देह सुकायो ।।
कह रामजीवन रामके जिन नाम मुख धारे नहीं ।
तजि स्वामिको संपतिजु चाही सो न मूढ लही कहीं ।।१।।

*****

८२ स्वामी ने सेवक को धर्मशाला बनाने भेजा सेवक ने वह धन उड़ा दिय मौज मारने में

एक सेठ नें बहुत सा धन देकर नौकर को धर्मशाला बनाने और सदाव्रत बाँटने के लियें काशी भेजा। नौकर ने वहाँ जाकर न तो धर्मशाला बनायी और न सदाव्रत बांटा परन्तु उस पैसे से खूब ऐश आराम करना जारी कर दिया और थोड़े ही समय में सारा धन उड़ा दिया, सेठ ने उससे हिसाब माँगा तो वह सटपटाने लगा। अंत में सेठ ने उसे पोलिस के सुपुर्द किया। वहां पर उसको खूब तो मार पड़ी और सपरिश्रम जेल की सजा भोगनी पड़ी।

हमको क्या दंड मिलेगा सो भी तुम जानते हो? सेठ ने तो उस नौकर को पुलिस के हाथ में दिया था परन्तु हमारा ईश्वर हमको यमदूतों के हाथ में देगा, क्योंकि हम भी परमेश्वर के नौकर हैं और अच्छे २ काम करने की प्रतिज्ञा करके यहां आये हैं। परन्तु अपनी उस पुरानी प्रतिज्ञा पर अब हम ही पानी फेरते हैं। हमारी प्रतिज्ञा को हम ही तोड़ते हैं सो क्या नीचता नहीं है? क्या इसको ईश्वर का अपमान करना नहीं कह सकते? ईश्वर की इच्छा अपनी लीला फैलाने की है। ईश्वर की इच्छा सृष्टि की सुन्दरता बढ़ाने की है। ईश्वर की इच्छा अपने बालकों को हमारे भाई बंधुओं को प्रसन्न रखने की है और हमारा ईश्वर के साथ ठहराव भी यही है, तब विचार तो करो कि, हम उस ठहराव को तोड़ दें तो कैसे दंड पाये बिना बच सकते हैं? दंड से बचने का केवल एक ही उपाय है और वह यह है कि ईश्वर की माया का सदुपयोग करें अर्थात् मन को शुद्ध रखें और दान दें। इसलिये भाइयो! जो ईश्वर का है उसे ईश्वर के निमित्त खर्च करने में हाथ पीछे मत खींचो।

१६ साखी

नरतनू पाय खर मत बनै बाबरै तू, सोचिले जीयमाहिं बुद्धिधारी ।
गर्भके कौल इकरार लम भूलिगयो, बाहिरें जातही बुद्धि मारी ।।
रामजीवन कहै जीवनो खोय मत, लख चौरासी भ्रमत आई बारी ।
पीछे पछतायगो खाली, चलिजायगो हतै जमदूत जब दंड़ मारी ।।१।।

*****

८३ ईमानदार को ईश्वर हर तरह मदद देता है

पिता ने मरते समय अपने पुत्र को बुलाकर पूँछा "अपने पैसे का मैं क्या करूं?"

लड़के ने उत्तर दिया "आपकी इच्छा हो सो करो!"

पिता ने पूँछा "वह पैसा तुझे दूं या ईश्वर को दूं।"

लड़के ने उत्तर दिया "आपका और मेरा भला हो सो करो!"

यह सुनकर पिता ने सारा द्रव्य परमार्थ में दे दिया और शांत चित्त से देह त्याग किया इसके बाद वह लड़का गरीबी से किसी मंदिर में रहने लगा ईश्वर की कृपा हुई किसी सेठ ने उसको अपनी इकलौती कन्या व्याह दी और बहुत सा धन दौलत दहेज में दिया इस तरह उस गरीब को थोड़े ही समय में पिता से भी अधिक धन प्राप्त हो गया।

हमको विश्वास नहीं है, बाकी पूरा भरोसा रखना चाहिये कि ईश्वर अपने भक्त को कभी नहीं छोड़ता, परमार्थी को किसी न किसी तरह से मदद देता ही है इसलिये ईश्वर के नाम पर गरीबों को देने में हिम्मत नहीं हारना।

१७ पद

हरिजनको हरि नाम बड़ो धन, हरिजनको हरिनाम ।
बिन रखवाले चोर न लूटै, सोवत है सुखधाम ।। बड़ोधन ०१।।
दिनदिन होत सवायो दूनो, घटत न एक छदाम ।। बड़ोधन ०२।।
सूरदास प्रभु सेवा जाको, पारससे कहा काम ।। बड़ोधन ०३।।

८४ लड़कों को सेठ बनाने के लिये तुम नरक में मत पड़ो

हम एक बड़ी भूलकर रहे हैं उसे भी जानते हो? वह भूल यह है कि, अपने लड़कों को सेठ बनाने के लिये हम आप नरक में पड़ने का काम करते हैं। वह भूल यह है कि, अपने लड़कों को भरा हुआ रखने के लिये हम खाली हाथ जाते हैं। अपने लड़कों को थोड़ी देर मौज मारकर पाप में गिराने के लिये हम अपने पिता के पास धर्म रहित होकर जाते हैं। अपने लड़कों को मेहनत से बचाने के लिये हम स्वर्ग छोड़ देते हैं और अपने लड़कों को थोड़ी देर भरे हुए रखने के लिये हम सदा के लिये खाली रह जाते हैं यह भूल कुछ कम नहीं है। इसका कारण इतना ही है, कि हम ईश्वर पर भरोसा नहीं रख सकते। अपने लड़कों को सेठ बनाने के लिये हम नरक में जाते हैं इसका कारण इतना ही है कि ईश्वर की अनंत दया

और उसकी सर्वज्ञता को हम नहीं जानते, परंतु हमको समझना चाहिये कि, अपने लड़के वाली भी ईश्वर की ही दया का फल है और उनका भाग्य उनके साथ रहता है। इतना अवश्य है कि लड़के वाली को रगड़ते छोड़ जाने के लिये हम नहीं कहते हैं, क्योंकि वैसा करना पाप है। संसार के सब ही धर्मशास्त्र और महात्मा लोग कहते हैं कि, बच्चों को पढ़ाओ लिखाओ और सुखी रखो परंतु यह कोई नहीं कहते कि, उनको सेठ बनाने के लिये तुम नरक में पड़ो! यह फाँसी तो हम ही अपने गले में डालते हैं। इसलिये भाइयो! लड़कों को सेठ बनाने के लिये स्वयं तुमको नरक में न पड़ना पड़े इसका विचार रखना।

*****

८५ तुम तालाव नहीं खुदवा सकते परंतु प्यासे को पानी तो पिला सकते हो

सच है कि, प्रत्येक मनुष्य कुएं या तालाव नहीं खुदवा सकता परंतु विचार कर ले तो घर पर आये हुए प्यासे मनुष्य को लोटा भर पानी तो पिला सकता है! हम सड़कें और रास्ते नहीं बँधवा सकते परंतु किसी भटके हुए को अंगुली उठाकर मार्ग तो बता सकते हैं तथा मार्ग में पड़े हुए कंकर पत्थर और कांटे खोबड़े तो सरका सकते हैं! हम सदाव्रत नहीं बांट सकते परंतु किसी भूखे को टुकड़ा रोटी तो दे सकते हैं! हम धर्मार्थ दवाखाना नहीं खोल सकते परन्तु पड़ोसी को जरूरत पड़ने पर सोंठ, मिर्च तो दे सकते हैं! हम पाठशालाएं नहीं खोल सकते परन्तु उनमें अपने बच्चों को तो भेज सकते हैं! तथा गरीब विद्यार्थियों को पुस्तक तथा नकद से सहायता तो दे सकते हैं! हम सदा बीमारों की सेवा चाकरी नहीं कर सकते परन्तु कभी किसी बीमार बुढ़िया के लिये दवाखाने से दवा लाकर तो दे सकते हैं! हम बड़ी २ यात्राएं नहीं कर सकते परन्तु प्रार्थना और दर्शन के लिये देवमंदिरों में तो जा सकते हैं! हम गाँव भर का अँधेरा दूर नहीं कर सकते परन्तु औरों को प्रकाश बताने के लिये अपने घर के पास दिया तो लगा सकते हैं! हम नई पुस्तकों की रचना नहीं कर सकते परंतु पुरानी को पढ़ और औरों को पढ़ा तो सकते हैं! हम दुनियाँ को नहीं सुधार सकते परंतु स्वयं हम तो सुधर सकते हैं! हम नई वस्तु का शोध नहीं कर सकते परन्तु उनका शोध करने वालों को किसी न किसी तरह से मदद तो दे सकते हैं! और कुछ नहीं तब भी मन में अच्छे विचार

रखकर हँसी खुशी से दूसरों के साथ मीठी जीभ से तो बोल सकते हैं।

ऐसा २ कुछ २ भी बने तो अच्छा है। ईश्वरीय ज्ञान में आगे बढ़ने की ये ही सीढ़ियां हैं और गरीब से गरीब आदमी भी इन मार्गों पर चल सकता है। इसलिये कैसा ही छोटा परन्तु भला काम करो! अच्छे कामों को कभी छोटा मत समझो! महात्मा लोग कहते हैं कि, छोटे बीज की ओर नहीं परंतु बड़े फल की ओर दृष्टि देकर ईश्वर के निमित्त भले काम करो! इसका असर वृथा नहीं जाता! भगवान् ने भी कहा हैः–

"पार्थ नैवेह नामुत्र विनाशस्तस्य विद्यते ।
न हि कल्याणकृत्कश्चिद्दुर्गतिं तात गच्छति ।।"

गी० अ० ६ श्लो० ४०

अर्थ–हे अर्जुन! अच्छा काम कभी व्यर्थ नहीं जाता। इतना ही नहीं परन्तु भला करने वालों की कभी दुर्गति नहीं होती।

इस तरह भगवान् प्रतिज्ञा करता है तब भाइयो! अच्छे काम करने में पीछे मत रहो!

*****

८६ करनी करे सो पिता हमारा

साधु कहते हैं कि,

करनी करै सौ पिता हमारा, कथनी कथै सो नाती ।
कहनी रखै सो गुरु हमारा, हम रहनी के साथी ।
भैया हम रहनी के साथी ।।

अर्थ–कर्म करे सो हमारा बाप है, निंदा करे सो हमारा नाती है, अर्थात् उसके और हमारे तीन पीढ़ी का अंतर है, और जो रहनी रखे अर्थात् कहे वैसे ही करे यानी जिसका मन, वचन और कर्म एक हो वह हमारा गुरु है और हम उसी के साथी हैं।

कितने ही मनुष्य अच्छे कामं करते हैं परन्तु मान, बड़ाई अथवा कोई दूसरी इच्छा से करते हैं इससे उनका नहीं परन्तु जो अंतर्वृत्ति की प्रेरणा अनुसार आत्मा की शांति के लिये ब्रह्मार्पण कर्म करते हैं उनका ही कहना और करना एक है और वे ही हमारे गुरु हैं, इस वर्तमान समय में हमारी जीभ तो लंबी हो गयी है और हाथ छोटे हो गये हैं अर्थात् हमारी जीभ जितनी चलती है हाथ उतने नहीं चलते। बातें तो हम आकाश और पाताल की करते हैं परन्तु काम भलाई के नहीं करते। पवित्र होने के

लिये, सृष्टि के नियमानुसार चलने के लिये और ईश्वर को प्रसन्न करने के लिये हमको केवल बातें नहीं बनाना परन्तु भले २ काम करना चाहिये। पहले के साधु मौनव्रत लिया करते थे क्योंकि वे जानते थे कि, हमारा कल्याण बातें करने से नहीं होगा किंतु भली करणी करने से होगा। इसलिये भाइयो! साँप के साँप पाहुना (मेहमान) और जीभों की लपालप वाली कहावत के अनुसार केवल जीभ न चलाओ परंतु अपनी जाति और अपना मन सुधारो? अपने आचरण सुधारो! और अपने भाई बंधुओं को सुधारने और संसार की उन्नति करने का यत्न करो! इसी का नाम धर्म है और इसी से परमेश्वर प्रसन्न होता है। याद रखो कि, केवल बड़ी २ बातें मारना धर्म नहीं है किन्तु प्रपंच है। इसलिये भाइयो! बातें ही मारने में लगे रहो परंतु कुछ करणी करना भी सीखो! सीखो!! सीखो!!!

पद

राम सुमरले सुकृत करले, को जाने कलकी ।
को जाने कलकी रे, खबर नहीं या जुगमें पलकी ॥ टेक॥
कौड़ी कौड़ी माया जोड़ी, कर बातें छलकी ।
शिरपर तेरे पाप गठड़ियाँ, किसबिध होय हलकी ॥
किसबिध होय हलकी रे, खबर नहीं० ॥ राम सुम० ॥१॥
तारामंडल और रवि चंदा, और चराचरकी ।
चार दिनोंकी चमक तारमां, बिजलियां चमकी ॥
बिजलियां चमकी रे, खबर नहीं० ॥ राम सुमर० ॥२॥
भाईबंध अरु कुटुम कबीला, महोबत मतलबकी ।
दया धरम कर साहब सुमरो, बिनती नानककी ॥
बिनती नानककी रे, खबर नहीं० ॥ राम सुम० ॥३॥

*****

८७ जिन्दगी बिजली की सी चमक है उसमें मोती पिरो लेना ही सचेत होना है

भाइयो! हम कहते हैं कि, 'फिर करेंगे' 'आगे देखा जायेगा' 'अभी क्या समय निकल गया है?' 'आज नहीं कल कर लेंगे।' परंतु नहीं नहीं, ऐसा मत करो! अच्छा काम करने में परमेश्वर का स्मरण करने में और भगवान् की सेवा करने में ऐसा मत करो! हम लोग कहते हैं कि, 'अजी!

अभी तो हम बालक हैं।' 'अभी तो हम जवान हैं' तथा 'अभी तो हमको बहुत वर्ष निकालने हैं, परंतु नहीं नहीं, ऐसा मत समझो! शास्त्र कहते हैं कि, देह क्षणभंगुर है। महात्मा कहते हैं कि जिंदगी बिजली की चमक की तरह अस्थिर और क्षणिक है। इसमें ईश्वर को पहँचान लेना बिजली की चमक में मोती पिरो लेने के समान है। बिजली की चमक को बंद होते देर नहीं लगती उतने से समय में जो मोती न पिरोये गये तो यों ही रह जाते हैं। इसी तरह जिंदगी खत्म होने में भी देर नहीं लगती। जब तक जिंदगी है तब तक सार्थकता कर लो, मरे पीछे कुछ भी नहीं हो सकेगा, इसलिये धर्मगुरु बारंबार कहते हैं कि, समय थोड़ा है और करना बहुत है। जल्दी चेतो! जल्दी चेतो!! नहीं तो पछताओगे!!!

चेतने से पृथ्वी को हिला डालने का प्रयोजन नहीं है, चेतने से आकाश में से तारे पकड़ डालने का प्रयोजन नहीं है। चेतने से समुद्र में चढ़ाव उतार न होने का प्रयोजन नहीं है, चेतने से बरसात की बूंदे गिनने का प्रयोजन नहीं है, चेतने से तोप के गोलों के सामने जाने का प्रयोजन नहीं है और चेतने से घरबार स्त्री पुत्रादि को छोड़कर जंगल में जा डेरा जमाने का प्रयोजन नहीं है। किंतु चेतने का अर्थ है कि, परमेश्वर के शरण जाओ! परमेश्वर के नाम पर सत्कर्म करो! परमेश्वर के नाम पर मन को वश में करना सीखकर अंत:करण के पापों को घटाओ! और सदा सर्वदा परमेश्वर की भक्ति और सेवा में लगे रहो, कारण जिंदगी बिजली की चमक की तरह क्षणिक है। इस चमक में मोती पिरो लेना अर्थात् परमेश्वर को पहँचान लेना ही चेतना है।

लावनी--सभी जान जगत व्यवहार, रैनका सपना ।
तुम क्यों कहते हो यार, भूलकर अपना ।। टेक ।।
निज मात तात दारा, भगिनी सुत भ्राता ।
ये सभी सवारथ जान, परस्पर नाता ।। सभी जान० ।।१।।
इक राम भजन बिन, और नहीं निस्तारा ।
गुरु ज्ञान गहो तुम, उतरो भवजल पारा ।। सभी जान० ।।२।।
शिर काल अचानक, खबर नहीं इक पलकी ।
क्या करते हो अभिमान, आश नहीं कलकी ।। सभी जान० ।।३।।

८८ चार हजार पुस्तकों में से जरूरत की चार बातें मिलीं उनमें भी दो याद रखने की ओर भूल जाने की

धर्म का तत्त्व कितना बड़ा है और तब भी वह कैसे छोटे से रूप में आ सकता है सो समझाने के लिये एक अनुभवी फिलोसोफर (तत्त्ववेत्ता) ने कहा है कि बड़े परिश्रम के साथ बड़ा काल लगाकर मैं चार हजार पुस्तकें पढ़ी। उन चार हजार पुस्तकों में से मुझे सच्चे काम के योग्य चार बातें मिलीं उन चार बातों में से भी दो तो याद रखने की और दो भूल जाने योग्य थीं। (१) ईश्वर और (२) मृत्यु ये दो बातें याद रखने की और सदैव स्मरण रखने का है और (१) एक हमने दूसरे पर उपकार किया हो वह और (२) दूसरों ने हमारा बुरा किया है वह, ये दो बातें भूल जाने योग्य हैं।

ईश्वर का याद करने से हम ईश्वरीय आनंद में साझी हो सकते हैं और मृत्यु को याद रखने से हमारे मन में मन्द वैराग्य बना रहता है, जिससे आसक्ति कम होती जाती है, औरों पर किया हुआ उपकार भूल जाने से हमारा अहंभाव छूट जाता है जिससे वह उपकार ब्रह्मार्पण हो जाता है और हम पर दूसरों के द्वारा किये हुए अपकारों को भूल जाने से क्रोध छूट जाता और समदृष्टि आती जाती है जिससे हम प्रभुमय हो सकते हैं। तात्पर्य यह कि, याद रखने योग्य भक्ति है और भूल जाने योग्य किया हुआ परमार्थ है सब धर्मों का सार यही है, इससे भक्ति और परमार्थ को अपने जीवन का तत्त्व बनाओ।

*****

८९ कड़वी तूंबी को कितनी ही यात्रा कराओ परंतु भीतर से धोये विना मीठी नहीं होती वैसे ही अंतःकरण धोये विना ऊपरी आडंबर से पाप नहीं धुलते

ऋषियों ने बहुत अच्छी तरह समझा दिया है कि, धर्म का तत्त्व भक्ति और परमार्थ है और भक्ति तथा परमार्थ हृदय की सरलता से तथा हृदय की पवित्रता से बने तब ही काम के हैं, मन की मलिनता जब तक न धोई जाय तब तक बाहरी चाहे जितने कर्म करने से भी हम पवित्र नहीं हो सकते। लंबे २ तिलक, बड़ी २ छापें, सुन्दर मालाएँ और बहुत सी कंठियां धारण करने और अनेक बार नहाने या औरों का स्पर्श होने से छूत मानने से ही हम पवित्र नहीं हो सकते किन्तु हृदय की सरलता से पवित्र हो

सकते हैं। यहां पर एक पुराना दृष्टांत है:–

दो भाई थे। जिनमें छोटा बहुत खटपटी और धाम धूप करने वाला था। वह छोटी २ बातों से आसक्त रहता और बात बात में क्रोध करता, जरा जरा सी बात में उसको मान अपमान का विचार पड़ता और थोड़ी देर भी वह अपनी वृत्तियों को शांत नहीं रख सकता था। वह बहुत सी उपाधियाँ अपने शिर ले लेता और बहुत से प्रपंच करके खूब धन कमाता था। मान और कीर्ति पाने की उसको बड़ी लालसा थी इससे अपनी जाति में नाम पाने के लिये वह यात्रा करने चले, जाते समय उसने बड़े भाई से भी चलने को कहा तब शांतवृति और सरल चित्तवाले बड़े भाई ने कहा "मुझको तो यही यात्रा है। जहां ईश्वर का नाम लिया जाय वही तीर्थ है, मैं तेरे साथ इस समय नहीं चल सकता परन्तु मेरी एक तूबी है उसे साथ लेजा और सब यात्रा कराला। जहाँ २ तुम लोग स्नान पान करो वहां २ इसे भी स्नान पान कराना।"

छोटा भाई उस तूंबी को साथ ले गया और उसे अपने साथ अच्छी तरह यात्रा कराने लगा।

चार छः महीने में यात्रा पूरी करके जब वह लौटा तो बड़े भाई ने उसे अपने यहां निमंत्रण दिया और दोनों भाई भोजन के लिये बैठे। बड़े भाई ने वह यात्रावाली तूंबी ऊपर से मुँह काटकर भीतर से विना धोये ही पानी भर के छोटे भाई के पास धर दी और भोजन करते २ पूँछा "क्यों भाई! इस तूंबी को सारी यात्रा करा लाये?"

उसने जबाब दिया "हां भाई! अच्छी तरह से यात्रा करायी है। कोई भी स्थान ख़ाली नहीं छोड़ा गंगा, यमुना, नर्मदा, गोदावरी, पुष्कर, प्रयाग, सरस्वती, त्रिवेणी आदि सब ही स्थानों में इसे स्नान कराया है।"

बातें करते २ उसे प्यास लगी। उसने उसी पास धरी हुई तूंबी से पानी पिया परंतु वह इतना कड़वा था कि, पिया नहीं गया। पानी को थूंककर उसने कहा "भाई! यह क्या? इतना कड़वा पानी कैसा?

बड़े भाई ने कहा "यह क्या? यह तो नई बात है! क्या पानी कड़वा है? भाई यह तो वही तूंबी है जिसे तू अड़सठ तीर्थ करा लाया है! क्या अब भी इसमें कड़वापन रह गया? मालूम होता है कि, तूने इसको अच्छी तरह यात्रा नहीं कराई!"

छोटे भाई ने कहा "भाई हमने यात्रा तो उसको सब कराई है और स्नान भी इसको सब ही तीर्थों में कराया है परन्तु वह स्नान तो ऊपर से कराया है कुछ भीतर से तो धोया ही नहीं है! तब ऊपर के धोने से भीतर का कड़वापन कैसे जा संकता है?"

तब बड़ा भाई बोला "भाई! तुम यात्रा तो कर आये परन्तु मेरी तूंबी की तरह बाहर ही से यात्रा की है। या कुछ भीतर से भी?"

यह सुनकर छोटा भाई लज्जित हो गया। उसको विश्वास हो गया कि, व्यवहारिक प्रपंचों में होशियार होना संसार सागर को तैरने का उपाय नहीं है। इससे भीतर के विकार अर्थात् मन का कड़वापन थोड़ा ही जाता है! वह कड़वापन तो हृदय की सरलता से, हृदय की पवित्रता से दूर होता है। इससे ऊपरी ढ़ोंगों को छोड़कर हृदय की सरलता रखना सीखो! ईश्वर को सरलता ही प्रिय है, प्रपञ्च नहीं! आजकल लोग सरलता को भोलापन (सादगी) कहते हैं परंतु याद रखो ईश्वर को भोलापन ही पसंद है। इसलिये भाइयो! बाहरी आड़म्बर और प्रपंच ही में न पड़े रहो किन्तु अन्तःकरण की भी कुछ शुद्धि करो!

गजल

जिसने आपको देखा नहीं, मन मैलको धोया नहीं ।
दिल दागको खोया नहीं, असनानकिया तो क्याहुआ ।।जि०।।
कुत्ता हुआ धन मालका, धंधा किया जंजालका ।
हिरदा भया चंड़ालका, काशी गया तो क्या हुआ ।। जिस०।।

*****

९० यजमान अपने समयपर पुरोहित को देता है वैसे ही ईश्वर अपने समयपर हमको देगा फिर फल की उतावल क्यों?

भक्ति का फल पाने के लिये तुम जल्द बाजी क्यों करते हो? तुम्हारी जल्द बाजी से कुछ काम नहीं होगा, क्योंकि ईश्वर अपने समय पर देगा। हमारी इच्छा के अनुसार तुरन्त दे देने को वह बंधा हुआ तो है ही नहीं! ब्राह्मण या पुरोहित यजमान के घर मांगने जाता है तब यजमान उसे अपने समय से देता है। वैसे ही ईश्वर भी हमको योग्य समय आने पर अवश्य देगा। उसमें हठ या जल्द बाजी करना ठीक नहीं है। भक्ति का इनाम हम ईश्वर से जबरदस्ती हठ करके नहीं ले सकते किन्तु उसकी कृपा

से ले सकते हैं। हम हठयोगी नहीं हैं परन्तु कृपाभिलाषी हैं। प्रत्येक भक्त को यह बात भली भाँति समझ रखना चाहिये।

*****

९१ घर की छत गिरने लगे तब कौनसी वस्तु गिरेगी और कौनसी बचेगी सो नहीं कहा जा सकता इसी तरह देश में जब आपत्तियां पड़ती हों तब अधिक भक्ति करना चाहिये

सदा ईश्वर की भक्ति करना हमारा कर्तव्य है जिसमें भी देश में जब आपत्तियां पड़ती हों तब तो प्रत्येक मनुष्य का भक्ति करना और भी अधिक कर्तव्य होता है, कारण जब घर की छत गिरने लगती है तब नहीं कहा जा सकता कि, ऊपर की नीचे की और आसपास की कौनसी वस्तुएँ गिरकर टूट जायँगी और कौन २ सी बच जायँगी? वैसे ही देश में रोग की, अकाल की, लड़ाई की और गरीबी आदि की आपत्तियां पड़ रही हों तब वह भी घर की छत टूटने के ही समान है। ऐसे समय में इस बात का क्या विश्वास कि हम सपाटे में नहीं आयेंगे। इसलिये भाइयो! ऐसे आपत्ति के समय में तो अवश्य ही ईश्वर भजन करना चाहिये, कारण भक्ति में संतोष है और समर्थ ईश्वर के नाम में आपत्ति टाल लेना बल है। इससे सब लोगों को सच्चे दिल से परमेश्वर की प्रार्थना करना चाहिये और परस्पर सहायक होना चाहिये।

*****

९२ जहाज पर तूफान आता है तब सामान पानी में फेंककर भी प्राण बचाये जाते हैं, वैसे ही जंजालों को फेंककर तत्त्व को पहँचानो

जब जहाज पर तूफान आता है तब सारा सामान पानी में फेंककर भी प्राण की रक्षा करते हैं। वैसे ही हमको कालरूप तूफान लगा हुआ है इससे भीतरी अच्छे लगने वाले पाप और व्यावहारिक जंजाल रूप सामान को बाहर फेंक प्रभु में लीन हो आत्मा को बचा लेना चाहिये। तूफान के समय में भी जो सामान का लोभ किया जाय तो जहाज नहीं बच सकता। वैसे ही प्रीति पूर्वक हृदय में रखे हुए पापों को दूर न फेंके तो हम पार नहीं लगें और संसार सागर में डूबकर जन्म मरण के चक्कर में पिसा करें। जो इन जंजालों और पापों को फेंक न दें तो हम अनंत जीवन में नहीं जा

सकते। इसलिये माल असबाब से जीवन को अधिक मूल्यवान् समझकर पाप को दूर फेंक दो और अनंत जीवन को पसंद करो!

*****

९३ जिसके घर में आग लगती है वह सामान बाहर फेंक देता है, वैसे ही जिस भक्त के अंतःकरण में परमेश्वर के नाम की आग लगती है वह वासनाओं को छोड़ देता है

तुम जानते हो, जिसके घर में आग लगती है वह घर का मालिक अपना सारा सामान घर से बाहर फेंक देता है। वैसे ही जिसके हृदय में भक्ति का उदय होता है। तिसके हृदय में ईश्वर के नाम की रटना लग जाती है, वह भी अपने दिल में से सर्व चीजों को निकाल फेंकता है और न तो अपने मन में कोई चीज रखता है न घर में रखता है, क्योंकि प्रभु के नाम रूप ज्योति आग समान है जो सब निर्जीव वस्तुओं को जला देती है। इसलिये सच्चा भक्त वही है जो अपने मन में भरी हुई दूसरी निकम्मी बातों को अर्थात् माया को बाहर फेंककर आत्मिक ज्योति के अखंड शांत प्रकाश का अनुभव लेता है। इस आत्मिक ज्योति का अनुभव करना और इस अखंड शांति में रहना ही जीवन की सफलता है।

*****

९४ भक्ति में हठ और अभिमान नहीं करना, अभिमान छोड़ा कि स्वर्ग तुम्हारा ही है

एक साधु था। वह बहुत तप करता था, बहुत नियम पालता था और योग की बहुत कठिन २ क्रियाएँ करता था परंतु सब अहंभाव से करता था। "मैं करता हूं" "मैं बहुत करता हूं" "मैं अपने लिये करता हूं" मुझ जैसा करने वाला दूसरा कौन है?" ऐसे २ विचार उसके मन में रहा करते थे, इस तरह पर कई वर्ष निकल गये।

एक दिन नारद मुनि वहाँ आ निकले। उस साधु ने उनसे पूँछा "महाराज! कहां जाते हो?"

नारदजी ने उत्तर दिया "भगवान् के पास!"

साधु ने कहा "महाराज! भगवान् से पूँछते आना कि मेरा उद्धार कब होगा? मैंने बहुत तप किया है और बहुत वर्ष से में इस वन में रहता हूं अब तो उद्धार होना चाहिये।"

नारदजी ने जबाब में कहा "अच्छा! मैं पूँछता आऊंगा।"

५

इतना कहकर नारदजी चले गये। जब वे वैकुंठ में पहुँचे तो भगवान् से बोले "महाराज! वन में एक साधु कई वर्ष से तपकर रहा है। उसने पूछाया है कि, मेरा उद्धार कब होगा।"

भगवान् कहा "भक्तों के नाम की वह पुस्तक धरी है। उसे देख लो।"

नारदजी ने वह पुस्तक देखी परन्तु उसमें उस साधुका कहीं नाम न मिला तब उन्होंने भगवान् से कहा "महाराज! आपके यहां भी बड़ी पोल जान पड़ती है? ऐसे बड़े तपस्वी का अपनी पुस्तक में नाम ही नहीं है! ऐसी बड़ी भूल!"

भगवान् ने जबाब दिया "जो अहंकार से भक्ति करता है उसका नाम मेरी पुस्तक में नहीं लिखा जाता।"

यह सुनकर नारदजी वहाँ से चल दिये और उस साधु के पास पहुँचे, साधु ने पूँछा "महाराज! कहिये मेरा नंबर कब आवेगा?"

नारदजी ने जबाब दिया "भाई! भगवान् के यहां की भक्तों के नाम की पुस्तक में तुम्हारा तो नाम ही नहीं है!"

साधु ने चकित होकर कहा "महाराज! यह कैसे बन सकता है? मुझ जैसे तपस्वी और पुराने भक्त का नाम ही भगवान् के यहां नहीं है?"

नारदजी ने कहा "हाँ ऐसा ही है! मैंने अच्छी तरह से पुस्तक देखी है परन्तु उसमें तुम्हारा नाम नहीं है।"

साधु ने पूँछा "महाराज! तो इस अंधेरे का कारण क्या?"

नारदजीं ने उत्तर दिया "भाई! तुम भक्ति अहंकार के साथ करते हो और भगवान् कहते हैं कि, मेरी पुस्तक में अहंकारी का नाम नहीं लिखा जाता।"

साधु ने अपनी भूल स्वीकार करके कहा "महाराज! बात तो सत्य है। मुझमें अहंकार अवश्य है। परन्तु अब से मैं वैसा नहीं करूंगा।"

इधर ये बाते हो रही थीं इतने ही में एक विमान आकर खड़ा हुआ विमान वाले से पूँछने पर उत्तर मिला कि "मैं इस साधु को लेने आया हूं।"

नारदजी ने कहा "यह बात क्या है? अभी हाल ही तो मैं भगवान् के पास से चला आता हूं। वहां तो इसका नाम ही पुस्तक में नही निकला! फिर इतनी सी देर में विमान कहां से आ गया?"

विमान वाले ने उत्तर दिया "हाल ही में इसका अहंकार दूर हुआ और हाल ही विमान आ गया।"

मनुष्य अपना अहंकार छोड़ता है उसी समय परमेश्वर उसको अपना लेता है। ईश्वर की कृपा जब चाहिये तब ही तैयार रहती है, उसको तो केवल लेने की देर है हम हमारा अपनापन छोड़ दें और प्रभुमय हो जायँ तब स्वर्ग कुछ दूर नहीं है। निश्चय समझो कि, देर हमारी ही है! परमेश्वर की देर नहीं है।

*****

९५ अनर्थ का अर्थ साधु समागम गुरु गड़रिये की बात

एक बूढ़ा गड़रिया था। किसी ने उससे कहा कि "तू इतना बड़ा हो गया परन्तु अब तक तूने कोई गुरु नहीं किया सो ठीक नहीं। किसी को गुरु बना तो ठीक है तेरा कल्याण होगा, नहीं तो यों का यों ही चला जायेगा।"

गड़रिया था तो मूर्ख और जंगली परन्तु साथ ही में आस्तिक भी था उसका कहना उसको पसंद आया और उसी दिन से वह गुरु बनाने के विचार में लगा। अकस्मात् उसको एक महात्मा साधु मिल गये। वह उनके पैरों में गिर गया और बोला "महाराज! मुझको गुरु बनाओ!"

साधु ने कहा "बच्चा गुरु नहीं! चेला!!"

गड़रिये ने कहा "नहीं महाराज! मैं तो गुरु ही बनूंगा! मुझसे एक मित्र ने कहा है कि 'तू गुरु बना तो तेरा कल्याण होगा!' इससे महाराज! मुझे तो गुरु ही बनाओ चेला नहीं!"

साधु ने मन में सोचा कि यह मूर्ख है। इससे उसका आग्रह देखकर वह बोला "अच्छा भाई! आज से तू मेरा गुरु! परन्तु इतना याद रखना कि किसी से बोलना मत और सदा चुपचाप मन का मन में 'राम राम' जपता रहना!

गड़रिये नै वैसा ही किया, किसी से भी बोलना चालना बन्दकर दिया और 'राम राम' का मानसिक जाप जारी कर दिया।

होते होते कई मास निकल गये। फिरते २ एक दिन साधु ने एक नगर के बाहर नदी के किनारे पर आसन जमाया और वहीं पर अपनी धूनी डाल दी। नगर बड़ा था और वहां के रहने वाले भी श्रद्धावान थे। शनैः २ साधु के पास लोग आने लगे और एक बड़ा जमाव जमने लगा महाराज

की प्रशंसा नगरभर में फैल गयी। यहां तक कि, वहां का राजा भी एक दिन साधु के दर्शन करने को वहाँ पर आया। बातें करते २ राजा की दृष्टि उस बूढ़े गड़रिये पर पड़ी उसने पूँछा "महाराज! ये कौन है?"

साधु ने कहा "बाबा! ये मेरे गुरु हैं! परन्तु अब कितने ही समय से इन्होंने मौन व्रत धारण कर रखा है। किसी से बोलते चालते नहीं हैं।"

इधर ये बातें होती थीं उसी समय वहां होकर एक बकरियों का झुण्ड निकला झुण्ड को देखते ही गड़रिये गुरु की बकरियां हांकने की अपनी पहली बात याद आ गयी और उसके मुँह से निकल गया "तर्र! तर्र! तर्र!"

'तर्र तर्र' सुनते ही राजा को बड़ा आश्चर्य हुआ उसने पूँछा 'महाराज! आप कहते थे कि मेरे गुरु ने मौनव्रत धारण कर रखा है परन्तु ये तो गडरिये की तरह 'तर्र तर्र' करते हैं।"

साधु ने कहा "बाबा! तुझ पर गुरु महाराज की बहुत बड़ी कृपा हुई है इसी से उन्होंने अपना व्रत तक छोड़ दिया है, तू उनके कहने में समझा नहीं। उनका कहना यह है कि 'तर्र तर्र' अर्थात् संसार सागर से तर! तर तरने का यत्न कर।"

साधु का कहना राजा पर असर कर गया, गुरु गड़रिये के पैरों में बहुत कुछ भेंट करके राजा ने साष्टांग प्रणाम किया और उसी दिन से अच्छे कार्य करना आरम्भ कर दिया।

राजा के जाने बाद साधु ने गड़रिया गुरु से "कहा भले आदमी! यह तूने क्या किया? तूने तो मेरी बात ही बिगाड़ी थी! खैर! अब से ऐसा मत करना किसी से बोला चाला मतकर और मन ही मन में "राम राम जपकर।"

उस दिन के उपदेश का ऐसा फल हुआ कि थोड़े ही समय में गड़रिया वास्तविक गुरु बनने के योग्य हो गया।

सन्त समागम का यही माहात्म्य है इससे प्रत्येक मनुष्य को संत महात्माओं का समागम अवश्य करना चाहिये। सन्त समागम से मनुष्य भवसागर पार उतर सकता है।

*****

९६ पाप को मन में रखने से शांति नहीं मिलती

हम सबको सुख अच्छा लगता है और सुख ही के लिये हम सब फटफटाया करते हैं, परंतु कब भी सच्चा सुख तो हमको मिलता ही नहीं है, क्योंकि सुख मिलता है धर्म से और धर्म को हम जानते नहीं हैं, कारण हमारा हृदय तो पाप से भरा है। धर्म और पाप प्रकाश तथा अँधेरे के समान हैं ये दोनों साथ २ नहीं रह सकते इसलिये जब तक थोड़ा सा भी पाप हो तब तक हमको सच्चा सुख नहीं मिल सकता। क्योंकि पाप हृदय के मर्मस्थान में एक बड़ा घाव है। हृदय के मर्मस्थान में एक बड़ा घाव होने से शांति कैसे मिल सकती है? कहां है कि!

साधुओं की एक मंड़ली थी। उससे के साधु बहुत शांति से रहते थे और और लोगों को अपनी मंड़ली में मिलने का उपदेश किया करते थे। एक भला मनुष्य उनमें मिल गया और उनके साथ रहने लगा थोड़े दिन बाद वह उस मंड़ली के बड़े साधु के पास जाकर बोला "महाराज! मैं आपकी मंड़ली में मिल गया परंतु तब भी मुझे आप जैसा आनंद नहीं मिलता।

साधु ने उत्तर दिया "बच्चा! अभी तुझमें कोई पाप होगा!

उसने कहा "महाराज! कई वर्ष पहले मैंने अपने स्वामी की चोरी की थी परंतु वह उस बात को नहीं जानता।"

साधु ने कहा "बच्चा! तो वह पैसा जिसका उसको दे दे! अब तू उसका क्या करेगा?"

दूसरे ही दिन उस मनुष्य ने चोरी के दस हजार रुपयों के नोट विना अपना नाम पता लिखे सेठ के नाम पर भेज दिये। इसके थोड़े दिन बाद फिर वह मनुष्य उसी साधु के पास जाकर बोला "महाराज! मैंने चोरी का पैसा पीछा भेज दिया तब भी मुझको आप जितना आनंद नहीं मिलता।"

साधु ने कहा "रुपये भेजने में तूने अपना नाम प्रकाशित नहीं किया होगा। क्षमा नहीं माँगी होगी। इसी से आनंद नहीं मिलता।"

उस मनुष्य ने जबाब दिया "महाराज! यह कैसे बन सकता है? वह तो मुझे ईमानदार समझता है और मैं अपना चोरी करना स्वीकार कर लूं तो मेरी प्रतिष्ठा बिगड़ जाय,"

साधु ने कहा "बच्चा! जो सच्चा आनंद ही लेना हो तो अपने पाप की

क्षमा मांग! पाप की क्षमा मांगे विना सच्चा आनंद नहीं मिल सकता। चल मेरे साथ! मैं तुझे क्षमा करा दूं! थोड़ी ही लज्जा के लिये क्या तू सदा के लिये अपने हृदय में शूल गड़ा रहने देता है? दुनियां की थोड़ी सी शरम के लिये क्या तू ईश्वरीय आनंद को छोड़ देगा? थोड़ी सी देर की लज्जा के लिये क्या तू नरक में जायेगा? नहीं भाई ऐसा मतकर! पाप को हृदय में भरा मत रख! पाप को रखकर कौन सुखी हुआ है? ईश्वर बड़ा या शरम? बेटा! ईश्वर के लिये लज्जा छोड़ दे और क्षमा माँगले!"

अंत में वह मनुष्य उस साधु के साथ अपने पुराने स्वामी के यहाँ गया साधु ने सेठ से पूँछा "दो महीने हुए दस हजार रुपये के नोट आपके पास पहुँचे?"

सेठ ने जबाब दिया "हां! रुपये दस हजार मुझको मिले परंतु मैं यह नहीं जानता कि रुपये किसने और किस काम के लिये भेजे हैं?

साधु ने कहा "वे रुपये तुम्हारे ही हैं। इस तुम्हारे पुराने मुनीम ने वे रुपये तुम्हारी ही कोठी पर से कई वर्ष पहले चुराये थे। अब यह हमारी भक्त मंडली में मिल गया है और पाप छोड़कर धर्म का आनंद लेना चाहता है परंतु जब तक आपसे इसे क्षमा न मिलेगी तब तक इससे पाप दूर नहीं हो सकते और धर्म का आनंद नहीं मिल सकता। इसलिये आप कृपा करके इसे क्षमा पत्र दे दीजिये।"

सेठ ने चकित होकर कहा "मैं तो अब तक इस मुनीम को ईमानदार ही समझता हूं। मैं नहीं जानता कि इसने यह चोरी कब की।"

साधु ने कहा "बाबा! मनुष्य अपना पाप दुनिया से छिपा सकता है परन्तु अपने मन से कैसे छिपा सकता है? ईश्वर के आगे तो पाप छिप नहीं सकते! हृदय में पाप भरा हो तब आनंद क्योंकर मिल सके? इसको आनंद प्राप्त करना है इससे आपकी क्षमा की आवश्यकता है।

सेठ ने कहा "अच्छा तो मैं विचार करके चार महीने पीछे क्षमा पत्र लिख दूंगा।"

चार महीने पूरे हो जाने पर वह मनुष्य और साधु दोनों उस सेठ के पास फिर गये। सेठ उनको एक नये सुन्दर मकान में ले गया और बोला "यह मेरा क्षमा पत्र है! यह मकान आपके आनंद के लिये है! ईश्वरीय आनंद पाने के लिये जो अपने पाप की क्षमा मांगता है और चुराये हुए दस

हजार रुपये पीछे देता है उन रुपयों को अपनी संदूक में रख देने से मुझे भी क्या आनंद मिलेगा? इसलिये उन दस हजार रुपयों में बीस हजार रुपये दूसरे मिलाकर तीस हजार का यह मकान बना आपकी मंडली के ईश्वरीय आनंद करने के लिये मैं भेंट करता हूं।

सच्चा आनंद प्राप्त करने के लिये तो इस तरह पर निष्पाप होना चाहिये। पाप को हृदय में भर के कोई भी मनुष्य सच्चा आनंद और सच्ची शांति नहीं पा सकता। इसलिये पाप का पश्चात्ताप करो और जो भूलें हो गई हैं उनको सुधारो! यही आनंद प्राप्त करने का सच्चा उपाय है।

*****

९७ कस्तूरी के लिये हिरन झाड़ी २ में और पत्ते २ में ढूंढ़ता फिरता है परंतु यह नहीं जानता कि, कस्तूरी तो मुझमें ही है, वैसे ही ईश्वर हमारे ही हृदय में स्थित है परंतु हम उसे पहँचानते नहीं हैं

कस्तूरी हिरन की नाभी में ही भरी हुई है, परन्तु हिरन को उसकी खबर नहीं है इससे अपने ही शरीर में स्थित कस्तूरी की गंध से मोहित होकर वह उसकी खोज में पहाड़ और जंगल में फिरा करता है तब भी वह उसे नहीं मिलती। वैसे ही हम भी अपने हृदय में स्थित परमेश्वर को भूल जाते हैं और बाहरी स्थानों और बाहरी क्रियाओं में ईश्वर कों ढूंढ़ते हैं तब वह क्यों कर मिलें? कारण कस्तूरी पहाड़ों की शिखरों में और झाड़ियों की जड़ों में नहीं होती किन्तु ढूंढ़ने वाले उस हिरन की नाभी में होती है। वैसे ही ईश्वर भी हमारे ही हृदय में स्थित है जो आंतरवृत्ति हमारी साफ हो, सरल हो, विश्वास हो, सत्संग हो और ईश्वर के नाम का स्मरण हो तो हमको ईश्वर को ढूँढ़ने के लिये दूर जाने की जरूरत नहीं है। ईश्वर हृदय का धन है बाहरी वस्तु नहीं है। उसे केवल नहाने धोने और तिलक छापे में ही न ढूँढ़े किन्तु सदाचार और शुद्ध अंतःकरण से अपने ही हृदय में ढूँढ़ो!

*****

९८ लुटेरों की नजर राजा नहीं लेते वैसे ही पाप से भरे हुए हृदय से ईश्वर प्रसन्न नहीं होता

किसी एक राजा के पुत्र उत्पन्न हुआ तो सरदार उमराव और सेठ

साहूकार लोग राजा को नजर देने गये। कितने ही लुटेरे और लुच्चे लफंगे भी नजर लेकर गये। तब राजा ने कहा कि तुम्हारी नजर हम नहीं लेंगे, बदमाशों ने कहा "महाराज! हम आपकी प्रजा हैं। हम भी आपकी खुशी में खुश होते हैं। इससे हमारी नजर स्वीकार कीजिये।

राजा ने जबाब दिया "तुम लोग बदमाशी करते हो सो बंद करो, मेरी प्रजा को लूटते हो सो बंद करो। मेरे कर्मचारियों को कष्ट देते हो सो बंद करो और मेरे विरुद्ध चलते हो सो बंद करो। इन सब बातों को छोड़कर नजर करो तो मैं ले सकता हूं। शत्रु बनकर नजर करते हो सो कैसे लिया जाय। तुम्हारी इस नजर से मैं तुम पर खुश नहीं हो सकता और जब तक तुम लूट करना न छोड़ दो तब तक तुम्हारी मेरी मित्रता नहीं हो सकती। जो मुझे खुश करना चाहो तो तुम मेरी इच्छा के अधीन होकर चलो, मेरी इच्छा के अधीन हुए बिना मैं तुम्हारी नजर नहीं ले सकता"

हम भी उन लुटेरों की ही तरह हैं। हम ईश्वर के विरुद्ध चलते हैं। ईश्वर के बाल बच्चों अर्थात् अपने भाई बंधुओं को ठगते लूटते हैं, मन में बड़े बड़े विकार उत्पन्न करते हैं, ईश्वर के विरोधी अर्थात् काम और क्रोध आदि को शरण देते हैं और रातदिन बुरे कामों में लगे रहते हैं और बार पर्वणी तथा उत्सव पर ईश्वर के नजर करते हैं अर्थात् कुछ साधारण सा दान धर्म करते हैं सो भी केवल ईश्वर के निमित्त नहीं किंतु अपने अहंकार और लोकलज्जा के लिये। इसी से परमेश्वर उसे स्वीकार नहीं करता। ईश्वर कहता है कि तुम सुधरकर अर्थात् मेरी आज्ञा में रहकर मुझे नजर करो। मुझको नजर की भी जरूरत नहीं है। तुम तो केवल अपने शस्त्र अर्थात् पापों को छोड़कर मेरी शरण में आ जाओ! बस फिर तुम मेरे हो और मैं तुम्हारा हूं।

१८ पद

प्रभुजी साचा मन के संगी, जाकी लीला प्रेमसो रंगी ।।टेक।।
ध्रुवनै धरनि खड्यो हो सुमिरयो, मूरति देखी त्रिभंगी ।।१।।
प्रह्लादहु पण पूरि निबाह्यो, हिरनाकुश हत्यो कुसंगी ।।२।।
ग्राह ग्रस्यो गजराज उबारयो, गरुडहु छांड्यो संगी ।।३।।
रामजीवन प्रभु कैसें बन है, यहँ तो प्रेम की तंगी ।।४।।

*****

९९ डूबते आदमी को बचाने के लिये नदी में फेंका हुआ भाला

किसी नदी के चढ़ाव में कितने ही आदमी बहते जा रहे थे। यह देखकर उनको बचाने के लिये किनारे पर से राजा ने अपना भाला नदी में बढ़ाया जिन्होंने उस भाले को पकड़ लिया वे बच गये और जिन्होंने भाले का फल चुभ जाने के भय से उसे न पकड़ा वे बह गये। इसी तरह हमारे धर्मगुरुओं को समझना चाहिये। धर्मगुरु है वे वह राजा हैं और उनका धर्म है सो भाला है, जैसे भाले का फल पकड़ने में डर लगता है वैसे ही हमको धर्म के कर्म करने में कठिनाई जान पड़ती है। प्रार्थना, परोपकार, मनोनिग्रह आदि काम तब ही होते हैं जब हम अपने व्यावहारिक बुरे सुखों को त्याग दें। तात्पर्य यह है कि धर्म पालना कठिन लगता है परंतु इन कठिन कामों को जो पकड़े रहता है वह बच जाता है और जो इससे डरकर अपने निर्बल मन से निर्जीव स्वार्थ के लिये पवित्र धर्म को छोड़ देता है वह मृत्यु में और नरक में डूब जाता है। ईश्वर! हमको बचा! बचा! ! हमको धर्म पालने का बल दे।

*****

१०० सच्चे भक्त कैसी दृढ़तावाले और कितने कम होते हैं?

सच्चे भक्त की वार्त्ता

किसी राजा से उसके गुरु ने कहा "महाराज! संसार में भक्ति बढ़ाने के उपाय करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। यह काम प्रत्येक मनुष्य को अपनी शक्ति के अनुसार अवश्य करना चाहिये। इससे आप भी ऐसा यत्न कीजिये जिसमें आपके राज्य में भक्ति बढ़े।"

राजा ने कहा "आप ही बताइये! क्या करना चाहिये?"

गुरु ने उत्तर दिया "जो भक्त हों उनका कर छोड़ दीजिये।"

राजा ने इसे स्वीकार कर लिया और नगर में निश्चय कराया तो केवल एक भक्त निकला। उसके सब कर राजा ने छोड़ दिये और नगर में ढिंढोरा पिटवा दिया कि जो भक्त होगा उससे किसी प्रकार का कर नहीं लिया जायगा।

अब तो कर बचाने की लालच से बहुत से मनुष्य भक्त होने लगे। दो ही तीन बरस में सारा गांव भक्त हो गया। सब ही लोक तिलक छापे लगाने लगे। मंदिर में जाने लगे और भक्ति का पूरा पूरा ढोंग दिखाने लगे। राजगुरु उस समय यात्रा करने गया था। वह जब २-३ बरस में लौटा तो

क्या देखता है कि राजा ठाठबाठरहित और उदास हो रहा है। तब उसने राजा से पूछा "महाराज! यह क्या? आप इतने चिंतातुर क्यों है?"

राजा ने उत्तर दिया "यह आपकी आज्ञा के अनुसार चलने का फल है। आज तीन वर्ष से सब लोग भक्त हो गये हैं और कर आना बन्द हो गया है जिससे राज्य पर ऋण चढ़ गया।"

राजगुरु ने कहा "इसका उपाय कल करूंगा। आज आप नगर में ढिंढोरा पिटवा दीजिये कि जो भक्त हों वे यहां आवें। जब वे आ जांय तो उसको एक मकान में बन्द कराके उनसे कहला दीजिये कि 'हमारे गुरु आये हैं। उनको भक्त तेल की आवश्यकता है। इससे तुम लोगों का कल तेल निकाला जायगा। साथ ही में तेल निकालने का एक कोल्हू भी मँगवाकर उनके आगे खड़ा करवा दीजिये।"

राजा ने वैसा ही किया अब तो वे लोग लगे कांपने और थरथराने। जैसे तैसे रात पूरी हुई। प्रातःकाल होते ही राजा वहां आया और द्वार पर खडा होकर एक एक मनुष्य से पूछने लगा "क्यों भाई तू भक्त है?"

सब लोगों ने अपने अपने तिलक छापे पोंछ डाले। कंठियां तोड़ डालीं और वही उत्तर दिया कि "नहीं महाराज! मैं तो भक्त नहीं हूं! भूल से यहां आ फंसा हूं, मुझे क्षमा कीजिये।

इसी तरह का उत्तर दे देकर सब ही लोग चल दिये केवल एक मनुष्य रह गया उसने उत्तर दिया "महाराज! हां! मैं भक्त हूं जो किसी को आवश्यकता है तो खुशी के साथ मेरा तेल निकाले, मैं तैयार हूं, देह का नाश तो होना ही है फिर किसी के काम में आकर नाश हो तो बहुत अच्छी बात है। दधीचि ऋषि, मोरध्वज राजा, संगालशाह सेठ और महाराजा दिलीप आदि भक्तों ने औरों के लिये अपने तथा अपने पुत्र के प्राण दिये हैं। मैं भी जो मेरा देह किसी के उपयोग में आवे तो प्राण देने को तैयार हूं। इससे जो आपकी इच्छा हो सो कीजिये!

यह सुनकर गुरु ने राजा से कहा "यह सच्चा भक्त है! इसके सब कर छोड़ दीजिये और बाकी के इन सब ढोंगियों से चढ़ा हुआ बाकी का कर वसूल कीजिये!

इस पर से यह समझना चाहिये कि ऊपरी ठाठ बाठ और ढोंग धतूरे से मनुष्य भक्त नहीं बन सकता। भक्त बनने के लिये तो भक्ति का नशा भीतर ही से आना चाहिये और भक्त का रंग चारों ओर से चलना चाहिये, दुःख

या विपत्ति में भक्ति को छोड़ देनेवाले भक्त नहीं कहला सकते। इससे ऊपरी ढोंग छोड़कर सच्चे अंत:करण से भक्ति करो! इसी में कल्याण है!

१९ पद

प्रेमपियालो पीयो हरिजन अमर नाम तिन कीयो रे ।।टेक।।
ध्रुव पीयो प्रह्लादहु पीयो, मीराबाई पीयो रे ।
राणै प्यायो विषको प्यालो, सो अमृत कर दीयो रे ।।१।।
मोरध्वज नृप सत नहिं छोड्यो, पुत्र चीरकर दीयो रे ।
करी कृपा जब कृष्ण मुरारी, हरि हरि करि सुत जीयो रे ।।२।।
नरसी मेहता की लज्जा राखी, माहेरो भर दीयो रे ।
रामजीवन की बन है कैसें, प्रभुपद प्रेम न कीयो रे ।।३।।

*****

१०१ भगवान् को भजने से किसी की लज्जा नहीं जाती तब भी हमको भगवान् को भजने में लज्जा आती है और लज्जा के काम में लज्जा नहीं आती

वैष्णव गाया करते हैं कि प्रभु को भजते अभी किसी की लज्जा जाती नहीं जानी! इत्यादि।

हमारे बहुत से भाई ऐसे हैं जिनको भक्ति करते और मंदिरों में जाते लज्जा लगती है और भक्त कहलाने में अपमान होता है। परमेश्वर का पवित्र नाम लेने में जाने लजाने, अपने पापों को क्षमा कराने के लिये भी जीभ न उठाने, अपराधों के लिये पश्चात्ताप करने को भी तैयार न होने और भक्तमंडल में बैठते संकोच करनेवाले मनुष्यों को उद्धार परमेश्वर कैसे करेगा? किसी को गाली देते हमें लज्जा नहीं आती, मन में बुरे विचार करते हमको लज्जा नहीं लगती, माता पिता वृद्धों और गुरुजनों के आगे बेअदबी से चलते हमको लज्जा नहीं आती, खोटे प्रपंच और व्यभिचार करते और रंडी मुंडी को रखते हमको लज्जा नहीं आती, सट्टे और जुए में हमारी लज्जा नहीं जाती, अश्लील शब्द बोलते और नीच प्रकार की हँसी करते हमको लज्जा नहीं आती। माता पिता और पति स्वामी से लड़ते हमको लज्जा नहीं आती, जरा जरा सी बातों और पराई रकम हजम कर जाने के लिये अदालतों में जाते हमको लज्जा नहीं आती, आधे नंगे दीखनेवाले बारीक वस्त्र और वह भी बिना ढ़ंग के पहनते

हमको लज्जा नहीं आती, दूसरे निर्दोष मनुष्यों की कामशक्ति को उसकानेवाले हावभाव और कटाक्ष करते हमको लज्जा नहीं आती, हमारे पास बहुत कुछ होते हुए भी गरीबों को, दीनों को देने में नाहीं करते हमको लज्जा नहीं आती, नये नये नाटक तमाशेवालों से कपड़े पहनते और स्वागं भरते हमको लज्जा नहीं आती और जैसे भीतर से नही है वैसे अपने को दिखाने के लिये ऊपरी ढोंग करके हमको लज्जा नहीं आती, परंतु भक्ति करने में भक्तों से बोलने में, भक्त कहलाने में और सबके आगे ईश्वर का पवित्र नाम लेने में हमको लज्जा आती है! ईश्वर दया कर! दया कर!! इस लज्जा के पाप से हमको छुड़ा!!! कैसे विकार की बात है कि जिन बातों में लज्जा आनी चाहिये उनमें तो हमको लज्जा नहीं आती और जो हमारे मुख्य काम है, जिनको करना हमारा धर्म है, उनमें हमको लज्जा आती है। अफसोस! अफसोस!! ऐसी झूँठी लज्जा रखनेवालों के लिये अफसोस!!! ईश्वर! ऐसे अधजलों पर दया कर! दया कर! और उनको भक्ति करने की सामर्थ्य दे!!!

२० पद

शरम भरम को त्यागि संतजन सेवै स्वामी श्रीजदुराय ।। टेक ।।
राजा रंक गुनी अगुनी जन, सेवत जाहिं गनेश मनाय ।।
बाल वृद्ध कायर अरु शूरा सेवैं जाकी करत सहाय ।।१।।
ध्रुव प्रह्लाद शरम तजि सेयो, जन जन आगे प्रभुगुन गाय ।
अंबरीष उद्धव अक्रूरहु, लाजजहाज दियो है बहाय ।।२।।
नृप खट्वांग मुहूरत सेयो अविचल भयो मोक्षपद पाय ।
रामजीवन जीवन मनि खोकरि, मीज हाथ फेरि कहा बसाय ।।३।।

*****

१०२ भला मनुष्य ही जब किसी की मजदूरी दिये बिना नहीं रहता तब ईश्वर अपनी सेवा का फल दिये बिना कैसे रहेगा?

दोहा—तुलसी तनक न छाँडिये, लेन हरी को नाम ।
मनुस मजूरी देत है, क्यों रक्खैंगे राम ।।

हम सब जानते हैं कि किसी हकदार का हक मारना बड़ा पाप है। कोई सा भी भला मनुष्य किसी की मजदूरी नहीं रख लेता। तब विचार तो करो कि अनंत ब्रह्मांड का नायक समर्थ परमात्मा हमारी मजदूरी कैसे

रख लेगा! इसका कारण तो बताओ कि ईश्वर हमारी सेवा का फल क्यों नहीं देगा? सर्व शक्तिमान् दयालु परमेश्वर हमको देने में समर्थ है और हम उसकी दया के पात्र हैं सो समझते हुए भी हम अविश्वास क्यों करते हैं? विश्वास रखो कि भगवान् हमारी मजदूरी कभी नहीं रख लेगा! मजदूर की थोड़ी देर और थोड़ी मेहनत का हम भी जब थोड़ा बहुत पैसा दे देते हैं तब भक्तों की, कि जो नित्यप्रति घंटे के घंटे अपने जीवन भर अपने अनेक स्वार्थों को छोड़कर भगवत्सेवा में तन मन धन से लगाते हैं, मेहनत क्योंकर वृथा जा सकती है! भाइयो! इसका इनाम बहुत बड़ा है, सत्संग का सुख, हृदय की पवित्रता, मन की शांति, जहां जहां दृष्टि पड़े वहां वहां आनन्द, स्वर्ग का सुख, अनन्तकाल की मोक्ष का आनन्द ये सब इसी का इनाम है। इससे भाइयो! ऐसा सुख ऐसा इनाम पाने का यत्न करो!

दोहा–मानुस के गुण जो कथै, सो इच्छित फल पाय ।
प्रभुहिं भक्तिसों जो भजै सो किमि खाली जाय ।।

*****

१०३ दूधवाली गाय को अच्छा अच्छा खाना मिलता है, वैसे ही ईश्वर भक्तों को बहुत बहुत सुख देता है।

बिना दूध की गाय की अपेक्षा दूधआली गाय को हम अधिक खिलाते हैं और उसकी संभाल की अधिक रखते हैं, कारण वह दूध देती है और बच्चों का पोषण करती है। वैसे ही ईश्वर के लिये भक्तजन दूधवाली गाय के समान हैं। कारण वे संसार में ईश्वर का नाम रूप अमृत बरसाते हैं और प्रजा को विश्वासरूप पोषण देते हैं। इससे औरों की अपेक्षा वे ईश्वर से अधिक पाने के हकदार हैं। जरा विचार तो करो कि ऐसी भगवत्सेवा करने में जीवन व्यतीत करनेवाले विश्वासु भक्तों को भगवान् कैसे भूल जायगा! जब बिना दूध की गायों को ही जो चाहिये सो मिल जाता है। मरकही गायों को मिलता है, गायों को भोंकनेवाले कुत्तों को भी मिल जाता है और गायों से शत्रुता रखनेवाले बाघ को भीं वह नही भूलता तब दूधवाली गाय से भी श्रेष्ठ दुनिया में ईश्वर का नामरूप अमृत बरसानेवाले भक्तों को ईश्वर कैसे भूल जायगा! क्या तुमको इतना भी विश्वास नहीं है? जो हममें इतना भी विश्वास न हो तो हम मनुष्य कहलाने योग्य नहीं है, इसलिये ऐ कृपाभिलाषियो! ईश्वर के विश्वास में

आओ और ईश्वर को अपने विश्वास में लाओ। ईश्वर सबको सुख देनेवाला है। वह तुमको कभी नहीं भूलेगा।

२१ ध्रुवपद

हरि बिन जग आन नाहिं, भूले मन सहाई ।।टेक।।
ध्रुव को पद अचल दिया, प्रह्लाद को उबार लिये ।
गज की जब सुनी टेर, गरुङ छांडि धाई ।।१।।
पांडव वन पर विपति परी, दुरवासा कुमति धरी ।
शाख चाख लाज राख, ऋषि दिये भगाई ।।२।।
द्रुपदसुता विकल भई, लज्जा मम अब गई ।
हरि पुकारि हेरतहु, हरि भये सहाई ।।३।।
जर्जर तनु श्वेतबाल भयेउ सोचि नंदलाल ।
दारा सुत जग जँजाल, कोउ नहीं सहाई ।।४।।

*****

१०४ भिक्षुक भिक्षा के पात्र हैं परंतु भक्त और गुरु दान के पात्र हैं

शास्त्र कहते हैं कि, भिक्षुक भिक्षा के पात्र हैं परन्तु भक्त और गुरु दान के पात्र हैं, कारण वे ईश्वर की जय बुलानेवाले हैं और जगत् में प्रभु का नामरूप अमृत डालनेवाले हैं इससे वे श्रेष्ठ हैं। संसार के बहादुर पुरुषों से भी भक्तजन अधिक बहादुर है क्योंकि वीर पुरुष औरों के साथ लोहे के शस्त्र और बारूद गोली से लड़ाई करते हैं परंतु भक्तजन तो संसार के मिथ्यासुखों के साथ लड़ाई करते हैं, किसी से भी जीतने में न आ सकनेवाले बलवान् विषयों के साथ लड़ाई करते हैं, समझन में न आने योग्य ईश्वर की अकलित माया के साथ लड़ाई करते हैं और वह भी बाहरी बारूद गोले से नहीं किन्तु विश्वास के बारीक अदृश्य तार से, राजा लोग तो केवल बाहरी जगत् पर हुकूमत चलाते हैं परंतु गुरु लोग हमारे अतंर्बह्मांड में राज्य करते हैं। इससे वे राजाओं से भी श्रेष्ठ है। इस तरह वे मान और दान के पात्र हैं।

दान में हाथी, घोड़े, रथ, पालकी, मकान और गांव भी दिये जा सकते हैं और तो क्या परंतु अपना देह तक अर्पण किया जा सकता है। भक्त और गुरु ऐसे ही दान के पात्र हैं, क्योंकि वे ईश्वर के नाम का बरसात बरसाते हैं, परंतु भिक्षुक तो भिक्षा ही के पात्र हैं अर्थात् उनको तो उनकी

आवश्यकता के योग्य यथाशक्ति देना जरूरी है। दान और भिक्षा में इतना अंतर है, कारण दान लेनेवाले भक्तों के यहां बहुत से भिक्षुकों का निर्वाह होता है और गुरुओं के यहां बहुत से शिष्यों का पोषण होता है परंतु भिक्षुकों के यहां ऐसा कोई भी काम नहीं होता। वे केवल अपने लिये अथवा अपने कुटुंब के लिये ही मांगते हैं, इससे वे भिक्षा के पात्र हैं और गुरु तथा भक्तजन दान के पात्र हैं। इसी से इनको सहायता देने की शास्त्र में आज्ञा है और वही सब भाइयों का कर्त्तव्य है। भाइयो जो ईश्वरीय मार्ग में आगे बढ़ना है तो इस कर्तव्य को अच्छे प्रकार से पूरा करो।

२२ दोहा

जगतमाहिं जब बहुत पर, गुणिजन पावै मान ।
जिमि पुहुपनके तरुनको, सींचत माली जान ॥१॥

*****

१०५ इंद्र की पानी की वर्षा से भी भक्तों की प्रभुनाम की वर्षा अधिक श्रेष्ठ है

एक बार इंद्र को अभिमान हुआ कि मैं ही सबसे बड़ा हूं क्योंकि मैं पृथ्वी पर पानी बरसाता हूं, जो मैं पानी न बरसाऊं तो सब प्राणी थोड़े ही समय में मर जांय, मेरा सा अधिकार और किसी के हाथ में नहीं है और मुझ जैसा बल किसी के पास नहीं है जिस समय इंद्र इस तरह की अभिमान की बातें कर रहा था उसी समय उसका अभिमान तोड़ने के लिये ईश्वर की इच्छा से देवताओं की दुंदुभी बजने लगी। यह देख इंद्र ने अपने गुरु बृहस्पति से पूछा "महाराज! आज क्या है! दुंदुभी क्यों बजती है?"

गुरु ने उत्तर दिया "तेरे शिर पर पैर धर के अभी एक भक्त पृथ्वी पर से ब्रह्मलोक को जानेवाला है। उसकी खुशी में दुंदुभी बजती है'?

इंद्र ने पूछा "महाराज! उसमें ऐसा कौनसा बल है जिससे वह मेरे शिर पर पैर रखकर जायगा?"

गुरु ने कहा "तू तो केवल ऋतु में ही पानी बरसाता है और उसमें भी कभी कभी लोभ कर जाता है तब भी इतना अभिमान करता है परंतु उस भक्त ने तो अमृत से भी अधिक उत्तम परमेश्वर के नाम की पृथ्वी पर अखंड बरसात बरसायी है और वह भी ब्रह्मार्पण, इससे वह तेरे शिर पर पैर रखकर स्वर्ग को भी उल्लंघन करके सीधा ईश्वर के पास चला

जायगा''

यह बात सुनकर इंद्र का अभिमान जाता रहा। उसको निश्चय हो गया कि मेरी पानी की वर्षा से भी भक्तों की प्रभु के नाम की वर्षा अधिक श्रेष्ठ है। इसलिये सब भाइयो! भक्ति का महत्व समझकर भक्त बनने का यत्न करो!

*****

१०६ विश्वास की डोरी पर दौड़नेवाले भक्तजनों की श्रेष्ठता

ऊंची और पतली दीवार पर किसी मनुष्य को चलते देखकर हमको भय और आश्चर्य होता है, बांस पर मनुष्य को चलते देखकर उससे भी अधिक आश्चर्य होता है, नटों को रस्सी पर चलते देखकर और भी आश्चर्य होता है और सरकस में लोहे के बारीक तार पर बिल्ली कुत्ते को दौड़ते देखकर तो हमारे आश्चर्य का ठिकाना ही नहीं रहता है, तब भक्तजन हमारी स्थूल आंखों से न दीख सकने योग्य पतली, बारीक और चिकनी विश्वास की डोरी पर चलते हैं, प्रभु के विश्वास पर जीवन व्यतीत करते हैं वे कितने श्रेष्ठ हैं इसका विचार तो करो। इस तरह आश्चर्यकारक प्रभु को प्रिय और विश्वासी मार्ग पर जीवन व्यतीत करने की इच्छा रखो। यही उत्तम है। भगवान् ने भी कहा है कि:-

'अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ।।''

गी० अ० १७, श्लोक २८

अर्थ-श्रद्धा बिना विश्वास बिना जो कुछ होम किया जाय, दान किया जाय, तप किया जाय अथवा और कोई काम किया जाय तो वह सब व्यर्थ है। इसलिये हे अर्जुन! जो करे सो श्रद्धापूर्वक कर!

विश्वास ही धर्म और भक्ति का तत्त्व है और वही ईश्वर को प्रिय है भाइयो! विश्वासी जीवन व्यतीत करना सीखो! सीखो!! सीखो!!!

दोहा-एक भरोसा एक बल, एक आश विश्वास ।
स्वातिबूंद रघुनाथ है चातक तुलसीदास ।।

*****

१०७ श्रद्धा तो है मोहर समान और दूसरे साधन है हैं कौडी समान

महात्माओं का कथन है कि श्रद्धा है सो मोहर समान है और दूसरे साधन है सो कौड़ीसमान है, जो तुम्हारे पास एक भी मोहर होगी तो

कौडियां बहुत सी आपों आप ही चली आवेंगी परंतु कौडियां बहुत न होंगी तो मोहर नहीं आ सकेंगी। एक मोहर अर्थात् एक गिन्नी के आजकल पंद्रह रुपये आते हैं, एक रुपये के सोलह आने आते हैं और एक आने की दौ सौ छप्पन कौडियां आती है। इस हिसाब से एक ही मोहर कमाने से इकसठ हजार चार सौ चालीस कौडियां आ सकती है परंतु कौडियां जब इकसठ हजार चार सौ चालीस इकट्ठी की जाय तब एक मोहर आ सकती है।

मोहर सो विश्वास है और कौडियां है सो दूसरे साधन हैं एक एक कौडी कमाने में अर्थात् एक एक दुर्गुण छोड़ने में बहुत बहुत समय लगता है और तब भी विश्वास बिना पूरी पूरी प्राप्ति नहीं होती, इस तरह दीर्घकाल तक भी हम एक मोहर पूरी नहीं बना सकते। इसलिये पहले ही विश्वासी बनो! हृदय में विश्वास को भर रखो! और विश्वास की डोरी से ईश्वर को मन के साथ बांध लो! विश्वास एक ऐसी वस्तु है कि जिस एक ही पालने से सब वस्तुएँ मिल जाती हैं। इसी से यह उत्तम में उत्तम है और ऐसा होने से ही विश्वास के द्वारा ईश्वर पहचाना जा सकता है। एक ईश्वर को जान लेने से सब कुछ जान लिया जाता है परंतु सब कुछ जान लेने पर भी बिना विश्वास ईश्वर नहीं जाना जा सकता। इसलिये विश्वास को ही एक सच्चा तत्त्व समझकर बाहरी दौड़धूप छोड़ विश्वास के तार को पकड़ लो! यही जीवन का मजा है। यही जीवन की सार्थकता है, यही ईश्वर से माँगने योग्य है, यही ईश्वर को देने योग्य है और कि यही अपने भाई बंधुओं में उपदेश करने योग्य है कि भाइयों! विश्वासी बनो! विश्वासी बनो!! और ईश्वर के भरोसे का बल रखना सीखो!

*****

१०८ विश्वास से ईश्वर ही मिल जाता है तब भक्ति के साधन मिलने में क्या नयापन है

तुम जानते हो हम कितने बड़े अविश्वासी हैं। एक महात्मा ने कहा है कि, जो तुम में राई के एक दाने बराबर भी विश्वास हो तो तुम्हारे कहने से पर्वत हट सकता है, समुद्र उछल कूद करना छोड़ सकता है और सूर्य अपने स्थान पर स्थित रह सकता है।

केवल एक राई के दाने बराबर विश्वास में इतना बल है परंतु खेद है कि हम राई के दाने के हजारवें अथवा लाखवें हिस्से के बराबर भी

विश्वास नहीं रखते। विश्वास कितना सूक्ष्म और कितना बलवान् तत्त्व है तब भी हमको उसका अपने जीवन में कितना थोड़ा अनुभव होता है इस बात को समझाने के लिये हमारे शास्त्र कहते हैं कि गाय के सींग पर राई का दाना ठहर सके इतनी सी देर भी जो तुम विश्वास रख सको तो तर जाओ। तात्पर्य यह कि इतना सा विश्वास भी हम नहीं रख सकते। इससे विश्वास रखने का यत्न करो! क्योंकि जब विश्वास से सारा भवसागर ही तरने में आ सकता है तब उस सागर में से थोड़ी सी सीपें बीन लेना कौन कठिन है? अर्थात् विश्वास से जब स्वयं भगवान ही मिल सकते हैं तब विश्वास से भक्ति और दूसरे साधन मिल सकें इसमें क्या नयी बात है? इसलिये भाइयो! भगवत् शरण का बल रखना सीखो! वही सब धर्म का मर्म है! वही सब तत्त्वों का सत्व है! और वही ईश्वर को पाने का सुगम से सुगम और अंतिम से अंतिम उपाय है! निश्चय समझो कि इसके सिवाय ईश्वर को जानने का दूसरा कोई उपाय ही नहीं है। तात्पर्य यह कि हमारे जीवन में जो हम विश्वास रखना न सीखें तो निश्चय समझ लो कि, हमारा सारा जीवन वृथा ही गया और हम चौरासी लाख के फेरे में पड़ गये। परन्तु इस पर से निराश नहीं हो जाना चाहिये क्योंकि अब भी कुछ बिगड़ा नहीं है। अभी हमारे हाथ में समय है उतने में विश्वास करना सीख लो और विश्वास से महा समर्थ ईश्वर की पवित्र शरण पालो।

*****

१०९ विना लगाम के घोड़े पर बैठा हुआ लड़का गढ़े में गिर गया वैसे ही हम भी जो अपने मन पर विश्वास की लगाम न लगायँगे तो नरक ही में गिरेंगे

एक लड़का बिना लगाम के घोड़े पर बैठा हुआ था और जहाँ घोड़े की इच्छा होती थी वहां ही उसे दौड़ने देता था यह देख किसी मनुष्य ने उससे पूँछा "बच्चे! ऐसे बदमाश घोड़े को विना लगाम लगाये कैसे छोड़ रखा है?"

लड़के ने जबाब दिया "यह तो यों ही चलता है।"

आदमी ने पूँछा "तू इसे कहां लिये जाता है?"

लड़के ने जबाब दिया "जहाँ यह मुझे ले जाता है वहीं मैं जाता हूं।"

आदमी ने कहा "बच्चे! यह तू बड़ी भूल करता है! यह लगाम विना

का घोड़ा तुझे किसी गढ़े में गिरा देगा या किसी जंगल में जा डालेगा। बेटा! तू इस लगाम के विना घोड़े के भरोसे मत रहे!"

लड़के ने उसका कहना न माना और घोड़े को वैसे ही जाने दिया परिणाम यह हुआ कि थोड़ी ही देर में घोड़े ने उसे एक गढ़े में जा गिराया।

हम भी अपने मनरूपी चंचल घोड़े को विश्वास रूपी लगाम नहीं लगाते और उसको अपनी इच्छा के अनुसार दौड़ने देते हैं इससे किसी गढ़े में जा गिरे तो क्या नयी बात है? भाइयो! अपने मनरूपी घोड़े को विश्वास की लगाम लगाओ तब ही तो वह ईश्वरीय मार्ग में सीधा चल सकेगा नहीं तो पाप के कांटे वाले जंगल ही में फँसावेगा। हमको आँख होते हुए भी अंधा और कान होते हुए भी बहरा नहीं बनना चाहिये। मन के घोड़े पर विश्वास की लगाम लगाने से वह हमको देवलोक में ले जायेगा और विना लगाम उसकी इच्छा के अनुसार चलने देने से वह राक्षसों में ले जायेगा। कहो अब तुम कौनसा मार्ग पसंद करते हो? देवमार्ग या राक्षसमार्ग? स्वर्ग या नरक कौनसा चाहो वैसा ही मार्ग पा सकते हो, परन्तु इसका आधार है लगाम लगाने पर और वह लगाम है विश्वास, विश्वास में सर्वस्व है विश्वास में स्वयं भगवान् है। इससे यह निश्चय समझो कि, जिसने विश्वास पालिया उसने ईश्वर की कृपा पा ली।

दोहा–काहूके धन धाम है, काहू के परिवार ।
तुलसी मोसम दीनके, राम नाम आधार ।।१।।
नहिं विद्या नहिं बाहुबल, नहिं खरचनको दाम ।
तुलसी मोसम पतितकी, तुम पत राखो राम ।।२।।

*****

११० है तो असंभव तब भी शायद चमचे से समुद्र खाली कर दिया जा सके, परंतु मनुष्य से प्रभु का पार कभी नहीं पाया जा सकता

एक बड़ा तपस्वी साधु था। उसने बहुत से कर्म किये थे और बहुत से शास्त्र पढ़े सुने थे। उन पर से उसने मन में समझ लिया था कि मैंने ईश्वर को जान लिया। वह औरों के आगे अपनी इसी तरह की बढ़ाइयां मारा करता था। इस पर से एक दूसरे साधु ने उसकी भूल सुधारने के लिये

अपने एक बालक शिष्य को हाथ में चमचा देकर समुद्र पर उसी जगह भेजा जहाँ पर वह साधु स्नान किया करता था। वहां पहुँचकर उस लड़के ने चमचा भर भर के समुद्र का पानी किनारे पर फेंकना आरंभ किया। थोड़ी ही देर में वह ईश्वर को जान लेने का अभिमान रखने वाला साधु भी वहां जा पहुँचा। उसने उस लड़के को चमचे भर भर के पानी फेंकता देखकर पूँछा "बच्चा यह क्या खेल करता है?"

लड़के ने उत्तर दिया "मैं इस चमचे से समुद्र का थाह लेना चाहता हूं।"

साधु ने कहा "मूर्ख! इस तरह भी कहीं समुद्र का थाह आया है? जा अपने घर! नहीं तो अभी समुद्र की लहरों में बह जायेगा!"

लड़के ने कहा "महाराज! यहां पर एक साधु आते हैं। वे मन में समझते हैं कि मैंने ईश्वर को जान लिया। उनकी भूल बताने के लिये अमुक साधु ने मुझे यहां भेजा है। मैं उन साधु से कहूंगा कि, यद्यपि यह बन सकने योग्य बात नहीं है तथापि थोड़ी देर के लिये मान लिया जाय कि कदाचित् समुद्र तो कितने ही जमाने में चमचे से खाली भी हो जाय परंतु मनुष्य ईश्वर के गुणों का थाह नहीं पा सकता।

उस लड़के की यह बात सुनकर साधु का अभिमान छूट गया। उसको भली भाँति मालूम हो गया कि ईश्वर की गति अपार है।

जैसे लड़का समुद्र के पानी का चमचे चमचे से थाह नहीं पा सकता वैसे ही हम भी चंचल मन और स्थूल बुद्धि तथा इस पर भी अनेक विघ्न होने से अपूर्ण साधनों द्वारा ईश्वर का पूर्ण रूप नहीं समझ सकते। हमारा तो यही कर्तव्य है कि, दीनता से ईश्वर की शरण में जाकर उसकी इच्छा के अधीन हो रहें। ऐसा करने का सुगम से सुगम और अच्छे से अच्छा उपाय भक्ति है। इसलिये प्रार्थना करे कि हे भगवन्! हमको भक्ति दे! ईश्वर का स्वरूप भक्ति ही से जाना जा सकता है, कल्पना से नहीं। यही पक्का सिद्धांत है।

पद

तू अगाध, तू अगाध, तू अगाध देवा ।
निगम नेति नेति कहै, जाने नहिं भेवा ।। तू अगाध० ।।१।।
ब्रह्मादिक विष्णु शंकर, शेषहू बखाने ।
आदि अंत मध्य तुमहि, कोऊ नहिं जाने ।। तू अगाध० ।।२।।

सनकादिक नारदादि, शारदादि गावें ।
सुर नर गंधर्व मुनि, कोऊ नहिं पावें ।। तू अगाध० ।।३।।
साधु संत थकित भये, चतुर बुध सयाने ।
सुंदरदास कहा कहे, अतीही हराने, ।। तू अगाध० ।।४।।

*****

१११ संसार की हलकी से हलकी वस्तु का ही हमको पूरा २ ज्ञान नहीं हो सकता, तब ईश्वर का पूरा २ ज्ञान क्यों कर हो सकता है?

पृथ्वी पर तुमको जो छोटी से छोटी और हलकी से हलकी वस्तु दीखती हो उसी को उठा लो और देखो कि, उस छोटी से छोटी वस्तु का भी तुमको कितना थोड़ा ज्ञान है। फल को तुम अनेक बार सूँघते हो और सैकड़ों बार हाथ में लेते हो परंतु उसका भी तुमको या किसी दूसरे को कभी पूरा ज्ञान हुआ है? रोटी, दाल और भात हम नित्य खाते हैं परंतु नाम और रूप के सिवाय उसका सच्चा स्वरूप हमने कभी समझा है? अपने बालों को हम नित्य देखते हैं और नाखून तो दिनभर में सैकड़ों बार हमारी आंखों के सामने आते हैं परंतु उन बालों और नाखूनों का स्वरूप भी हमने कभी समझा है? धूल मट्टी और पत्थर से हमको सदैव काम पड़ता रहता है कारण हमारे घर इनसे ही बने हैं और इन ही पर हम चलते सोते बैठते हैं, सारांश यह कि, जीवन भर हम इनसे कभी दूर नहीं हो सकते परंतु इसके लिये भी हम क्या जानते हैं? इसका स्वरूप भी तो हम नहीं समझ सकते!

जब ऐसी २ साधारण बातों का ही हमको पूरा २ ज्ञान नहीं है तब जिसको वेद भी 'नेति नेति कहते हैं उस अनिर्वचनीय, इंद्रियों, मन और वाणी तथा बुद्धि से पर ईश्वर का सम्पूर्ण स्वरूप हम कैसे समझ सकते हैं? इसका जरा विचार तो करो! किसी भी छोटी से छोटी वस्तु का स्वरूप समझने में भी जब उसका आदि अंत आता है तो वहां ईश्वर ही आ खड़ा होता है, तब स्वयं ईश्वर का आदि अंत समझने में सिरपच्ची की जाय तो कैसे पता लग सकता है? ऐसा करना ही एक प्रकार की मूर्खता है। इससे तो बहुत से मनुष्य नास्तिक हो जाते हैं और बहुत से दीवाने बन जाते हैं। इसलिये उचित यही है कि, पूर्ण विश्वास से ईश्वर के शरण हो जाओ! ऐसा करने से जो कुछ समझने योग्य है वह आपों आप समझ में आने

लगेगा। ईश्वर की शरण में गये विना ईश्वर को जानने का कोई भी मार्ग नहीं है। भक्ति करने से ईश्वर की शरण प्राप्त होती है। जो ईश्वर का सच्चा स्वरूप जानने की इच्छा हो तो भक्ति करो! भक्ति करो!! प्रेम लक्षणा भक्ति विना ईश्वर का सच्चा स्वरूप समझने की आशा रखना व्यर्थ है! व्यर्थ है!! व्यर्थ है!!!

सवैया

हारिरहे मनमाहिं मुनीश्वर, विश्वपतीकी बात विचारी ।
तर्क किये कछु तत्व मिलो नहिं, दृष्टि बहुत मन गहरी उतारी ।।
मान त्यागि अनुमान कियो यह, मन अरु वाणी न पहुँचे हमारी ।
कैसे सक कहि कोई कवीश्वर, ईश्वरकी गति विश्वसे न्यारी ।।

(कवि दलपतराम)

*****

११२ जो यहां ऊँचे होंगे वे ईश्वर के आगे नीचे गिरेंगे जो यहां नवैगा वह ईश्वर के यहां मान पावेगा

गुजराती में कहावत है कि 'नम्योते प्रभुने गम्यो' अर्थात् जो नवैगा वह ईश्वर को प्यारा होगा। याद रखो कि, तराजू का जो पलड़ा नवता है वही भारी होता है, और जो ऊँचा रहता है वह हलका माना जाता है। इसी तरह जो मनुष्य नवता है वह बड़ा है, और जो सदा शिर ऊँचा किये रहता है वह संसार में हलका गिना जाता है, और ईश्वर के आगे और भी अधिक हलका समझा जाता है। जो वृक्ष फल वाले होते हैं वे ही झुकते हैं परन्तु विना फल वाले नहीं झुकते। वैसे ही जिनके हृदय दया और भक्ति मे भरे हैं वे नवते हैं परन्तु जो हृदय के धन से खाली होते हैं वे नहीं नवते। हमने नदी के किनारे पर देखा है कि, जो नवते हैं वे छोटे २ झाड़ भी बच जाते हैं और जो नहीं नवते वे बड़े बड़े वृक्ष भी पानी में बह जाते हैं तात्पर्य यह कि, नवना औरों के लिये नहीं है परन्तु खास अपने ही बचाव के लिये है। इसीलिये शास्त्रों में कहा है कि, जो यहां बड़े होंगे अर्थात् अभिमानी होंगे वे ईश्वर के यहाँ नीचे होंगे अर्थात् हलकी जगह पायँगे और जो यहां नवेंगे वे ईश्वर के यहाँ मान पावेंगे। इसलिये भाइयो! दीनता रखना सीखो! दीनता विना की भक्ति शोभा नहीं देती और सच्चा फल भी उसे नहीं मिलता। भक्ति का अर्थ है अधीनता और अधीनता दीनता विना हो सकती नहीं। इसलिये जैसे बने वैसे दीनता रखना सीखो!

२३ दोहा

जो नरमाई गहत सो, शत्रुनमध्य बसाय ।
बत्तिस दाँतन मध्य जिमि, जीह रहत हरखाय ॥१॥

*****

११३ परमेश्वर ने हमारे मौत के वारंट पर और हमको नरक में डालने के फैसले पर अभी दस्तखत नहीं किये इतने ही में हमको पाप छोड़ देना चाहिये,

एक लड़का बड़ा बदचलन था। उसके घरवाले बड़े तंग रहते थे। वह दिन प्रतिदिन अधिक २ बिगड़ता ही गया और गाँव के लोगों को सताने लगा। जब सारे गाँव के लोग उससे दुःखित हो गये तो उन लोगों ने उस लड़के को गांव से बाहर निकाल देने का ठहराव कर लिया और सबने मिलकर उसके पिता से भी इस काम में राय माँगी। कुछ तो अपने पुत्र से दुःखित होने से और कुछ लोगों के दबाव में आने से पिता भी उस समय उसको गाँव से निकाल देने की सलाह को स्वीकार कर लिया परन्तु जब वे लोग इकट्ठे होकर उस ठहराव के कागज पर हस्ताक्षर कराने आये तो उसकी हस्ताक्षर कर देने की हिम्मत न पड़ी। उस समय वह बहुत उदास हो गया, हाथ में से कलम गिरने लगी और उस देश निकाले के कागज पर हस्ताक्षर करने में उसने आनाकानी की। तब तो लोग भड़क उठे और बोले "यह क्या बात है? पहले तो तुम उस बात को स्वीकार कर चुके हो और अब क्या विचार करते हो। अब दस्तखत करने में इतनी देर क्यों? ऐसे नालायक लड़के पर इतना स्नेह क्यों करते हो?"

पिता ने कहा "वह कैसा ही नालायक है परन्तु है तो मेरा पुत्र! उसको देश निकाला देते मेरा जी ,नहीं मानता। लड़के कुपात्र हो जाते हैं परन्तु माता पिता कुपात्र नहीं होते इससे मैं चाहता हूं कि एक बार फिर भी इसको सुधरने का अवसर दिया जाय तो ठीक!"

लड़का दूर खड़ा २ सुन रहा था। उसको मालूम हो गया कि मेरा पिता अब भी मेरे लिये इतना दुःखित होता है और मुझ जैसे नालायक पुत्र को भी छोड़ना नहीं चाहता तो उसके प्रेम के लिये और उसकी भलाई के लिये सुधर जाने का मैं यत्न क्यों न करूं! इतना विचारकर वह उसी समय बोल उठा "बस साहब बस! बहुत हुआ! मुझे क्षमा करो! मैं आज से ही अपनी चाल सुधारने की प्रतिज्ञा करता हूं।"

लोगों ने पूँछा "यह क्यों कर बन सकता है कि अब तू सुधर जाय एक साथ सुधर जाने की प्रतिज्ञा करने का कारण तो बता?"

लड़के ने उत्तर दिया "यह बात मैं आज समझा हूं कि मेरी बुरी चाल से मेरे पिता को इतना दुःख होता है। इससे अपने पिता के लिये मैं आज ही से अपनी चाल सुधारने की प्रतिज्ञा करता हूँ।"

यह सुनकर पिता बहुत प्रसन्न हुआ उस दिन से पिता ने उसे अपने घर में रखा और गाँव के लोगों ने उसे क्षमा कर दिया। इसके बाद थोड़े ही दिनों में लड़का बिलकुल सुधर गया।

जिसके अंतःकरण से फटकार लग जाती है। जिसके भीतर से चाबी लगती है उसके सुधरने में देर नहीं लगती। परन्तु बात इतनी है कि, हमको सुधरने के लिये दृढ़ता पूर्वक प्रतिज्ञा कर लेना और जो मन बुराई की ओर झुका हुआ है उस मन को भक्ति की ओर झुका लेना चाहिये। हम भी उस नालायक लड़के की तरह अंतःकरण से बुरे हैं। परंतु हमारे दयालु पिता परमेश्वर ने अब तक हमको घर से बाहर नहीं निकाला है और हमको देश निकाले अर्थात् नरक में डालने के आज्ञापत्र पर तथा मौत के वारंट पर अभी तक हस्ताक्षर नहीं किये हैं, इतने ही में हमको सुधर जाना चाहिये तो हम बच सकते हैं। हमारे समर्थ पिता को दुःख देकर उसका अपमान करके हम क्या लाभ उठा सकेंगे? बुराई करने से जो सुख मिलते हैं वे भी दुःख ही हैं, बुराई के सुख से भलाई का सुख करोड़ गुना अच्छा है। इससे भलाई द्वारा सुख प्राप्त करने का प्रण करो! ईश्वर को प्रसन्न करने का यही उत्तम से उत्तम मार्ग है। ईश्वर का सामना करके अच्छा फल नहीं मिल सकता सो तो राक्षस भी समझते हैं और मूर्ख भी समझते हैं, तब हम तो मनुष्य हैं और सो भी अमेरिका के असली इंड़ियन अथवा आफ्रिका के होटेंटाट नहीं किंतु आर्य हैं। इसलिये आज से अपने पवित्र पिता ईश्वर के निमित्त पाप छोड़ देने का प्रण कर लो!

*****

११४ भक्तों का आनंद उनके हृदय ही में भरा रहता है, उस आनंद को ढूंढ़ने के लिये उन्हें बाहर नहीं जाना पड़ता

पद

दिल लगाओ राम फकीरीमें, दिल लगाओ राम फकीरीमें ।। टेक ।।

राम फकीरी अदल फकरी, चारों खूँट जागीरीमें ।। दिल ल० ।।१।।
जो सुख मिलता रामभजनमें, सो सुख नहीं अमीरीमें ।। दिल ल० ।।२।।
कहत कबीर सुनो भाई साधो! साहब मिलता सबूरीसे ।। दिल ल० ।।३।।

दो मित्र थे। उनको सुख पाने की बड़ी इच्छा थी। इससे वे नाच में जाते, नाटक में जाते, रास लीला में जाते, हवा खाने जाते, मेलों में जाते, बाजीगरों के तमाशों में जाते, स्त्रियों का गाना सुनने जाते, हँसी मजा करते, किशतियों में चढ़कर समुद्र की सैर करते, प्रदर्शिनियों में जाते, बारात में जाते, सभाओं में जाकर आगे ही आगे बैठते, टी पार्टी करते, सरकस देखते, घुड़दौड़ देखते, बाईसिकल दौड़ाते, गाने बजाने का शौक रखते, स्त्रियों के समाज में जाकर आँखें सेकते और जहाँ कुछ भी नयी बात होती वहां अवश्य करके पहुँचते थे। कारण वे सुख की तलाश में थे और इन बातों में उनको सुख मिलता था। कुछ समय बाद उनमें से एक भक्त हो गया अब वह ईश्वर की सेवा में अच्छे कामों में और ईश्वरीय आनंद में रहने लगा और बाहरी तुच्छ और हलकी बातों में से उसका आनंद जाता रहा।

एक दिन वह दूसरा मित्र आकर उस भक्त से बोला 'अब तू ऐसा कैसे बन गया? न कहीं जाना, न कहीं आना, न मौज शौक की बातें करना, न हँसी दिल्लगी में मन बहलाना यह तेरी क्या दशा हो गई? पहले के आनंद को बिलकुल ही भूल गया क्या?'

तब उस भक्त ने उत्तर दिया "मित्र! अब मेरा आनंद मेरे ही पास है। अब मुझे दूसरे आनंदों की आवश्यकता नहीं रही। अब मेरा हृदय सदा आनंद से भरा रहता है। मुझे आनंद की तलाश करने के लिये बाहर नहीं जाना पड़ता, अब तेरा आनंद मेरे लिये दुःख स्वरूप है। जो तू भी मुझ जैसा आनंद चाहता है तो तू भी मेरी तरह भक्ति रस में डूबजा! और जो तू वैसा न कर सके तो कृपा करके अब मेरे पास मत आ! मुझको अपना ईश्वरीय आनंद भोगने दे सो ही बस है! ईश्वरीय आनंद के आगे दूसरे आनंद किसी भी गिनती के नहीं! इसलिये भगवान् ने कहा हैः–

"यावानर्थ उदपाने सर्वतः संप्लुतोदके ।
तावान्सर्वेषु वेदेषु ब्राह्मणस्य विजानतः ।।"

गी० अ० २ श्लो० ४६

अर्थ–जैसे पानी, पीना नहाना, धोना आदि जो काम थोड़े पानी के

स्थान में होते हैं वे ही काम चारों ओर से खूब भरे हुए बड़े तालाब में भी हो सकते हैं। वैसे ही वेद में कहे हुए कर्म करने से जिस २ प्रकार का आनंद होता है वह सब आनंद प्रभु को जानने वाले भक्त को मिलता है।

*****

११५ अधिकार विना अच्छी वस्तुएँ भी पसंद नहीं आतीं, इससे ईश्वरीय आनंद लेने की योग्यता प्राप्त करो

एक स्त्री किसी मंदिर में कथा सुनने गई तब अपने छोटे बच्चे को भी साथ में ले गई। वहाँ जाकर थोड़ी देर में बच्चा रोने लगा। स्त्री ने उसे स्तनपान कराया। तब भी बच्चा रोता ही रहा, तो क्रोध में आकर उसने बच्चे के गाल पर थप्पड़ जमा दी। यह देख व्यासजी बोले 'बाई! बच्चे को क्यों मारती हो!"

स्त्री ने उत्तर दिया "महाराज! यह मुझे कष्ट देता है और कथा सुनने नहीं देता तब मारूं नहीं तो क्या करूं?"

व्यासजी ने कहा "वह तुमको कष्ट नहीं देता किंतु तुम उसको कष्ट देती हो। वह यहाँ आने के योग्य थोड़ा ही है! उसको तो खिलौने चाहिये, छोकरों के साथ खेलना चाहिये, घर में दौड़धूप मचाना चाहिये, और कुछ खाना भी चाहिये। उसको तुम कैद करने की तरह एक जगह बिठला रखो सो कैसे बने? वह कथा में क्या समझे? उसको तो स्वतंत्रता से खेलने कूदने की जरूरत है। तुम उसे यहां लाकर दुखी करती हो, वह तुमको दुखी नहीं करता।"

इसी तरह अधिकार विना अच्छी वस्तुएँ भी पसंद नहीं आतीं।

२४ दोहा

नरतनु पाय कहा भयो, भरतखंडके बीच ।
विना जो न करी हरिभक्ति सुठि, आय ग्रस्यो पुनिमीच ।।१।।

*****

११६ एक धर्म के उपदेश करने वाले ने कहा कि प्रभु के नाम का बल तो देखो, कि मुझ जैसा पापी भी भक्तिमान् होकर गुरु बन सकता है

किसी एक बड़ी सभा में खड़ा होकर एक विद्वान् धर्म का उपदेश करने लगा। उस समय सभा के लोगों में से किसी एक ने एक पत्र लिखकर उसके पास रखा। उस पत्र में लिखा था "अपने पहले कर्मों को भी अपने

व्याख्यान में कहना।"

उस पत्र को हाथ में लेकर उस विद्वान् ने सबके आगे पढ़ सुनाया और कहा "हम सब लोग किसी न किसी तरह से किसी न किसी पाप में पड़े ही हुए हैं। जिसमें भी मैं तो बहुत ही बड़ा पापी था। मुझसे ऐसे २ महापाप बने हैं कि उनका स्मरण करने से मैं कांप उठता हूं परंतु प्रभु के पवित्र नाम में इतना बल है और ईश्वर की कृपा ऐसी बड़ी वस्तु है कि उसके कारण से मुझ जैसा महापापी भी आज गुरु बन गया है। भाइयो! मनुष्यों के मन की निर्बलता की ओर न देखो परंतु परमेश्वर की बड़ाई की ओर देखो! प्रभु के नाम में और प्रभु की शरण में इतना बड़ा बल है कि, मुझ जैसा पापी भी भक्तिमान् बनकर गुरु बन सकते हैं। ऐ सब भाइयो! ईश्वर की शरण में आओ! भक्ति की प्रज्वलित अग्नि में पापरूपी काष्ठ को जलते देर नहीं लगती। क्योंकि पाप करने वाला तो है मनुष्य और कृपा करने वाला स्वयं भगवान् है! इससे प्रभु की कृपा के आगे पाप विचारे किस गिनती में? परंतु वह कृपा भगवान् की सेवा करने से मिलती है, हरि के चरण की शरण से मिलती है। इसलिये ऐ कृपाभिलाषियो! समर्थ प्रभु की बलवान् शरण लो तो मेरी तरह तुम बुरे होगे तब भी प्रभु के पवित्र नाम से भले बन जाओगे भगवान् ने भी गीता में कहा है:-

"अपिचेत्स दुराचारो भजते मामनन्यभाक् ।
साधुरेव स मंतव्यः सम्यग्वसितो हि सः ॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छांतिं निगच्छति ।
कौंतेय प्रतिजानीहि न मे भक्तः प्रणश्यति ॥"

गी० अ० ९ श्लो० ३०-३१

अर्थ-बहुत पापी मनुष्य भी जो अनन्य चित्तवाला होकर मुझको भजे तो उसको श्रेष्ठ मानना क्योंकि वह उत्तम निश्चयवाला है। वह पापी मनुष्य भी मेरे भजन से तुरंत धर्मात्मा बन जाता है और सदा के लिये शांति पा जाता है। हे अर्जुन! तू शपथ खाकर कहना कि, भगवान् के भक्त का नाश नहीं होता।

इसलिये बोलो भाइयो:-

पद

हरिदासा, हरिदासा, बनजा हरिदासा हरिदासा ॥ टेक ॥ सुधासिंधुके धोरे बसिके, मूढ रहत क्यों प्यासा । दीन होइ क्यों दुख पावत है, बसि

पारसके पासा ।। बनजा० ।।१।। कामधेनु सुरद्रुम चिंतामणि, ईश्वर अखिल निवासा । उनको छाँडि औरको ध्यावै, सो तो वृथा प्रयासा ।। बनजा० ।।२।। मानुषदेह दुर्लभ छिन भंगुर, ज्यों जलबीच बतासा । अचल सत्य एक सेवा हरिकी, सबकुछ तुरत तमासा ।। बनजा० ।।३।। शरणागतवत्सल भगवाना, क्यों मन रहत उदासा । दयाराम सतगुरू बताया, है मनसूबा खासा ।। बनजा० ।।४।।

*****

११७ ट्रेन छूटजाने के बाद स्टेशन पर रोना किस कामका? मरे के पीछे रोना भी निष्फल ही हैं!

एक मनुष्य कहीं विदेश जाता था उसे पहुँचाने के लिये उसकी माता स्टेशन तक गई। विदेश जाते हुए पुत्र को देखकर माता रोने लगी। पुत्र ने बहुत कुछ कहा सुना परंतु माता का रोना बंद न हुआ। इतने ही में समय हुआ और गाड़ी छूटी गाड़ी चलने लगी तो बुढ़ियाने पकड़ ली परंतु उसके पकड़ने से गाड़ी रुक थोड़ी ही सकती थी। गाड़ी चलने लगी और बुढ़िया भी साथ २ खिंचने लगी। अंत में उसने गाड़ी तो छोड़ दी और चिल्ला २ कर रोना शुरू किया, परंतु गाड़ी चल देने बाद रोना किस कामका? जब तक गाड़ी नहीं छूटी और हम उसमें सवार नहीं हुए तब ही तक में हमको ऐसा यत्न कर लेना चाहिये जिसमें आगे जाकर रोना न पड़े ट्रेन छूटे पीछे रोकर किसको दिखाना है? हम जिसके लिये रोते हैं वह हमारे आँसू थोड़ा ही पोंछ सकता है?

इसी तरह मरे के पीछे रोना भी निष्फल है। यहां से सदा के लिये रवाना होने से पहले ही हमको यहां ऐसा प्रबंध कर लेना चाहिये और अपने साथ इतनी रास्ता खरची (मार्गव्यय) बांध लेना तथा इतनी तैयारी कर लेना चाहिये कि, जिसमें रेलगाड़ी छूटने पर यहां वालों को हमारे लिये रोना न पड़े। और हमको अपने असली देश में जाते दु:खित और उदास न होना पड़े। हमको और हमारे पीछे वालें को मौत के समय रोना पड़ता है उसका कारण यह नहीं है कि, मातम दु:ख है इससे रोना पड़ता है परंतु अपनी मूर्खता और अपने स्वार्थ के लिये रोना पड़ता है। अभी हमारे हाथ में साधन है तब तक हमको अपनी भूलों को सुधार लेना चाहिये तो हम मौत को भी एक आर्शीवाद स्वरूप बना सकते हैं। ऐसा करने का यत्न करने से परमेश्वर प्रसन्न होता है। ट्रेन छूट जाने पर बैठे २

रोते रहने से कोई लाभ नहीं होता इसी तरह रोना है सो जाने वाले के लिये असगुन करना है, जाने वाले का अहित चाहना है, अपने प्यारे के हृदय में तीर मारने समान है और ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध होने का काम है। इसलिये भक्तजनों को मरे के पीछे रोना नहीं किंतु उसकी आत्मा को शांति देने और अपने आपको धैर्य देने के निमित्त मरे के पीछे धर्म के अच्छे २ काम करने चाहिये।

*****

११८ मृत्यु क्या है? साधु कहते हैं कि, मृत्यु ईश्वर की कृपा है!

मृत्यु क्या है! इसका जबाब ज्ञानी और भक्तजन यह देते हैं, मृत्यु एक प्रकार का सन्तोष है, मृत्यु पुराने में से नया बनाने वाली है, मृत्यु नीचे दरजे से ऊँचे दरजे में ले जाने वाली है, मृत्यु ईश्वर का आशीर्वाद है और मृत्यु ईश्वर की कृपा है, कारण जो मृत्यु न होती तो हम वैसी की वैसी स्थिति में पड़े रहते। जो मृत्यु न होती तो हमारी उन्नति कैसे हो सकती? मृत्यु न होती तो हम स्वर्ग में कैसे जा सकते? मृत्यु न होती तो हम ईश्वर को कैसे पा सकते? मृत्यु केवल एक परदा है। भगवान् ने भी इसके लिये गीता में कहा है:–

"वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णतिनरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहायजीर्णान्यन्यानि संयति नवानि देही ॥"

अ० २ श्लो० २२

अर्थ–जैसे मनुष्य पुराने वस्त्र छोड़कर नये वस्त्र पहनता है वैसे ही पुराना शरीर छोड़कर जीव दूसरे नये शरीर को धारण करता है।

पुराने के बदले में नया मिलना तो बड़े आनन्द की बात है। बड़ी कृपा की बात है। इस ऊपर के श्लोक से भगवान् यह दिखाते हैं कि, मृत्यु में दुःख नहीं है वरन् धैर्य है। इतना ही नहीं परन्तु इससे भगवान् यह भी कहते हैं कि, मृत्यु है सो केवल कपड़ा बदलने के समान है। मृत्यु है सो नाटक का एक परदा है। इस परदे के हटने पर पीछे से एक नया ही दृश्य दिखाई देता है। इसलिये मृत्यु का शोक न करना क्योंकि वह देवी है और ईश्वरीय नियम है। इससे भी बढ़कर बात है कि हमारे आगे बढ़ने में जो जो अड़चनें पड़ती हैं उनको मृत्यु ही दूर करती है। याद रखो कि, मृत्यु में कुछ भी शोक करने का काम नहीं किंतु वह तो ईश्वर की कृपा है और वह भी

हमारे कल्याण ही के लिये है। मृत्यु से हमको शोक होता है इसका कारण यही है कि, हम अज्ञान में डूबे हुए हैं इससे मृत्यु का उज्ज्वल स्वरूप नहीं समझ सकते। हम पाप से भरे हुए हैं इसी से मृत्यु की उज्ज्वल उग्र ज्योति सहन नहीं कर सकते और इसी से हम मृत्यु से डरते हैं।

इससे सिद्ध होता है कि, मृत्यु के लिये हम मृत्यु से नहीं डरते किन्तु अपने पापों के लिये हम मृत्यु से डरते हैं और मरने वाले को रोते हैं सो भी उनके आत्मा के लिये नहीं किन्तु अपने स्वार्थ के लिये इसी तरह ईश्वर ने उनके लिये जो अच्छे साधन दिये थे उनसे वे कुछ लाभ न उठा सके और खाली हाथ ही चले गये इससे हमें उन पर दया आती है सो ही हमारे रोने का कारण है। कुछ मृत्यु की कठोरता हमारे रोने का कारण नहीं है। भक्तों की दृष्टि में तो मृत्यु का स्वरूप बड़ा आनंद रूप है और वे उसे ईश्वर की कृपा समझते हैं इसलिये भाइयो! आज से प्रण कर लो कि, हम मृत्यु से डरेंगे और उदास होंगे नहीं किंतु उसको ईश्वर की कृपा समझकर और शांति के साथ उसके अधीन होंगे, याद रखना कि जो मृत्यु से डरते और शोक करते हैं वे सच्चे भक्त नहीं हैं क्योंकि वे भगवान् की इच्छा के अधीन नहीं होते, निश्चय समझो कि वे लोग स्वार्थी हैं। उनके हृदय में अब भी मोह समाया हुआ है और भक्त होने पर भी वे संसार के मिथ्यापन को नहीं समझे हैं, तथा ईश्वर के अधीन नहीं हो सकते हैं। इसी से वे सच्चे भक्त नहीं हैं!

*****

११९ भक्ति का मार्ग खरदरा है सो बीच में ही अटक पड़ने के लिये नहीं है परन्तु जल्दी पहुँचने के लिये है

ज्ञानी महात्माओं का कथन है कि भक्ति का मार्ग खरदरा है सो इसीलिये कि वहां जल्दी पहुँचा जा सके। हमको जब धूप में चलना पड़ता है तो हम बहुत जल्दी २ चलते हैं, और रेतीले मैदान में होकर जाना होता है तब भी पैर बड़े जल्दी २ उठते हैं क्योंकि देर लगने से वहां पर पीने को पानी तक नहीं मिलता, बड़े जंगल में होकर जाना पड़ता है तब ही हम अधीर हो जाते हैं क्योंकि जो वहीं पर रात पड़ जाय तो बड़ी कठिनाई पड़ती है, इसी तरह जिस मार्ग में चोर या डाकुओं का डर होता है, उस मार्ग में भी हम बड़ी उतावली से चलते हैं क्योंकि मार्ग बुरा होने से हमको जल्दी करनी पड़ती है।

इसी तरह ईश्वर ने भक्ति का मार्ग खरदरा बनाया है जिसमें हम आगे बढ़ने में जल्दी करें और उतावली मचावें, जो उस मार्ग में फूल बिछे होते तो फूलों की सुगंधि में मग्न होकर हम वहाँ के वहाँ ही खड़े रह जाते, जो उस मार्ग में मखमली गद्दे बिछे होते तो हम वहीं पर निश्चिंत होकर सो जाते, और जो वह मार्ग हीरे पन्ने से बना होता तो हम आगे चलना भूल जाते और उनके कंकरों को बीनने उठाने में ही लग जाते, परंतु ईश्वर ने भक्ति का मार्ग दया करके खरदरा बनाया है सो इसीलिये कि मनुष्य बीच में न रह जाय, परंतु मार्ग की कठिनाई के मारे और भी अधिक जल्दी चले। जो ईश्वर के मार्ग की कठिनता को देखकर डर जाँय वे ईश्वर के कृपापात्र बनने योग्य नहीं हैं। इससे भक्ति करने में कोई अड़चन आ पड़े तो उससे हिम्मत हारकर हरि भक्ति छोड़ न देनी किंतु और अधिक उत्साह के साथ आगे बढ़ना चाहिये। यही सच्चे भक्त का लक्षण है और इसी से पार पहुँचा जा सकता है। इसलिये भाइयो! खरदरा मार्ग देखकर रुक मत जाओ परंतु जल्दी पहुँचने की उतावली करो! उतावली करो!! उतावली करो!!!

*****

१२० यह संसार एक यात्रा है, हमारा घर तो ईश्वर के दरबार में है, और शांति घर में है इससे घर पहुँचने की उतावली करो

किसी शिष्य ने गुरु से पूछा "महाराज! शांति कहाँ है?

गुरु के उत्तर दिया "बच्चा! शांति घर में है! पृथ्वी का अंत ही घर है। सेवक स्वामी के यहाँ से अपने घर आकर शांति पाता है, किसान घर में आकर हल छोड़ता है, व्यापारी लोग घर में आने से अपनी झंझटो और जंजालो को भूल जाते हैं, बच्चे पाठशाला से छूटकर घर जाने की उतावली करते हैं और पथिकजन घर पहुँचने से शांति पाते हैं, परन्तु बेटा! तू जानता है हमारा घर कौनसा है? यह दुनिया है सो हमारी यात्रा है। ईश्वर का दरबार है सो ही हमारा घर है, वहाँ पहुँचे बिना शांति नहीं मिल सकती। इससे जल्दी घर पहुँचने का यत्न करो। हम जो रोजगार धंधा करते और दुःख उठाते हैं सो सब घर का सुख पाने ही के लिये! इसी तरह अपने असली घर के सुख के लिये भी तो भगीरथ की तरह पक्का प्रयत्न करना चाहिये, क्योंकि विश्वास रखो कि घर बिना

कहीं भी सुख नहीं मिलता और हमारा घर भगवान् के दरबार में है। इससे घर जल्दी पहुँचने का यत्न करो। इस जन्म ही में छुटकारा पा जाने का यत्न करो! घर पहुँचने से पहले ही चौरासी के चक्कर में न पड़े जाने की पूरी पूरी सावधानी रखो।

*****

१२१ परमेश्वर के दरबार में तुम्हारी विद्वत्ता नहीं पूछी जायगी वहां तो तुम्हारी भक्ति ही पूछी जायगी

अनुभवी मनुष्य जानते हैं कि बड़े बड़े व्यापार करनेवाले व्यापारियों के घर में उनकी मिल्कियत और संपत्ति को देखते हुए नकद रोकड़ बहुत ही कम होती है, क्योंकि सारा पैसा तो उनका व्यापार में लगा रहता है, वैसे ही जो बहुत विद्वान् होते हैं, बहुत बातें करनेवाले होते है, बहुत व्याख्यान देनेवाले होते हैं, बड़े लेखक होते हैं और जो अपने मान मान के बहुत भूखे होते हैं वे सच्चे भक्त नहीं समझे जा सकते, वे तो अपनी विद्वत्ता और बड़ाई में ही खाली रह जाते हैं क्योंकि कह बताना दूसरी वस्तु है और कर दिखाना दूसरी वस्तु है। मुँह से कह देने में और वैसा ही करने में रात दिन का सा अंतर है इसलिये अधिक बोलनेवालों को बड़ा भक्त समझने की भूल नहीं करना चाहिये।

साधुलोग कहते हैं कि विद्वत्ता तो मानसिक प्रपंच है और भक्ति है सो हृदय की शांति है। इसीलिये विद्वत्ता और भक्ति में पृथ्वी आकाश का सा अंतर है। भक्ति में बड़ी बड़ी फिलोसोफी की आवश्यकता नहीं है उसमें तो हृदय की सरलता और ईश्वर पर प्रेम रखने की आवश्यकता है। इससे इनको प्राप्त करने का यत्न करो। महात्मा कहते हैं कि जो तुममें विद्वत्ता न होगी तो काम चल जायगा, परंतु भक्ति न होगी तो काम नहीं चलेगा क्योंकि परमेश्वर के दरबार में विद्वत्ता की पूछ नहीं है, भक्ति की पूछ है, इसलिये हे पूज्य विद्वानो! इस बात की पूरी सावधानी रखो कि बड़े बड़े व्यापारियों के पास बहुत सा धन होने पर भी घर में नकद रुपया नहीं रहता वैसे तुम भी खाली हृदय न रह जाओ! जो इस बात की सावधानी न रखोगे तो तुम्हारी विद्वत्ता तुमको अधिक दुःख देगी। याद रखो कि और मार से मानसिक मार अधिक बुरी होती है। इसलिये चेतो! चेतो!! चेतो!!!

२५ ध्रुवपद

नरतनु सुठि रतन पाय, मति गँवाय भाई ।।टेक।। लखचौरासी भ्रमत भ्रमत, विषयिन सँग रमत रमत ।। दीनबंधु दयाकीनी मोक्षद्वार आई ।।१।। ऐसो दाव वाहे न आव, हरिगुनगन गाव गाव । नातर पुनि अंतकाल, शिर धुनि पछिताई ।।२।। दारा सुत गेह देह, इन पर मत करि सनेह । ये सुप्रासम्र रामजीवन कहत दे दुहाई ।।३।।

*****

१२२ भाइयो! भविष्यत् संकटो को याद करके दुःख का बोझा मत बढ़ाओ!

भविष्यत् होनेवालें संकटों को याद कर करके दुःखित होना भक्तों का काम नहीं है! इस तरह पर वृथा दुःख का बोझा जान बूझकर अपने ही हाथ से अपने शिर पर रख लेना क्या आवश्यक है? हम दुःखों की गिनती एक ही साथ करते हैं इसी से हमको दुःख अधिक जान पड़ते हैं परन्तु हमको याद रखना चाहिये कि सारे दुःख एक ही बार में इकट्ठे होकर नहीं आ जाते, दैवयोग से और हमारे कर्मों के अनुसार एक एक दुःख आता है और वही भी अपना उपाय अपने ही साथ लेकर आता है, इससे उसको भगवान् की इच्छा समझकर भगवान् के अधीन हो उसको मिटाने का शांति के साथ उपाय करना चाहिये, परन्तु दुःख से कायर होकर हाय तोबा नहीं मचाना चाहिये, क्योंकि ऐसा करने से दुःख घटता तो है नहीं किन्तु और बढ़ जाता है। गये हुए दुःखों को याद करके तथा आनेवाले दुःखों की गिनती करके नाहक दुःखित नहीं होना किन्तु समर्थ ईश्वर की अनंत दया पर विश्वास करके प्रभुमय हो जाना चाहिये। दुःख को याद करते रहने से दुःख बढ़ता है और ईश्वर को याद करने से दुःख घटता है। इसलिये भाइयो! दुःख से बचने के लिये पवित्र प्रभु के नाम को स्मरण करो!

*****

१२३ लड़के के भी लड़कों की चिंता करके वृथा क्यों दुःखी होते हो? प्रभु की इच्छा के अधीन हो जाओ तो दुःख अपने आप ही कम हो जायँगे

एक मनुष्य अच्छी स्थिति में था तब भी बहुत फिकर किया करता था और अपनी स्त्री के पास बैठकर आनेवाले दुःखों की गिनती कर करके

दु:खित हुआ करता था। वह कहता था "अब हमारे बच्चे होंगे तब खर्च बढ़ेगा। बच्चों की सगाई करनी पड़ेगी और जो समधिन अच्छे स्वभाव की नहीं मिलेगी तो और भी तकलीफ पड़ेगी। हम लोगों में रीति रिवाज बहुत बढ़ गये हैं। एक वधू लाने के लिये कम से कम तीन हजार का तो जेवर ही चाहिये। जो चार पांच लड़के हो गये तो भाग्य ही खुल गया ना? धंधा रोजगार कम हो गया, रस कस घट गया, व्यापार में सार नहीं रहा और खर्च तो बढ़ता ही जाता है। अब करना क्या! मेरी माता भी आजकल बीमार रहती है। पंद्रह बीस दिन में उसकी ओर से भी खटका ही दीखता है। जो ऐसा हुआ तो खर्च करना ही पड़ेगा। छः महीने पीछे तेरी सोवड आवेगी उसकी भी तकलीफ ही समझ! सोवड करने के लिये किसे बुलायँगे? बहन तो आनेवाली नहीं। क्योंकि उसके और तेरे तो बारहवां चन्द्रमा है। अगले साल तेरे भाई का विवाह होगा तब फिर जाना पड़ेगा। मेरा चचा मरने पड़ा है तब गये बिना छुटकारा थोड़ा ही होगा? खर्च पर खर्च चला आता है तब गये क्या करना? सेठजी का लड़का दिन दिन जवान होता जाता है त्यों त्यों ही उसका मिजाज बिगड़ा जाता है। आगे जाने पर उससे अधिक दिन पटने की आशा नहीं है। छोटी बहन का पति प्राय: बीमार रहता है। तेरे बाप का मिजाज ही कुछ और है। उससे कुछ कौडी भी मिलने की आशा है? अपना पुराना घर भी दुरस्त कराना ही पड़ेगा। इसकी दुरस्ती कराते समय नयी खिड़की बनवाने के लिये पड़ोसी से लड़ाई होगी। कुछ कम आपत्ति है क्या? इतने दु:ख तो शायद किसी पर न होंगे? इसकी आफतें कैसे सही जायँ?

वह नित्यप्रति लोगों के आगे और अपनी स्त्री के आगे इसी तरह के रोने रोया करता था। चिंता से सदा उदास रहता था और हलके विचार किया करता था। इस पर से स्त्री ने मन में विचार किया कि, यह मूर्ख तो इसी प्रकार के निरर्थक विचारों में किसी दिन अपघात कर डालेगा, इससे इसको समझाना चाहिये। ऐसा विचारकर एक दिन उसने घर का कुछ काम नहीं किया, और जान बूझकर वह उदास होकर सो रही। शाम को जब पति घर में आया तो क्या देखता है कि, न तो चिराग बत्ती जली है, न झाड़ू लगा है, न बर्तन मले गये हैं, न रसोई तैयार और न पीने को पानी है। तब तो क्रोध में आकर उसने कहा "यह आज क्या हो रहा

है?"

स्त्री के उत्तर दिया "मेरे दुःख का पार ही नहीं है। आज एक ब्राह्मण आया था सो कह गया है कि तुम्हारी उमर ६० बरस की है। साठ में से अभी मुझे बीस ही बरस हुए हैं, चालीस बरस और बाकी हैं, इतने में तो मुझे न जाने क्या क्या करना पड़ेगा। मैंने अपने दुःखों की गिनती की सो तो सुन लो फिर ही मुझ पर नाराज होना। मुझे नित्य घड़ी भर (पांच सेर) पीसना पड़ता है। जिसकी महीने ३० घड़ी और साल भर की ३६० घड़ी हुई, इस हिसाब से चालीस बरस में चौदह हजार चार सौ घड़ी मुझे पीसना पड़ेगा। नित्य दस घड़े पानी भरना पड़ता है जिसके महीने भर में ३०० घड़े और साल भर के तीन हजार छः सौ घड़े होते हैं जिसके चालीस बरस में एक लाख चवालीस हजार घड़े पानी के हुए। नित्य दोनों बार में मिलाकर मुझे चालीस बर्तन मलने पड़ते हैं। इस हिसाब से एक महीने में बारह सौ, साल भर में चौदह हजार चार सौ और चालीस बरस में पांच लाख छिंतर हजार बरतन मलने पड़ेंगे। तब जरा तुम विचार तो करो कि मैं अकेली चौदह हजार चार सौ घड़ी अनाज कैसे पीस सकूंगी। एक लाख चवालीस हजार घड़े पानी मुझसे कैसे भरा जायगा और पांच लाख छिंतर हजार बरतन मुझसे कैसे मले जायंगे? इतना काम तो मेरे बाप का बाप और उसका बाप भी आ जाय तब भी पूरा नहीं पड़ सकता। फिर देखो! वह ब्राह्मण कह गया है कि तुम्हारे १४ लड़के होंगे। अभी तो एक ही बालक तीन महीने का मेरे पेट में है, इसी से मरने पड़ी हूं तब चौदह बालक! इतना दुःख तो मुझसे कभी सहन नहीं होगा, इससे तो मर जाऊं तो ही अच्छा!"

यह सुनकर पति बोला "अरे दीवानी! पागल हो गई क्या? यह सब काम तुझको एक दिन में थोड़ा ही करना है? क्या चौदह बालक तू एक साथ जनेगी? तुझको तो नित्य के योग्य ही काम करना है ना? इसमें इतना लंबा हिसाब लगाने की जरूरत क्या है?"

स्त्री ने उत्तर दिया "तब तुम लड़कों के भी लड़कों की चिन्ता क्यों करते हो? जैसे मेरा काम नित्य की आवश्यकता का नित्य होता जायगा वैसे ही तुम्हारे दुःख भी नित्य नित्य थोड़े थोड़े होते जायँगे। जिसकी तुमको खबर भी नहीं पड़ेगी। आगे के दुःखों को याद करके वृथा क्यों दुःख उठाते हो? ईश्वर की इच्छा के अधीन हो जाओ तो दुःख आपों आप घट

जायँगे।

बुद्धिमती स्त्री का उपदेश उस पर काम कर गया। उसी दिन से उसने आगे होनेवाले कामों की चिन्ता करना छोड़ दिया। इसी तरह हमको भी वृथा की चिन्ता छोड़ देना और जैसे ईश्वर रखे वैसे रहना चाहिये। ईश्वर की इच्छा के भलीभांति से सरलतापूर्वक अधीन होना ही सच्ची भक्ति है और यही व्यावहारिक तथा मानसिक दुःखों से बचने का अच्छा मार्ग है।

*****

१२४ दुःख से दुःखित मत हो! समुद्र के उतार और चढ़ाव की तरह दुःख और सुख भी जितनी तेजी से आते हैं उतनी ही तेजी से चले जाते हैं

एक मनुष्य ने समुद्र कभी नहीं देखा था। संयोगवश वह एक बार समुद्र के किनारे बंदर पर चला गया। वह बंदर पर गया तब चढ़ाव का समय था। समुद्र का पानी बड़े जोर से उछलता और आगे बढ़ता जाता था। यह देखकर उसको बडा भय हुआ। वह विचारने लगा कि ऐसा न हो कि पानी इसी तरह बढ़ता जाय तो सारा नगर ही बह जाय, उसने यह बात अपने एक मित्र से कही। मित्र समुद्र के चढ़ाव उतार की बात जानता था। उसने उत्तर दिया "तुम घबराओ मत! समुद्र के बढ़ने उतरने की भी सीमा है। समुद्र का चढ़ना नगर डूबाने के लिये नहीं है, किन्तु पानी साफ रखने और कितने ही दैवी नियमों की सहायता देने के लिये समुद्र में चढ़ाव और उतार हुआ करता है। इस समय यह पानी जैसा जोर से आगे बढ़ता है, थोड़ी देर में वैसा ही जोर से पीछे भी हट जायगा।"

इसी तरह हमारे दुःख भी जितने जोर से आते हैं उतने ही जोर से चले भी जाते हैं। सुख की भी यही दशा होती है। सुख और दुःख हमारी परीक्षा के लिये हैं, हमारे नाश के लिये नहीं। इससे दुःख से घबराना नहीं और सुख से पागल बन जाना नहीं चाहिये। परन्तु जैसे परमेश्वर रखे वैसे ही रहना चाहिये। भगवान् ने गीता में कहा है:–

मात्रस्पर्शास्तु कौंतेय शीतोष्णसुखदुःखदा ।
आगमापायिनोऽनित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ।।

गी० अ० २, श्लोक १०

अर्थ–हे अर्जुन! इंद्रियों को ठंड गरमी आदि लगने से सुख दुःख होता

है। ये तो आने और जाने के स्वभाववाले हैं। इसलिये हे अर्जुन! इस थोड़ी देर के सुख और दुःख को तू सहन कर!

ईश्वर इस तरह हमको सुख और दुःख सहन करने की स्पष्ट आज्ञा देता है। इसलिये ईश्वर की इच्छा के अधीन होकर हमको सुख और दुःख चुपचाप सहन करने चाहिये। जैसे समुद्र में चढ़ाव और उतार हुए बिना काम नहीं चलता, वैसे ही जब तक शरीर है तब तक दुःख भी हुए बिना नहीं रहेंगे और उनको भोगे बिना छुटकारा भी नहीं है। तब ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध रो रोकर भोगने से तो ईश्वर की इच्छा के अधीन होकर स्वाभाविक रीति से भोगना ही हजार गुना अच्छा है। व्यवहारी लोगों में और जनों में यही भेद है कि अज्ञानी लोग हर्ष शोक के अधीन होकर सुखदुःख भोगते हैं और ज्ञानी जब भगवत् की इच्छा समझकर समदृष्टि से सुखदुःख भोगते हैं। यही भक्तों का विशेष गुण है। इसलिये भाइयो! इस विशेष गुण को प्राप्त करने का यत्न करो।

*****

१२५ जूते में कंकर भर जाने से ही जब हम आगे नहीं चल सकते, तब हृदय में पाप भरे रहने से ईश्वरीय मार्ग में कैसे चला जा सकता है

शिष्य ने गुरु से पूछा "महाराज! पाप ईश्वरीय मार्ग में आगे नहीं बढ़ने देता, इसका क्या कारण है?"

गुरु ने उत्तर दिया "बेटा! हमारे जूते में एक छोटा सा कंकर आ जाता है उसको ही निकाले बिना हम अच्छी तरह से आगे नहीं बढ़ सकते, तब पाप भरे हृदय से हम कैसे आगे बढ़ सकते हैं?"

कंकर से भी पाप कितनी बुरी वस्तु है और जूते तथा पैर के तलुए मे हृदय कितनी कोमल वस्तु है, इसका भी तो विचार करो! यह तो सोचो कि हमारे यहां की सड़कों से ईश्वरीय मार्ग कितना तंग और कठिन हैं? एक छोटी सी कंकरीवाला जूता पहनकर हम दसबीस कदम भी नहीं चल सकते तब अपने हृदय में हजारों पाप भर के करोड़ों योजना का ईश्वरी मार्ग क्योंकर चल सकेंगे? भगवान् ने गीता में कहा है:–

"लभते ब्रह्मनिर्वाणमृषयः क्षीणकल्मषाः ।
छिन्नद्वैधा यतात्मानः सर्वभूतहिते रताः ।।"

अ० ५ श्लोक २५

अर्थ–जिसके पाप कट गये हैं, जिसके संदेह मिट गये हैं, जिनका मन अपने वश में हैं और जो प्राणिमात्र का भला चाहनेवाला है वही भक्त भक्ति पाता है।

भाइयो! भगवान् स्पष्ट कहते हैं कि जिसके पाप कट गये हों, वही मुक्ति पाता है। पाप को हृदय में भर रखने से कोई भी शांति नहीं पा सकता। यही सब शास्त्रों का और सब महात्माओं का सिद्धांत है। और हम लोगों के भी थोड़े बहुत अनुभव से यही सिद्ध होता है, इसलिये भाइयो! जैसे बने वैसे पाप को छोड़ने का यत्न करो! यही जीवन की सार्थकता है। इसी का नाम पुरुषार्थ है। यही मनुष्य के मनुष्यत्व की कसौटी है, इसी से देवता प्रसन्न होते हैं। इसी से अंतःकरण की शांति होती है, इसी से स्वर्ग मिल सकता है। इसी से ईश्वर की कृपा प्राप्त हो सकती है। इसी से कृतकृत्य होना बनता है। इसी से मोक्ष मिल सकती है। इसलिये जैसे बने वैसे सच्चे दिल से पाप को छोड़ दो! पाप को छोड़ दो!!

*****

१२६ मरे पीछे हमारे हीरे मोती और भोगविलास काम नहीं आवेंगे, केवल धर्म ही तब काम आवेगा

हमको विचार करना चाहिये कि जिसके लिये इतनी दौड़धूप करते हैं, जिसके लिये हम इतने मरते पचते हैं, जिसके लिये इतना झगड़ा झेलते हैं और जिसके लिये अनेक प्रकार के दुःख भोगते हैं, वह धन हमारे साथ चलेगा या नहीं? नहीं भाई नहीं! हमारे साथ कुछ भी नहीं जायगा! हमारे महंगे कपड़े और कीमती जेवर यहीं पड़े रह जायँगे। हमारे खजाने, हमारे नोट, हमारे चेक, हमारे सोने के कड़े, हमारी मोतियों की माला और हमारी पानीदार चमकती हुई हीरे की अँगूठियां यहीं पड़ी रह जायँगी। उनमें से राई भर हिस्सा भी हमारे साथ नहीं जाने का। हमारे बड़े बड़े भपकेदार मकान, बाग-बगीचे, हमारे कीमती अरबी घोड़े और हमारी झूलती हुई रबर टायर के पहियों की फिटन गाड़ियां भी हमारे साथ नहीं जायँगी। ये सब बाहरी चीजे हैं। इससे ये तो साथ नहीं ही चल सकतीं परंतु हमारा शरीर कि जो साथ आया था, वह भी साथ नहीं जायगा, वह भी यहां ही पड़ा रह जायगा तब औरों की तो गिनती ही क्या? वहां तो केवल भक्ति ही साथ जायगी। वहां केवल धर्म ही साथ जायगा। वहां तो केवल पवित्र परमेश्वर का नाम ही काम देगा।

मरे पीछे हमारी यहां की सैंकड़ों प्रकार की मौज शौक में से वहां पर एक भी काम नहीं आवेगी। केवल इन मौज शौक की ज्वाला हमको जलाने का ही काम करेंगी। भाइयो! जहां तहां से जितना बन सके उतना ही परमार्थ करो और लिया जाय उतना भगवान् का नाम लो! अंतकाल का यही धैर्य है, अंतःकरण की यही शांति है और हमारे आचरण सुधारने का यही उत्तम उपाय है। यही एक ऐसी वस्तु है जो मरे पीछे भी हमारे साथ चलेगी। इसलिये भाइयो! प्रेमपूर्वक भक्ति करो! भक्ति करो!! और प्रभु की शरण गहो!!!

२६ पद

कहा करत फिर जगमेला, आइया हरि भजिवेकी बेला ।।टेक।। आप तो दूल्हो बन्यो फिरत तू दम आन ना देवै धेला । वा दिन की सुधि नाहिं करत तू उडिज्या हंस अकेला ।।१।। नरतनु पाय आय जग प्यारे, सत की बाजी न खेला । असतमाहिं वह फेंकत पासे, सार न जहँ सुन हेला ।।२।। रामजीवन अबहूं सुधि करिले, बिगरचो है एक धेला । साप दिवालो निकल जाय तब, परिहैं बहोत झमेला ।।३।।

*****

१२७ हम समुद्र का मार्ग नहीं जानते तब भी कप्तान पर विश्वास कर जहाज में सवार होते हैं, वैसे ही ईश्वर पर विश्वास करके भक्तिरूपी जहाज में बैठ जाओ

हम समुद्र का मार्ग नहीं जानते, जहाज चलाने की विद्या नहीं जानते और कप्तान को भी नहीं जानते, तब भी कप्तान का विश्वास करके जहाज पर सवार होते हैं और उसमें निश्चिंत होकर सो भी जाते हैं। मार्ग में बुरी बुरी जगह आवें, बड़ी बड़ी लहरें आवे और कहीं भी किनारा दिखाई न दे तब भी हम घबराते नहीं है, कारण हम मार्ग नहीं जानते तो क्या हुआ परंतु कप्तान तो जानता है और कप्तान पर ही हमको भरोसा है कि वह नियत समय पर हमारे इच्छित स्थान पर पहुँचा देगा।

इसी तरह हम सरल हृदय से ईश्वर को कप्तान बनावें और ईश्वर पर ही भरोसा रखे तो संसार सागर को तैर जाना कुछ कठिन नहीं है परंतु यह बात तब ही हो सकती है जब हम ईश्वर को तो अपना कप्तान बनावें और भक्तिरूपी नाव में हम सवार हो जाय। भक्तिरूप नाव में बैठे पीछे मुकाम पर पहुँचने में कुछ भी देर नहीं लगती परंतु मुख्य बात यह है कि

जैसे बने वैसे झटपट उस नाव में बैठ जाना चाहिये, यह निश्चय समझो कि भक्तिरूपी नाव में बैठे बिना संसार सागर पैरने में नहीं आता इसलिये जो जल्दी मुकाम पर पहुँचना हो, जल्दी घर पहुँचना हो तो भक्ति के जहाज पर बैठ जाओ! उसमें देर न लगाओ भाइयो! उसमें देर न लगाओ!

पद

हरि से कोई नहीं बड़ा दीवाने, क्या गफलत में पड़ा ।। टेक ।। प्रह्लाद बेटा हरिसों लिपटा, तब ही खंब कडकडा ।।दीवाने०।।१।। गोपीचंद रु भरतरी राजा माल मुलक छोड़ा ।।दीवाने०।।२।। पुंडरीकने सेवा कीनी, विट्ठल वहां पर खड़ा ।। दीवाने० ।।३।। कहत कबीर सुनो भाइ साधो! हरिचरण चित चड़ा ।।दीवा०।।४।।

*****

१२८ जैसे तिल में तेल है परंतु दबाने से निकलता है, वैसे ही हमारे हृदय में भक्ति है सो भगवत्सेवा करने से बढ़ती है

तिलों में तेल अवश्य है परंतु निकलता तब ही है जब तिलों को कोल्हू में डालकर दबाया जाता है, गन्ने में रस है परंतु गन्ना पेच में रखकर दबाया जाय तब ही रस निकलता है और तब ही उसका गुड़ तथा शक्कर बन सकती है। जो ऐसा न किया जाय तो समय निकल जाने पर गन्ने का रस सूख जाय। दियासलाई में आग है परंतु घिसने से पैदा होती है। औषधों में रोग मिटाने की शक्ति है परंतु उनको पहचानकर विधिपूर्वक काम में लाने की आवश्यकता है। तेल में प्रकाश करने की शक्ति है परंतु प्रकाश तब ही हो सकता है जब उसमें बत्ती रखकर जलाई जाय। सूरज में ठंड मिटाने की शक्ति है परंतु उसकी धूप में जाकर बैठने से ठंड मिट सकती है, वैसे ही हमारे हृदय में भी दैवी रीति से भक्ति और परमेश्वर दोनों हैं परंतु यत्न करके सत्संग ज्ञान, ध्यान, नामस्मरण, परमार्थ और प्रभुसेवा की जाय तब ही वे प्रकट हो सकते हैं।

हमारे हृदय में तब तक वे बीजरूप हैं। उस बीज का वृक्ष उगाना चाहिये तब ही फल मिल सकता है। बीज को बीजरूप ही रख छोड़ने से फल नहीं मिलता किंतु उसका वृक्ष हो तब ही फल मिल सकता है। बनै जैसे हमको भक्ति बढ़ानी चाहिये। भक्ति को बढ़ाने का नाम ही पुरुषार्थ है, भाइयो ऐसा काम करो जिसमें हमारे में और दुनियां में भक्ति बढ़े। इसी का नाम कर्तव्य है। इसी का नाम ईश्वर की कृपा है और इसी में मोक्ष है।

इसलिये सदा भक्ति बढ़ाने का उपाय करो।

*****

१२९ वकील को अपना मुकदमा सोंप देते हो उससे तो ईश्वर अनंतगुना समर्थ है, तब ईश्वर पर ही क्यों नहीं छोड़ देते?

जब हम बीमार होते हैं तो दवा लेते हैं। उस दवा को हम नहीं जानते, स्वाद भी उसका अच्छा नही होता और कई बार हम दवा देनेवाले उस वैद्य को भी नहीं पहचानते। तब भी हम नीरोग होने की आशा से विश्वास रखकर दवा ले लेते हैं, और जो कभी डाक्टर हमारे नश्तर लगावे, प्लास्टर लगावे अथवा हाथ पैर भी काट डाले तो हम उसको भी अपने भले के लिये स्वीकार कर लेते हैं। जो पढ़ते पढ़ते भी कभी पूरा नहीं होता, ऐसे वैद्यकशास्त्र के आधार पर अजाने डाक्टर को अपनी तंदुरुस्ती सोंप देने में हम नहीं हिचकिचाते और अजानी कड़वी कसेली दवाइयां पी जाने में हमको कुछ अड़चन नहीं जान पड़ती तथा मकड़ी के जाले की तरह क्षण भर टूट जानेवाले कानून की जाल में फँसे हुए और हमारा ही पाकेट खाली करनेवाले किसी वकील को अपना मुकदमा सोंप देते अथवा वैसे ही किसी चालबाज को अपना मुख्तार बनाते हमको कुछ भी विचार नहीं पड़ता, कुछ भी चिंता नहीं होती, परंतु हमारी मूर्खता तो देखो कि, प्रभु को अपना केस सोंप देने में अर्थात् ईश्वर की इच्छा के अधीन हो जाने में हमारी हिम्मत नहीं चलती।

क्या यह शोक की बात नहीं है कि हम वकील या एक डाक्टर जितना भी ईश्वर का भरोसा नहीं करते? प्रत्येक ईश्वरीय जीव को इतना तो मानना ही चाहिये कि वैद्यक तथा कानून और अन्यान्य किसी भी विषय की अपेक्षा ईश्वर के दिये हुए धर्मशास्त्र अधिक बलवान् हैं और हमारे अच्छे से अच्छे वैद्य और प्रमाणिक से प्रामाणिक वकील की अपेक्षा ईश्वर अनंतगुना अधिक समर्थ है, उसके भरोसे पर अपना केस छोड़ देने में कोई भी हानि नहीं है। इसलिये जैसी बने वैसे ईश्वर की इच्छा के अधीन हो प्रभुमय बन जाना चाहिये और प्रभु में से ही जीवन प्राप्त करना चाहिये। शास्त्रों की यही आज्ञा है, महात्माओं का यही उपदेश है, ईश्वर की यही इच्छा है और सच्चे भक्तों की भी यह चाल है कि प्रभुपारायण रहना, **इसलिये भाइयो! ईश्वर से ईश्वर की इच्छा के अधीन होने का बल प्राप्त करो।**

१३० भक्तिरूपी बाजार में से ईश्वररूपी रत्न खरीदो* !

साधुओं का कथन है कि भक्ति भी एक प्रकार का बाजार है। जैसे बाजार में साग तरकारी, कपड़े, जवाहिरात आदि वस्तुएँ मिलती हैं वैसे ही भक्ति से भी अपनी अपनी भावना के अनुसार सब चीजें मिल सकती हैं। व्यवहारिक बाजार की तरह भक्ति अंतःकरण का बाजार है। जिसमें हमारी भावना के अनुसार फल मिलता है, मनुष्य को बाजार बिना अर्थात् लेन देन किये बिना काम नहीं चलता वैसे ही भक्ति के बाजार में भी सब चीजों की लेन देन होती है। उनको और मनुष्य अपने अपने शौक के अनुसार अर्थात् अपने अपने अधिकार के अनुसार खरीदता है, जैसे किसी को साग तरकारी अधिक पसंद होती है। किसी को फूल अच्छे लगते हैं, किसी को कपड़े लत्ते पसंद होते हैं और किसी को गहने अच्छ लगते हैं, वैसे ही भक्ति में भी किसी को व्यावहारिक सुख अच्छे लगते हैं, किसी को ऋद्धि सिद्धि के चमत्कार प्राप्त करना अच्छा लगता है, किसी को स्वर्ग पाने की इच्छा होती है और किसी को ईश्वरमय हो जाना प्रिय लगता है।

बाजार में जैसे हीरे खरीदने में अधिक पैसे की आवश्यकता होती है वैसे ही ईश्वरतत्त्व की खरीद करने में भी अधिक भक्ति खर्च करनी पड़ती है, भक्ति में जो भेद हैं और भक्तों में जो दरजे हैं, वे ये ही हैं कि कोई तो साग तरकारी खरीदकर प्रसन्न हो जाता है, कोई फूल माँगता है और कोई मोती खरीदता है। परंतु सब रत्नों में एक प्रभु ही सबसे सच्चा और उत्तम रत्न है। इसलिये भक्ति के बाजार में यही रत्न खरीदने की इच्छा रखो। साग तरकारी जैसे दूसरे व्यावहारिक सुखों में आसक्त न हो और उन्हीं में तृप्ति न मान बैठो! किंतु भक्ति से भगवान् को पाने की प्रबल इच्छा रखो!

२७ पद

गोविंद गाव मन गोविंद गाव, हरिनाम जपिवेको योही दाव ।।टेक।।
नरतन बिन योह छिन नहीं पावै, भौसागर तरिबे को यही है नाव ।।१।।
जब तप तीरथ नेम धरम करि, पर प्रभु को मत बिसरै भाव ।।२।।
हरिगुन गान करहु निशिवासर, जासों मिटै काम क्रोध को घाव ।।३।।
रामजीवन इमि जीवन सफल करि, अंत समय वैकुंठ को जाव ।।४।।

* मेस्मेरिज्म के प्रयोग में भक्ति के विषय में प्रश्न करने पर विधेय ने यह उत्तर दिया था।

१३१ ईश्वर की आज्ञा के विरुद्ध चलनेवाले पापियों की जातें

जैसे पाप बहुत जाते के हैं वैसे ही उन पापों को करनेवाले पापियों की जातें भी कई हैं, जैसे कोई अपनी मूर्खता से पाप करता है, कोई पाप करके फूलता है, कोई बहुत दुःखित हो जाने पर भी पाप किया ही करता है, कोई जान बूझकर पाप करता है और कोई बिना नथे नारे (बैल) की तरह मस्त होकर बेपरवाही के साथ पाप ही पाप में जीवन व्यतीत करता है।

इन सब पापियों के ज्ञानियों ने पांच भाग किये हैं:–

१ मूर्खपापी, २ अभिमानीपानी, ३ हठीलापापी, ४ ज्ञानी पापी और ५ ईश्वर का छोड़ा हुआ पापी। इन पापियों को पहचानने के लिये पाप का स्वरूप पहचनाकर उनसे बचने के लिये हमको इन पांचों प्रकार के पापियों का कुछ हाल जानना चाहिये।

*****

१३२ मूर्ख पापी १

मूर्ख पापी वह है जो पराया माल रखने से राजी होता है, परंतु यह नहीं समझता कि यह पच कैसे सकेगा! याद रखो कि कसेली वस्तु खानेवाले को अवश्य वमन करना ही पड़ता है, वैसे ही जो मूर्ख दूसरों के माल खाने में प्रसन्न होता है उसको किसी न किसी दिन वमन ही करना पड़ेगा। उसको खाया हुआ सूदसहित पीछा ही देना पड़ेगा। हराम का खाना सो कसेला खाने के समान है। खाने में खीर बहुत अच्छी लगती है परन्तु जो उसमें मक्खी गिर गयी होगी तो केवल वह खायी हुई खीर ही पीछी नहीं निकलेगी किन्तु साथ में महीने दो महीने पहले तक का खाया हुआ भी निकल जायगा, वैसे ही पराया माल खाना इस समय तो अच्छा लगता है परन्तु उसमें पापरूप मक्खी है सो उसको हजम नहीं होने देगी जो इस बात को नहीं समझते और पाप करते हैं वे मूर्ख पापी हैं।

*****

१३३ अभिमानी पापी २

अभिमानी पापी वह है जो पाप करके फूलता है। उसको कसाई के मोटे बकरे की तरह समझना। कसाई के बकरे की तरह ऐसे पापी का फूलना भी उस अभिमानी के नाश के ही लिये है। ऐसा नहीं समझना चाहिये कि, ऐसे अभिमानी पापी थोड़े होते हैं। हम भी तो वैसे ही हैं। हम

भी तो किसी की निंदा करके, किसी की हानि करके किसी को पीट करके किसी के पेट पर पैर रख के, किसी का अपमान करके और किसी से कठोर वचन कह करके मन में फूलते हैं और दूसरों के आगे अपने ऐसे पराक्रमों की बड़ाई मारते हैं, परन्तु यह नहीं समझते कि इस प्रकार के ईश्वर को अच्छे न लगने वाले काम करना पराक्रम नहीं किन्तु पाप कहलाता है। ऐसे पापियों को शास्त्र में अभिमानी पापी कहा है। प्रथम तो अभिमान करना ही पाप है और फिर पाप का अभिमान करना पाप का भी पाप है अर्थात् सबसे बड़ा पाप है जो लाचारी से अथवा भूले चूके कोई पाप हो जाय तो हमको उसके लिये पश्चात्ताप करना चाहिये, क्योंकि पश्चात्ताप की आग से पाप की कठोरता पिघल सकती है, परन्तु पाप का अभिमान करके उसे और दुगना कभी नहीं करना चाहिये, पाप के कामों से फूलकर हमको कसाई का बकरा कभी नहीं बनना चाहिये। इतना बन सके तब भी पाप आधे रह जाते हैं। इसलिये भाइयो! पाप का अभिमान मत करो!

*****

१३४ हठीला पापी ३

अपने पाप से आप ही दुःख पावे। अपनी आँखों से देखे और समझे तब भी पाप को न छोड़े वह हठीला पापी कहलाता है जैसे शहद को खूब गरम कर लिया जाय तब भी रीछ उसमें मुँह डाले विना नहीं रहता, उससे मुँह जल जाता है, कष्ट उठाना पड़ता है और हैरान होना पड़ता है तब भी वह उसमें मुँह डालता ही है। रीछ जैसे एक बार जल जाने पर भी नहीं मानता और उसमें मुँह डालता ही है वैसे ही हठीले पापी भी अपने पाप से कष्ट पाने पर भी पापी हठ को नहीं छोड़ते। जुआरी लोग जानते हैं कि जुआ खेलने से खराबी होती है तब भी जुआ खेलना नहीं छोड़ते। व्यभिचारी जानते हैं, देखते हैं, समझते हैं और भुगतते हैं कि व्यभिचार से हमारे देह की, प्रतिष्ठा की और पैसे की खराबी होती है और विश्वंभर से हम विमुख होते हैं तब भी वे व्यभिचार को छोड़ते नहीं हैं शराबी जानते हैं कि, शराब पीने से शरीर, मन और पैसे की खराबी होती है और इज्जत आबरू तथा ईश्वरी ज्ञान का सत्यानाश होता है तब भी शराब पीना नहीं छोड़ते। जात के पंच पटैल लोग जानते हैं कि, हम बहुत सी बातें अनुचित करते हैं, अपने अधिकार और स्वत्व का दुरुपयोग करते हैं

और बहुत से गरीब जात भाइयों तथा विधवाओं के हम पर विश्वास पड़ते हैं। तब भी वे अपनी पटैंलाई नहीं छोड़ते। मूँजी लोग समझते और देखते हैं कि, आज तक इस संसार में से कोई भी अपने साथ धूल की एक चिमटी तक नहीं ले गया और न ले जायेगा, तब भी वे अपने लोभ को मूँजीपन को नहीं छोड़ते। कारण यह है कि, वे हठीले पापी हैं। इससे इस बात की सँभाल रखो कि, हम भी अपनी हलकी सी बातों के लिये पाप में न पड़ जाँय, ऐसे हठीले पापी न बन जाय!

*****

१३५ ज्ञानी पापी ४

हाथ में चिराग लेकर जो कुएँ में गिरता है वह ज्ञानी पापी कहलाता है। जो सुने सब कुछ, समझे सब कुछ परन्तु करे कुछ भी नहीं, वह ज्ञानी पापी कहलाता है। वैसे आदमी बातें बड़ी २ मारते हैं, उपदेश बड़े २ करते हैं और ऊपर से ढ़ोंग भी बड़े २ दिखाते हैं, परन्तु अंतःकरण में तो 'ढ़ोल के अंदर पोल' ही होती है। और लोग तो अँधेरा होने से कुएँ में गिरते हैं परन्तु ज्ञानी पापी हाथ में मशाल लेकर कुएँ में गिरते हैं। और तो अज्ञान से, कुसंग से, अथवा अकस्मात् भूलचूक कर मरते हैं परन्तु ज्ञानी पापी तो मानो आत्मघाती करते हैं। दूसरे पापियों में और ज्ञानी पापियों में भेद इतना है कि ज्ञानी पापी तो अंधे के समान हैं और ज्ञान उनके हाथ की मशाल है परन्तु अंधे को जैसे मशाल काम नहीं देती वैसे ही उन ज्ञानी पापियों को उनका ज्ञान काम नहीं देता, क्योंकि जो ज्ञान पाप से बचाने वाला है उसी ज्ञान से वे अधिक पाप करते हैं। यह एक बड़ा प्रश्न है कि, पाप को जानकर भी लोग पाप क्यों करते हैं? परन्तु महात्माओं का कथन है कि, ज्ञान दुधारे खांड़े के सामान है कि जिससे हमारे बंधन कटते हैं और हमारा शिर भी कट सकता है। ज्ञानरूपी तलवांर को काम में लाना उस आदमी के हाथ में है जिसके पास वह है। भक्त लोग ज्ञानरूपी तलवार से अपने कर्मों के बंधन को काट डालते हैं और ज्ञानी पापी उसी ज्ञानरूपी तलवार से अपने हृदय में घाव कर देते हैं। ज्ञानी भक्त और ज्ञानी पापी में यही अंतर है कि, ज्ञानी भक्त तो तैर जाते हैं और ज्ञानी पापी डूब जाते हैं। इसलिये भाइयो! इस बात की पूरी २ संभाल रखना कि, मूर्ख रह जाओ तो कुछ चिन्ता नहीं परन्तु ज्ञानी पापी मत होना!

१३६ ईश्वर के छोड़े हुए पापी ५

जो सब प्रकार के पाप करते हैं, जो किसी भी प्रकार का पाप करते हिचकिचाते नहीं, जिनको पाप का कुछ भी डर नहीं लगता, जो पाप करने में पीछे फिरकर नहीं देखते और जिनको अच्छा बुरा समझने की शक्ति नष्ट हो जाती है उनको साधु लोग ईश्वर के छोड़े हुए पापी कहते हैं। ईश्वर की दया में से निकले हुए जीव को ईश्वर का छोड़ा हुआ पापी कहते हैं। प्रभु की सामान्य दया में से तो कोई भी नहीं निकल सकता परन्तु जीवों पर और उनमें भी विशेषकर के मनुष्य जाति पर परमेश्वर की विशेष दया है और भक्तजनों पर तो सबसे अधिक दया है। उस विशेष दया में से ईश्वर के छोड़े हुए पापी निकल जाते हैं, कारण यह कि मूर्खपापी अभिमानी पापी, हठीले पापी, और ज्ञानी पापी तो कोई २ से ही पाप करते हैं किंतु ईश्वर के छोड़े हुए पापी तो सब प्रकार के अघोर पाप बेधड़क होकर करते हैं और उनके लिये उनको कभी पश्चात्ताप नहीं होता। ऐसे पापी किसी भी तरह सुधर नहीं सकते। ऐसे पापी व्यवहार में सुखी देखे जाते हैं जिससे लोगों को बड़ा आश्चर्य होता है और बारंबार ऐसा प्रश्न किया करते हैं कि 'धर्मी को धक्के और पापी को पैसे' क्यों मिलते हैं? इसके उत्तर में साधु लोग ऐसा कहते हैं कि ईश्वर की कृपा में से छूटे हुए पापी मनुष्य को उसके पहले के किये हुए अच्छे कर्मों का कल भी ईश्वर उसी समय दे देता है जिसमें उसके लिये नरक का मार्ग बिलकुल खुल जाता है। इस जन्म के सुकर्म, पूर्वजन्म के सुकर्म और पूर्वजों के सुकर्म नरक के मार्ग अड़चन करने वाले होते हैं। इसलिये ऐसे नरक योग्य पापी जीवों को भगवान् उनके कर्मों का नकद फल चुका देता है जिसमें चटपट उनको नरक में भेजा जा सके। इस तरह के ईश्वर की दया में से निकले हुए पापी जीवों को ईश्वर के छोड़े हुए पापी कहते हैं ऐसे पापियों को बड़ी से बड़ी सजा होने वाली है इसी से ईश्वर उनको इस समय छोटी मोटी सजा नहीं करता इस कारण से वे अपने पापों में मस्त रहते और संसार, धर्म तथा ईश्वर की परवाह नहीं करते। ऐसे ईश्वर के छोड़े हुए पापी संसार में जीते हुए यमदूत के समान हैं, परंतु हम पर इतनी ईश्वर की दया है कि ऐसे पापी होते थोड़े ही हैं। ईश्वर से हमारी यही प्रार्थना है कि ऐसा पापी कोई न हो!

*****

१३७ हम ईश्वर से कितने विमुख हैं? चाह पीने की नित्य इच्छा होती है वैसे संत्सग करने की भी इच्छा होती है?

हम ईश्वर से कितने विमुख हैं सो तुम जानते हो? काच में मुँह देखकर हम जितने फूलते हैं उतने कभी शास्त्रों को देखकर भी फूलते हैं? नये बूट पहनकर हम जितने प्रसन्न होते हैं उतने अतिथि का सत्कार करने में भी प्रसन्न होते हैं? बीड़ी (तंबाकू) पीकर उसके धुओं से खेल करने में हमको जितना आनंद आता है उतना आनंद देवदर्शन करने में भी कभी आता है? चाय पीने की जैसी हमको नित्य इच्छा होती है वैसी सत्संग करने की भी कभी इच्छा होती है? नाटक देखने का जैसे बारबार मन होता है वैसे प्रभुनिमित्त व्रत उपवास करने का भी कभी मन होता है? राज्य की पदवियां प्राप्त करने की जैसे इच्छा होती है वैसे भगवान् की पदवियां प्राप्त करने अर्थात् भक्त बनने की भी कभी इच्छा होती है? लड़के लड़कियों के विवाह करने की जैसे उतावली पड़ती है वैसे परमार्थ के काम कर लेने की कभी उतावली पड़ती है? समाचार पत्र पढ़ने का जैसे शोक होता है वैसे शास्त्रों का रहस्य समझने का भी कभी शौक होता है? हमारे बहुत से शौकीनी जीव नित्य उठकर प्रातःकाल ही जैसे नाई के आगे शिर झुकाते हैं वैसे ईश्वर के आगे भी कभी शिर नवाते हैं? कहो कि नहीं! ऐसे 'ठनठन पाल मदन गोपाल' जैसे सूखे साखे रहने से ईश्वर की कृपा क्योंकर प्राप्त हो सकेगी? इसका भी तो विचार करो!

*****

१३८ सच्चे बहादुर कौन भक्त या योधा?

सैनिक कर्मचारियों में एक बार यह प्रश्न उठा कि, सच्चा बहादुर कौन? तब किसी ने उत्तर दिया कि, सिंह के साथ लड़े सो बहादुर, किसी ने कहा कि तोप के गोले के सामने जाय सो बहादुर, किसी ने कहा कि, जो सबसे अधिक शत्रुओं को मारे सो बहादुर, किसी ने कहा कि, जो छाती में घाव सहे और पीठ न दिखावे सो बहादुर, किसी ने कहा कि, जिसके घाव को शत्रु सराहे सो बहादुर, और किसी ने कहा कि शिर कट जाने पर भी जिसका धड़ लड़ता रहे सो बहादुर है। इतना सुनकर वहां बैठा हुआ एक बाबा साधु बोल उठा कि "आप लोगों का यह सब कहना ठीक है परंतु सच्चा बहादुर तो इनसे जुदा ही होता है।"

साधु की इस बात पर एक सैनिक बिगड़ उठा और बोला "तुम बैरागी लोग बहादुरी में क्या समझो? शिर कट जाने पर भी धड़ लड़ता रहे इससे बढ़कर बहादुरी संसार में और क्या हो सकती है?"

साधु ने कहा "यह बहादुरी सच्ची है परंतु है वह थोड़ी ही देरकी! सच्ची बहादुरी तो भक्तों की है, जिनको जीवन भर संसार के लालचों और पापों से लड़ाई करते रहना पड़ता है। तुम्हारी लड़ाई तो पांच दस बरस में कभी होती है और वह भी थोड़े ही समय तक ठहरती है; परंतु भक्तों की लड़ाई जीवन भर और अनेक जन्मों तक रहती है सबसे सच्ची बहादुरी तो भक्तों की है। इसके लिये वैष्णव गाते हैं।"

२८ पद

संत जगतमधि शूरा जांका बाजत ताल तंबूरा रे ।। ।।टेक।। शरे हतेहू नाहिं शूरमा, जो अंगनादृग धूरा रे । नैनबान लागतही लोटे, तनकी शुद्धि विसूरा रे ।।१।। संत सवार होय सत ऊपर, सतगुरु शब्द सो पूरा रे । काम क्रोध मद लोभ मोह हनि, कीन्हो चूरा चूरा रे ।।२।। पांच पछारि पांय मधि डारे, आन भागगये दूरा रे । विजय पाय वैकुंठ सिधारे पायों चतुर्भुज नूरा रे ।।३।। रामजीवनपै कृपा करो सोऊ, मो सम आना न कूरा रे । अलख निरंजन लखो ताहिसों, ब्रह्मानंद भरपूरा रे ।।४।।

यह सुनकर, सब सैनिक बोल उठे "महाराज ने तो खूब कहा! हमारी बहादुरी तो किसी गिनती में नहीं! सच्ची बहादुरी तो ईश्वर के कृपापात्र भक्त की ही है! इसलिये भाइयो! भक्त बनने की कोशिश करो!

*****

१३९ आफ्रिका के जंगली दो चार पैसे के खिलौने के लिये सोने की रेत दे देते हैं, वैसे ही भक्ति का बदला माँगना हीरा देकर राख की पुड़िया लेने समान है

अपनी जरा जरा सी निर्जीव इच्छाओं को पूरी करने के लिये भक्ति करना बहुत ही नीचे दरजे की भक्ति है, सच्चे भक्त कभी ऐसी भक्ति नहीं करते। ईश्वर से यह कहना कि 'तुम हमको अमुक वस्तु दो तो हम तुम्हारे लिये अमुक काम करें एक प्रकार का ठेका करना है। सच्चे भक्तों को इस प्रकार का ठेका करने का विचार कभी स्वप्न में भी नहीं आ सकता। जो भक्ति के महत्त्व को नहीं समझते वे ही इस प्रकार की हलकी भक्ति करते

हैं। भक्ति तो पारसमणि है पारसमणि से जैसे लोहे का सोना बन जाता है वैसे ही भक्ति से मनुष्य नरसे नारायण हो जाता है। नारायण बनना छोड़कर क्षणिक सुख माँग लेना तो स्पष्ट मूर्खता है। आफ्रिका के जंगली लोग कपड़े के छोटे २ रूमाल, काँच के खिलौने और पागल बनाने वाली शराब खरीदने के लिये सोने की रेत दे डालते हैं उनसे भी बढ़कर मूर्ख वे हैं जो धन के लिये, स्त्री पुत्र के लिये, अथवा शत्रु को दबाने के लिये अपनी भक्ति बेच डालते हैं। इसलिये भाइयो! निरर्थक जंजालरूप राख की पुड़िया लेने के लिये भक्तिरूप हीरा मत खो डालो! इसका पूरा विचार रखो!

२९ पद

कामनाओं भक्तिरतन मत खोय, कामनासों भक्तिरतन मत खोय ।। टेक ।। प्रभुकी भक्ति भाग्यसों पाई, या तुलना आन न कोय ।।१।। धन दौलत सुत माल खजाने ये सुपनासम जोय ।।२।। यासों काज सरत कुछ नाहीं, क्यों बबूल रह्यो बोय ।।३।। रामजीवन जीवनफल चहै तो, प्रभुके शरनै होय ।।४।।

*****

१४० भगवत्सेवा किये विना रूखे ज्ञान से संसारसागर पार करने की इच्छा रखना पैदल चलकर महासागर को पार करने की इच्छा रखने समान है

साधुजन कहते हैं कि, भक्ति से हृदय भीगे विना केवल रूखे ज्ञान से कल्याण नहीं होने का, क्योंकि संसारसागर को पार करने के लिये भक्ति ही एक नाव है और सूखा ज्ञान तो पैदल चलने के बराबर है। परन्तु पैदल चलने से समुद्र पार नहीं किया जा सकता। महात्मा तुलसीदासजी ने भी कहा है:—

चौपाई

जे अस भक्ति जानि परिहरहीं । केवल ज्ञान हेतु श्रम करहीं ।। ते शठ महासिंधु बिन तरणी । पैर पार चाहत बिन करणी ।।

जो मनुष्य भक्ति को छोड़कर केवल ज्ञान की बातें करके या सुनके ही रह जाते हैं वे मूर्ख मनुष्य जहाज को छोड़कर केवल पैदल चलके ही महासागर को पार करना चाहते हैं, कारण करणी (कर्म) किये बिना संसारसागर को पार करने की इच्छा रखना पदैल चलकर महासागर को

पार करने की इच्छा करने के समान है और वह कभी बन सकने के योग्य नहीं है, क्योंकि कहाँ तो महासागर का बड़ापन और कहाँ मनुष्य की निर्बलता? अच्छे काम किये विना और सच्चे अंतःकरण से भगवत्सेवा किये बिना संसारसागर कभी पार हो ही नहीं सकता! इसलिये भाइयो! केवल बातों ही में न लगे रहकर भले काम करने में लगो! यही भक्ति है और यही पार करने का मार्ग है!

*****

१४१ ज्ञान और भक्ति का भेद ज्ञान का अर्थ है जानना और भक्ति का है भोगना

ज्ञान का अर्थ है जानना और भक्ति का अर्थ है भोगना। अर्थात् ज्ञान से केवल जाना जा सकता है परंतु भक्ति से वह जाना हुआ विषय भोगने में आ सकता है। जानने में और अनुभव में पृथ्वी आकाश का सा अंतर है। विलायत के आदमी जानते हैं कि, हिंदुस्थान में आम अच्छे होते हैं इसका नाम जानना है, परंतु उन आमोंको प्रत्यक्ष खाना सो ही भोगना है। जो केवल इतना ही जानते हों कि आम नामक एक फल होता है वे आम के स्वाद को तो नहीं जान सकते वैसे ही जो केवल धर्म की बात किया करें परंतु धर्म पाले नहीं वे ईश्वरीय आनंद तो नहीं भोग सकते! उस आनंद को तो केवल वे ही भक्त पा सकते हैं जो सदा प्रभु को अपने हृदय में रखते हैं, और प्रभु को हृदय में रखना केवल भक्ति से बन सकता है। इससे भक्ति ही उत्तम है पहले के लोग ज्ञान शब्द से अनुभव का अर्थ निकालते थे, अर्थात् उन्होंने ज्ञान को बहुत बड़ा महत्त्व दिया था परंतु अब हम ज्ञान शब्द का अर्थ केवल जानना ही करते हैं इसलिये ऐसे रूखे ज्ञान से भक्ति उत्तम है।

हम जान लें कि, अमुक बड़ी संपत्ति के हम मालिक हैं परंतु जब तक उस संपत्ति का अधिकार हमारे हाथ में न आवे तब तक हम उसको भोग नहीं कर सकते। हम संपत्ति के मालिक हैं इस जानने का नाम ज्ञान है, और उस संपत्ति पर कब्जा जमाने का स्वत्व प्राप्त करना और उसको भोगना भक्ति है। इस समय के सूखे ज्ञान से केवल जाना जा सकता है परंतु भोग नहीं किया जा सकता। वह जाना हुआ विषय तो केवल भक्ति से ही भोगने में आ सकता है। इसलिये भाइयो! जो प्राप्त करने का है उसे ज्ञान से जानो और भक्ति से भोगो!

३० पद

भक्ति विन दीखत जैसो प्रेत, दीखत जैसो प्रेत ।। टेक ।। रवि विन दिवस चंद्रविन रजनी, दीपक विना निकेत । पति बिन पत्नी नैन विन तनु, जिमि जलविन सरवर चेत ।।१।। विप्र वेदविन मात पुत्रविन, जिमि नहिं शोभा देत । तिमि हरिभक्तिविना तीरथ व्रत, जस न जपन समेत ।।२।। रामजीवन जीवनकी मूरी प्रभु पदप्रीति सचेत । जन्म जन्म मत जाय विसर मोहिं प्रभु की बलैया लेत ।।३।।

*****

१४२ ज्ञान को छोटा नहीं समझना ज्ञान के प्रकाश से ही प्रभु दीख सकता है

ज्ञान का अर्थ जानना है और भक्ति का अर्थ भोगना है यह बात ठीक है परंतु इस पर से किसी को भूलकर यह नहीं समझ लेना चाहिये कि, ज्ञान की आवश्यकता नहीं है। ज्ञान से भक्ति उत्तम है सो बात सत्य है, परंतु ऐसी उत्तम भक्ति प्राप्त हो सकती है ज्ञान ही से जब तक अपने कर्तव्य धर्म का और ईश्वरीय मार्ग का यथार्थ ज्ञान न हो जाय तब तक भक्ति का गहरा तत्व समझ में ही नहीं आ सकता और सच्चा तत्व समझे विना भक्ति नहीं बन सकती इसलिये भक्ति श्रेष्ठ है तब भी भक्ति को दौड़ाने चलाने वाला ज्ञान ही है। ज्ञान न हो तो भक्ति का पूरा २ मजा नहीं मिल सकता। ऐसा होने से भक्ति उत्तम है तब भी उसको दिखाने वाला तो ज्ञान ही है इससे ज्ञान भक्ति का गुरु है।

संसार में सब वस्तुएँ तैयार हैं परंतु वे गरमी से होती हैं और गरमी के प्रकाश से ही दीखती हैं। जो प्रकाश दुनिया में से निकाल डाला जाय तो सब ही वस्तुएँ निकम्मी अर्थात् व्यर्थ हो जाँय वैसे धर्म, भक्ति और ईश्वर भी इसी सृष्टि में और हमारे हृदय में ही है परंतु जो ज्ञानरूपी प्रकाश उन्हें न दिखावे तो वे हमारे हृदय में होते हुए भी निरर्थक हैं इससे भाइयो! ज्ञान को नीचा समझने की भूल मत करो और ज्ञान की ओर बेपरवाही मत करो!

*****

१४३ भगवान् हमको बहुत ही देता है परंतु हम ले कहां सकते हैं ?

जब हम भोजन करने बैठते हैं तब अच्छा रसोइया हमको खूब ही

खिलाना चाहता है परंतु हम ही नहीं खा सकते तब हाथ आड़ा लगा देते हैं। भला रसोइया तो एक के बदले दो लड्डू रख जाता है और आधे के बदले पूरा दौना खीर से भर जाता है परन्तु हम ही नहीं खा सकते तब इनकार कर देते हैं। वैसे ही ईश्वर ने तो हमको बहुत ही दिया है और बहुत सा देना चाहता है परन्तु हम ही नहीं ले सकते इतना ही नहीं परन्तु जो मिला है उसको ही हम भोग नहीं सकते। हमारे दरिद्री रसोइये ही जब खूब परोसते हैं और हम माँगते हैं उससे भी अधिक देते हैं। तब विचार तो करो कि, परोसने वालों की अपेक्षा अनंत ब्रह्मांड़ का नायक परमेश्वर कितना बड़ा और कितना अधिक उदार है? विचार तो करो कि वह हमको कितना अधिक परोस सकता है! परंतु बात इतनी ही है कि, उसे लेने का हमारे पास स्थान कहाँ है? और उसको हजम करने की हम में शक्ति कहाँ है? हमारी पाचन शक्ति अच्छी न हो तब परोसने वाले का दोष क्या? वैसे ही हममें योग्यता न हो तब ईश्वर का क्या दोष? महात्मा लोग तो यही कहते हैं कि 'ऋद्धि सिद्धि नाम की दासी।'

ऋद्धि सिद्धि तो प्रभु के नाम की दासी हैं! खास ऋद्धि सिद्धि ही जब प्रभु की दासी है तब दूसरी छोटी मोटी वस्तुओं का तो कहना ही क्या? इसलिये भाइयो! याद रखो कि, परमेश्वर तो हमको बहुत ही देने को तैयार है परन्तु हमही अपनी अयोग्यता के कारण ले नहीं सकते। यह अयोग्यता ईश्वर को जाने विना नहीं मिट सकती और भक्ति विना ईश्वरीय आनंद और अखूट वैभव लूटने में नहीं आ सकता तथा हजम भी कर नहीं सकता। इसलिये यह अलौकिक लाभ लेना हो तो भक्ति करो! भक्ति करो!! भक्ति करो!!!

*****

१४४ हमको मायारूप साँपने काटा है इस सर्प विषको उतारने वाला गुरु है, इससे सद्गुरु की शरण लो

एक जिज्ञासु ने किसी साधु से पूँछा "महाराज! हमें गुरु को क्यों मानना चाहिये?"

साधु ने उत्तर दिया "बेटा! लोगों को मायारूप साँपने काटा है। साँप का विष उतारने वाला गुरु है। इससे गुरुको मानना चाहिये। तुम्हारे पास सैकड़ों हजारों दवाइयां और दूसरे साधन हैं परंतु उनसे मायारूप साँप का विष नहीं उतरेगा किंतु और बढ़ता ही जायेगा। तुम्हारे मरहम पट्टी

करने से तो घाव बढ़ते ही जांयगें और भी जोड़ (पैबंद) लगाने से अधिक ही अधिक गढ़े पड़ते जायँगे। तुम उस माया के विष पर रंग चढ़ाना चाहते हो परंतु तुम्हारी इच्छा सफेद रंग (अर्थात् भलाई गुणों के समान अवस्था) चढ़ाने की है जिसके बदले लाल अर्थात् तमोगुणी आपत्ति का और प्रेम का रंग चढ़ता है, और तुम्हारी इच्छा नीलारंग अर्थात् शांति और वृद्धि चढ़ाने की है जिसके बदले काला रंग अर्थात् भ्रम, अज्ञान और अंधकार चढ़ जाता है। इस प्रकार की भूलों और विषों में से बचने के लिये गुरु की आवश्यकता है। प्रभु की कृपा से गुरु को ऐसा मन्त्र याद होता है कि, उसकी फूँक से ही हमारा मायारूप सर्प का विष उतर जाता है और अब तक जो द्वार हमारे लिये बन्द पड़े हैं वे खुल जाते हैं, कारण गुरु की वाणी द्वारा ईश्वर की कृपा हम पर उतरती है। इसलिये गुरु को मानने की आवश्यकता है। सद्‌गुरु की कृपा हो तब परमेश्वर की कृपा हुई समझो। जब तक श्रीसद्‌गुरु की कृपा न हो तब तक हमको जहाँ नजर डालें वहां ही कुछ डरावने और कहीं २ तो काले विचित्र रंग दिखाई देते हैं, परन्तु जब गुरु की वाणी द्वारा ईश्वर की कृपा प्राप्त हो जाती है तब आकाश के शुद्ध आसमानी नीले रंग के विशाल घनश्यामरूप की अखण्ड शांति और अभेद् के ही दर्शन होते हैं इसलिये भाइयो! जो मायारूप साँप का विष उतारना हो तो श्रीसद्‌गुरु के चरण जाओ!

मनहर छन्द

गुरुके प्रसाद बुद्धि उत्तम दशाको गहै,
गुरुके प्रसाद भवदुःख बिसराये ।
गुरुके प्रसाद प्रेम प्रीतिहु अधिक बाढै,
गुरुके प्रसाद रामनाम गुन गाइये ।।
गुरुके प्रसाद सब योगकी जुगति जानै,
गुरुके प्रसाद शून्य समाधि लगाइये ।
सद्‌गुरु कहत गुरुदेवजू कृपाल होई,
तिनके प्रसाद तत्व ज्ञान पुनि पाइये ।।

गुरुदास के सम्बन्धी और भी किसी कवि की उक्ति है:—

दोहा

कोइ चितदुखी कोई मन दुखी, कोइ चित्तहिचित्त उदास । थोरे थोरे सब दुखी, सुखी सद्‌गुरु दास ।।

१४५ समय खो देने से सस्ती वस्तु भी महँगी हो जाती है, वैसे ही देर लगाने से भक्ति की कीमत भी बढ़ जाती है। इसलिये जैसे बनै वैसी जल्दी भक्ति में लग जाओ

एक मनुष्य किसी पुस्तक बेचने वाली की दूकान पर गया, उसने पुस्तक मांगी बेचने वाले ने पुस्तक दी। उसने उसकी कीमत पूँछी। दूकानदार ने कहा आठ आने। थोड़ी देर तक पुस्तक को देख दाखकर उसने फिर फूँछा "ठीक दाम बताओ!"

दूकानदार ने जबाब दिया "ठीक दाम इसके बारह आने हैं।"

फिर थोड़ी देर झंझट करके उसने कहा "भाई ठीक दाम बताओ!"

दूकानदार ने कहा "अब इसकी कीमत एक रुपया है।"

उसने फिर पूँछा "भाई! उड़ान बाजी क्या करते हो? ठीक बताओ ना!"

दूकानदार ने कहा "अब इसका दाम सवा रुपया है।"

उसने कहा "यार हँसी करते हो क्या? पहले आठ आने बताकर अब सवा रुपया कैसे बताते हो?"

दूकानदार ने कहा "दाम तो इसके आठ ही आने हैं परन्तु तुमने झक २ की अपना समय खराब किया और मेरा भी समय खराब किया इससे इसकी कीमत बढ़ गयी।"

वैसे ही हम भी ज्यों ज्यों भक्ति करने में देर लगाते हैं त्यों त्यों हमारे ऊपर प्रभु का ऋण बढ़ता जाता है और भक्ति की कीमत महँगी होती जाती है। इसलिये जैसे बने वैसे जल्दी ही भक्ति में लग जाना चाहिये क्योंकि ज्ञानियों ने कहा है कि, देर लगाना भयप्रद है और फजीहत में फायदा नहीं है। देर तो शैतान के साथ चाहिये और पाप के कामों में देर चाहिये, परन्तु धर्म में देर करना नहीं चाहिये। धर्म तो चटपट ही कर लेना अच्छा है। अपने मन के साथ और दूसरे लोगों के साथ झंझट करने में समय बिताने से लाभ क्या? इससे तो भक्ति की कठिनता बढ़ती है और भक्ति की कीमत बढ़ती जाती है। इसलिये भाइयो! बाहरी चतुराई छोड़कर जैसे बने वैसे जल्दी भक्ति में लग जाओ! समय मत खो! ! समय मत खो! ! !

पद

हरिकी भगती करना रे, पलकमें होवैगा मरना, पलकमें होवैगा मरना। अहो हरीजन हृदयकमलमें, हरिभगती करना ।। काका मामा कुटुम कबीला, छोडचले प्यारे, समझ मन छोड़ चले प्यारे। सबने में जो सृष्टी होती, ऐसा जग सारे, ऐसा जग सारे रे, समझ मन ऐसा जग सारे ।। सपनेमें० ।। धाम, धरा, धन, माल, खजाना, आखर नहिं अपना, समझ मन आखर नहिं अपना। एक दिना सब छोडके जाना, मट्टीमें खपना, मट्टीमें खपना रे, समझ मन मट्टीमें खपना ।। एक दिन० ।। काम, क्रोध, मद, मोह न रखना, करना सुकृतको, समझ मन करना सुकृतको। एक निरंजन नाम सुमिरना, भवजल तरनेको, भवजल तरनेको रे समझ भवजल तरनेको ।। एक निर० ।। झूँठ जगत्की छोड बासना, जा सद्गुरुचरना, समझ गन जा सद्गुरुचरना। अहो हरीजन हृदयकमलमें हरि भगती करना, हरि भगती करनारे पलकमें, होवैगा मरना ।। अहो० ।।

*****

१४६ जबतक समय है तबतक ईश्वर के निमित्त एक पैसा देकर जितना पुण्य प्राप्त कर सकोगे उतना समय चुक जानेपर एक मोहर देने से भी नहीं मिलेगा

जो हम बचपन से ही भक्ति में लग जायँ तो बहुत थोड़े परिश्रम से बहुत बड़ा काम कर लेते हैं, कारण उस समय हमारा मन सरल होता है इससे उसमें भक्ति के बीज जल्दी जम जाते हैं और भक्ति की जड़ दृढ़ हो जाने पर पाप का बड़ा डर लगता है। इस कारण स्वाभाविक रीति से ही पापों से बचाव हो जाता है। इसके पीछे ऐसा हो जाता है कि, पाप करना तो एक ओर रहा बरन् पाप के विचार आना भी कठिन हो जाता है। जवानी में शरीर में बल होता है, इसलिये उस बल से जो हम उस समय भगवान् की सेवा में लग जायँ तो बहुत से काम ऐसे हो जाते हैं जिनसे प्रभु प्राप्त हो सकें, परन्तु वह समय निकल जाने पर शरीर का बल चला जाता है।

३१ दोहा

भवनद्वार पर्वत कियो, नगरद्वार परदेश।
आह बुढापा! तोहिने, मो तन करि परवेश ।।१।।

और जरा २ से काम कठिन जान पड़ते हैं, ऐसे समय में अपने शरीर को चलाना ही कठिन पड़ जाता है तब धर्म के काम कहां से हो सकते हैं? इस तरह भक्ति करने में हम ज्यों ज्यों देर लगाते हैं त्यों ही त्यों भक्ति की कीमत बढ़ती जाती है। ज्यों ज्यों देर होती है त्यों त्यों हमारे मन में माया का कचरा भरता जाता है। वह कचरा बाहर निकाला जाय तब ही उस स्थान में भक्ति आ सकती है। परन्तु याद रखो कि, इस कचरे को हटाना कुछ सुगम बात नहीं है। इससे अब भी जब तक मन में अधिक कचरा नहीं भरा है तब तक ईश्वर की ओर झुक जाओ! झुक जाओ!!

तुम जानते हो देर लगाने से भक्ति कितनी महँगी हो जाती है? जो तुम इस बात को अच्छी तरह समझ लो तो तुमको आश्चर्य और अपनी ऐसी बड़ी भूल के लिये खेद हुए विना रहे। अभी भक्ति में लग जाने से हम इसी जन्म में ईश्वर के कृपा पात्र बन सकते हैं। और इसी जन्म में तर सकते हैं। परंतु समय खोदेने से अर्थात् इसी समय भक्ति में न लग जाने से हमारा यह जन्म वृथा जाता है और हम चौरासी लाख के चक्कर में पड़ जाते हैं। अब जरा विचार करके देखो कि, कहाँ तो इसी जन्म में छुटकारा और कहाँ चौरासी लाख का चक्कर! जरा सी देर लगाने में इतनी बड़ी हानि होती है परंतु खेद है कि, तब भी हम सचेत नहीं होते। हमारी इस मूर्खता को तो देखो! ईश्वर! हमको इस मूर्खता से बचा और जल्दी भक्ति में लग जान को बल दे!

यह तो देखो कि, अभी भक्ति में लग जाने से क़ितना बड़ा लाभ होता है, शास्त्र कहते हैं कि इस समय स्नान करने मात्र से तुम जो फल पा सकते हो वह फल समय चूक जाने पर दान करने से भी नहीं पाओगे, इस समय थोड़े मीठे शब्द बोलने से तुम अपना जितना कल्याण कर सकोगे उतना समय चला जाने पर पश्चात्ताप करने से भी नहीं कर सकोगे, अभी जब तक समय है तब तक ईश्वर के निमित्त अपने गरीब भाइयों को पैसा देकर जितना पुण्य प्राप्त कर सकते हो उतना समय निकल जाने पर मोहर देकर भी नहीं प्राप्तकर सकोगे अभी छोटे मोटे व्रत करके जितना फल पा सकोगे उतना फल समय चुक जाने पर पर बड़े २ यज्ञ करके भी नहीं पा सकोगे, और इस समय थोड़ी देर जप करने से भी ईश्वर जितना प्रसन्न होगा उतना प्रसन्न समय निकले पीछे बरसों तक जप करने से भी नहीं होगा। अभी ईश्वर ने कृपा करके हमको यह समय दिया है इसलिये इस

समय से, इस अवसर से लाभ उठा लो यह अवसर चूक जाने पर भक्ति की कीमत बढ़ जायगी! इसे निश्चय जानो!

*****

१४७ भक्तों पर पड़ने वाले दुःख जहाज की पीठ पर लगने वाले पवन के समान हैं, इनसे इच्छित स्थान पर जल्दी पहुँचा जा सकता है

एक अनजान मनुष्य जहाज में बैठकर कहीं जा रहा था। थोड़ी देर में हवा जोर से चलने लगी और जहाज डगमगाने लगा यह देख वह नया आदमी डर गया और कहने लगा "हाय! हाय! अब क्या होगा? मैं तो आज मरा! अरे मैं भूलकर इसमें कहाँ आन बैठा? इस पवन ने तो सर्वनाश कर दिया।"

इस तरह पर जब वह चिंताचुर हो रहा था तब मल्लाह ने कहा "यह हवा तो बहुत अच्छी! इससे हम जल्दी अपने मुकाम पर पहुँचेंगे। इसमें घबराने का काम क्या है?"

उस अनजान आदमी की तरह हम भी वृथा ही दुःख से डरते हैं परंतु यह नहीं जानते कि, ये दुःख तो हमारे लिये जहाज की पीठ पर लगने वाली हवा की तरह हैं। संत लोगों का ऐसा कहना है कि जो हमको इन दुःखों का उपयोग करना आता हो तो ये हमको तारने वाले हैं, क्योंकि भक्तों पर पड़ने वाले दुःख उनको डुबाने के लिये नहीं है। किन्तु जल्दी मुकाम पर पहुँचाने के लिये है। हवा न होने से जहाज को चलने में देर लगती है वैसे ही दुःख न होने से ईश्वरीय मार्ग मैं चलने में भी देर लगती है इसलिये दुःख है सो भी एक प्रकार का गुण ही समझना चाहिये। इस गुण का समझकर लाभ लेने से दुःख बदलकर सुख हो जाता है और हमको ईश्वरीय मार्ग में एक साथ आगें बढ़ाता है। इसलिये दुःख से कायर मत होओ और ईश्वर की इच्छा के अधीन होओ तथा जैसे ईश्वर रखे वैसे ही रहने में आनंद मानो! यही महात्माओं का उपदेश है। यही धर्म का तत्व है। यही ईश्वर को प्रसन्न करने का सुगम से सुगम मार्ग है। इसलिये भाइयो! सब लंबी चौडी बांतों को एक ओर रखकर समझलो कि, ईश्वर जो करता है सो सब अच्छा ही करता है, और तब उसकी इच्छा के अधीन होने का बल प्राप्त करो!

*****

१४८ ज्ञान से भक्ति उत्तम है, क्योंकि ज्ञान बाहर से आता है और भक्ति भीतर से आती है

ज्ञान से भक्ति उत्तम क्यों है? पंड़ित लोग इसका उत्तर यह देते हैं कि प्रथम तो ज्ञान बाहर से आता है और भक्ति भीतर से उपजाती है, दूसरे ज्ञान मस्तिष्क में रहता है परंतु भक्ति हृदय में रहती है और तीसरे ज्ञान को जिस ओर झुकाना चाहें उसी ओर झुका सकते हैं अर्थात् उसका बुरा उपयोग भी हो सकता है, परंतु भक्ति तो एक परमेश्वर की ही ओर झुकती है और ज्ञान की अपेक्षा इसमें शांति भी अधिक है इसके सिवाय ज्ञान में बहुत से प्रपंच मिले हुए हैं और भक्ति में हृदय की सरलता मिली हुई है, इन्हीं कारणों से ज्ञान की अपेक्षा भक्ति उत्तम है। फिर देखो! ज्ञान में कठोरता है परंतु भक्ति में कोमलता है, ज्ञान प्राप्त करने में कठिनाई पड़ती है और भक्ति सुगमता से मिल सकती है, ज्ञान को बढ़ाने के लिये बाहरी अनेक साधनों की आवश्यकता पड़ती है परंतु भक्ति बाहरी साधनों के विना भी बढ़ सकती है, ज्ञान को देशकाल की आवश्यकता है, परंतु भक्ति को देशकाल की इतनी आवश्यकता नहीं है, ज्ञान में स्वभाव से ही अहंकार है और भक्ति में स्वभाव से ही दीनता है और तो क्या परंतु ज्ञान शब्द ही उग्र है और भक्ति शब्द शांति कारक है। इसलिये भक्त उत्तम है! भक्ति उत्तम है!!

सवैया

चारोंहि वेद पुराण अठारहौं, चौसठ तंत्रके मंत्र विचारे । तीनसौ साठ महाव्रत संयम, मंगल यज्ञ पुरी पुर सारे ।। योग वियोग प्रयोग उपासन, मैं हरिदत्त सभी निरधारे । तीनोंहि लोकनके सगरे फल, मैं हरिनामके ऊपर वारे ।।

(रागरत्नाकर।)

*****

१४९ परमेश्वर की परीक्षा लेने की इच्छा मत करो! परंतु सरलता से उसकी इच्छा के अधीन हो!

एक गरीब परंतु भगवद्भक्त बाई किसी काम से एक पहाड़ पर गयी। वहां पर उसे एक सिपाई मिला। सिपाई बड़ा नीच था। बाई को अकेली देखकर उसने उस पर आक्रमण करना चाहा। स्त्री धर्मवती और पतिव्रता थी। वह जानती थी कि, लाज खोकर जीना धिक्कार है। उस समय उसके

बचने का कोई उपाय नहीं था इससे वह ऊंची पहाड़ी पर से गिर पड़ी, एक झाड़ से पर से दूसरे पर और दूसरे पर से तीसरे पर गिरती हुई वह नीचे होकर बहने वाली नदी में जा गिरी, ईश्वर बड़ा दयालु है। उसकी कृपा से वह इतने ऊंचे से गिरने पर भी बच गयी और उसके कहीं चोट न आयी। जितने ही बरस पीछे फिर उसको उसी पहाड़ पर चढ़ने का काम पड़ा ऊपर जाने पर उसे उस सिपाई की बात याद आ गयी और मन में विचार आया कि पहली बार जैसे ईश्वर ने मेरी रक्षा की थी वैसे अब की बार भी करता है या नहीं इतना विचार आते ही वह एक छोटे से पत्थर पर से गिरी। इस बार गिरते ही उसकी हड्डियां टूट गयीं। पैर से लँगड़ी हो गयी और बड़ी कठिनाई से प्राण बचे!

थोड़े समय पीछे जब वह एक धर्मगुरु से मिली तो उसने पूछा "महाराज! पहली बार मैं ऊंचे पहाड़ पर से गिरी थी तब भी मुझको चोट नहीं लगी और दूसरी बार एक छोटे पत्थर पर से गिरी उसमें ही हाथ पैंर टूट गये और जीना कठिन पड़ा इसका कारण क्या?"

गुरु ने कहा "बाई! पहले तो तुम पर सच्चा संकट था और मरने से भी तुमने पतिव्रत की रक्षा करना अधिक अच्छा समझा था इससे भगवान् ने तुमको बचा लिया। परंतु दूसरी बार वैसा कोई कारण नहीं था। इस बार तो तुम केवल ईश्वर की परीक्षा करने ही के लिये गिरी थी इससे इसका फल तो ऐसा ही होना चाहिये। क्योंकि हमको समर्थ परमेश्वर की परीक्षा लेने का कोई स्वत्व नहीं है।"

जो इस तरह पर ईश्वर की परीक्षा करते हैं उसकी तो खराबी ही है। भाइयो! तुम अपने धर्म की रक्षा करो तो ईश्वर तुम्हारी सहायता करेगा परन्तु जो तुम ईश्वर की परीक्षा करो तो वह तुम्हारी सहायता नहीं करेगा, क्योंकि ईश्वर तो विश्वास चाहता है और उसकी परीक्षा करना है सो पूरा २ अविश्वासीपन है। ऐसे अविश्वासीपने का ईश्वर के साथ क्या सम्बन्ध? जो धर्म या विश्वास को नहीं समझते वे ही ईश्वर की परीक्षा लेने जाते हैं और उक्त बाई की तरह तकलीफ उठाते हैं इसलिये भाइयो! ईश्वर की परीक्षा करने की इच्छा मत करो किन्तु उसकी इच्छा के अधीन हो!

*****

१५० विश्वास क्या है? स्वर्ग के द्वार की चाबी का नाम विश्वास है,

एक शिष्य ने अपने गुरु से पूछा "आप सब लोकों से बारबार कहते हैं कि विश्वास करो! विश्वास करो! परन्तु विश्वास वस्तु क्या है सो तो बताओ?"

गुरु ने कहा "बेटा! स्वर्ग के दरवाजे को खोलने की चाबी का नाम विश्वास है।"

यह सुनकर शिष्य चकित सा हो गया और गुरु की मुँह की ओर देखने लगा तब गुरु ने फिर कहा "बेटा! इसमें चकित होने की कोई बात नहीं है, विश्वास ही स्वर्ग के दरवाजे की चाबी है। तूने भी बहुत से शास्त्र सुने और पढ़े हैं। उनमें ईश्वर का दरवाजा खोलने की कोई दूसरा चाबी देखी हो तो तू ही बता।"

शिष्य ने बहुत कुछ विचार किया परन्तु विश्वास के सिवाय दूसरी कोई भी चाबी उसे मिली नहीं। तप, दान, सेवा, यज्ञ, योग, भक्ति, ज्ञान आदि बहुत से साधन हैं परन्तु विश्वास विना एक भी साधन काम का नहीं है। विश्वास विना इनमें का एक भी साधन पूरा नहीं पड़ सकता और जो कोई थोड़ा बहुत हुआ भी तो पूरा २ फल तो कदापि दे ही नहीं सकता। इसलिये सब साधनों का आधारभूत एक विश्वास ही प्रभु का द्वार खोलने की चाबी है। भगवान् ने भी गीता में कहा है–

"अज्ञश्चाश्रद्दधानश्च संशयात्मा विनश्यति ।
नायं लोकोऽस्ति न परो न सुखं संशयात्मनः ।।"

अ० ४ श्लो० ४०

अर्थ–अज्ञानी, श्रद्धा विना के, तथा संशय वाले नाश पाते हैं। जिनमें भी संशय वालों का तो यह लोक बिगड़ता है, परलोक बिगड़ता है और सुख भी नहीं मिलता।

फिर भी कहा है–

"अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतं च यत् ।
असदित्युच्यते पार्थ न च तत्प्रेत्य नो इह ।।"

अ० १७ श्लो० २८

अर्थ–हे अर्जुन! श्रद्धा विना जो हवन किया जाय, दान किया जाय तप किया जाय, अथवा और कोई कर्म किया जाय तो वह सब असत् कहलाता

हैं, कारण श्रद्धा विना जो किया जाता है उसका इस लोक में और परलोक में भी फल नहीं मिलता।

*****

१५१ ज्ञान और कर्म में से विश्वास उत्पन्न होता है, इसलिये ज्ञान और भक्ति विना का विश्वास मरे हुए के समान है

विश्वास स्वर्ग की चावी है। इस बात को जान लेने बाद यह भी जानना चाहिये कि विश्वास की उत्पत्ति कहां से हुई है। महात्मा लोग कहते हैं कि ज्ञान और कर्म में से विश्वास उत्पन्न हुआ है। अकेले ज्ञान से नहीं और अकेले कर्म से भी नहीं किंतु ज्ञान और कर्म दोनों से विश्वास बना है। इसलिये ज्ञानं और कर्म विना का विश्वास सो झूंठा विश्वास कहलाता है, क्योंकि विश्वास कर्म और ज्ञान से पैदा ही नहीं हुआ है किंतु कर्म और ज्ञान में ही विश्वास है। इसलिये सत्कर्म और अच्छा ज्ञान न हो तब सच्चा विश्वास नहीं समझना। अंतःकरण का समाधान हो वैसे शास्त्रों के अच्छे ज्ञान विना का विश्वास सो अंधा विश्वास कहलाता है और अच्छे कर्म विना केवल ज्ञान की बातें करने का विश्वास सो चारों वेद जानने वाले परन्तु बुरे कर्म करने वाले रावण कासा विश्वास सो आसुरी विश्वास कहलाता। ऐसा विश्वास किसी काम का नहीं होता। ऐसे विश्वास से तो उलटी खराबी होती है इसलिये ज्ञान और कर्म विना के विश्वास को साधु लोग मरा हुआ विश्वास कहते हैं। भाइयो! ऐसे मरे हुए विश्वास में न पड़े रहो परंतु प्रभु को तुम्हारे विश्वास का निश्चय कराने के लिये शास्त्रों के अच्छे ज्ञान फैलाओ और धर्म के अच्छे काम कर दिखाओ!

*****

१५२ हनुमान्‌जी ने रामचंद्रजी से कहा कि मुझको स्वर्ग में या मोक्ष में सुख नहीं है परंतु मेरा सुख तो आपकी इच्छा के अधीन होने में है

भगवान् रामचंद्रजी ने एक बार हनुमान्‌जी से पूछा कि तुम्हारी क्या इच्छा है? हनुमान्‌जी ने कहा "महाराज! आपकी इच्छा सोई मेरी इच्छा! मेरे प्रभु से मेरी इच्छा जुदी कैसे हो सकती है?"

राम ने फिर पूछा "तुम्हारा सुख किसमें?"

हनुमान्‌जी ने उत्तर दिया "महाराज! आपकी आज्ञा पालने में ही मेरा सुख हैं।"

रामचंद्रजी ने पूछा "तुमको स्वर्ग में भेजूं तो सुख होगा?"

हनुमान्‌जी ने कहा "महाराज! मेरा सुख स्वर्ग में नहीं है! मेरा सुख तो आपकी आज्ञा पालने में है। जो आप आकाश में भेजें तो मेरा सुख आकाश में है, पाताल में भेजें तो पाताल में सुख है, आप स्वर्ग में भेजें तो स्वर्ग में सुख है और नरक में भेजें तो मेरा सुख नरक में हैं। मेरा सुख न स्वर्ग में है न नरक में है परन्तु आपके अधीन होने ही में मेरा सुख है।"

भक्तों का हृदय कैसा होता है सो इस बात पर से समझ लेना चाहिये। दूसरी बात यह भी इस पर से सीखने की है कि, किसी भी देश में किसी भी काल में और किसी भी स्थिति में सच्चा सुख नहीं है, परंतु प्रत्येक देश में, प्रत्येक काल में और प्रत्येक स्थिति में भगवदिच्छा के अधीन होने ही में भक्तों का सुख है और अपना स्वार्थ छोड़कर अपनी इच्छा छोड़कर प्रभु के अधीन होना ही सच्चा तप है। बाहरी धूनियां तापना, उपवास करना, ठंड़ सहना और इसी प्रकार के अन्य हठ करके जान बूझकर तकलीफ उठाना और मन को बिगाड़ना सच्चा तप नहीं कहलाता, परंतु भगवान् की इच्छा से प्रारब्ध के अनुसार स्वाभाविक रीति से जो आन बने उसी को हर्ष शोक किये विना शांति से भोग लेना ही सच्चा तप है, और इसी का नाम भगवदिच्छा के अधीन होना है। इसलिये जैसे बने वैसे प्रभु की इच्छा में अपनी इच्छा मिला दो, इसी का नाम तप है और इसी में उत्तम सिद्धि है।

पद—रागबिहाग

राखो तैसे रहूं प्रभु तुम, राखो तैसे रहूं । जानतहो दुख सुख सब जनको मुखसे मैं कहा कहों ।। जैसे० ।।१।। कबहुँक भोजन देहो कृपा करी, कबहुँक भूख सहों । कबहुँक चढ़त तुरंग महागज, कबहुँक भार बहों ।। जैसे० ।।२।। कमलनयन घनश्याम मनोहर, अनुचर होयरहों । सूरदास प्रभु भक्त कृपानिधि, तुमरे चरण गहों ।। जैसे० ।।३।।

*****

१५३ जहां दूसरे वृक्ष नहीं होते वहां एरंड़ ही बड़ा कहलाता है; इसी तरह पापियों में बड़ा गिने जाने से फूलना नहीं

हम बच्चों से बड़े गिने जायँ परंतु बूढ़ों में तो छोटे ही कहलाते हैं। वैसे

ही हम पापियों में अच्छे गिन जायँ परंतु पहले के और हालके महापुरुषों में तो नीचे ही गिने जाते हैं पापियों में बड़े गिने जाने से हमको फूलना नहीं चाहिये किंतु यही समझना चाहिये कि, भलों के आगे तो हम 'नहीं तीन नहीं तेरह में और नहीं छप्पन के मेल में ही' हैं। तब ईश्वर के आगे तो हम कितने नीचे हैं? भाइयो! निर्धनों में धनवाले और बालकों में बड़े गिने जाने ही से हमको प्रसन्न नहीं हो जाना चाहिये, यों तो जहां कोई दूसरे बड़े वृक्ष नहीं होते वहां एरंड़ का पेड़ ही बड़ा माना जाता है परंतु यथार्थ में एरंड़ कुछ बड़ा गिना जाने योग्य नहीं है। इसी तरह हम भी पापियों और अज्ञानियों में अच्छे गिने जाने से यथार्थ अच्छे नहीं हो सकते, परंतु यथार्थ अच्छे बनने के लिये तो सच्चे धनवाले, धर्म के धनवाले और सच्चे बड़े, बच्चों में बड़े नहीं परंतु ज्ञानियों में बड़े होने का यत्न करना चाहिये इसी में बड़ाई है, और इसी में सार्थकता है।

*****

१५४ प्रभु पर हमको विश्वास है या नहीं इसका प्रमाण क्या? शास्त्र से ज्ञान प्राप्त करना और धर्म के अच्छे काम करना हमारे विश्वास का प्रमाण है

ईश्वर के जरूरत माफक ज्ञान और धर्म के अच्छे काम के विना जो खाली विश्वास है उसको साधु मरा हुआ विश्वास कहते हैं। ऐसे मरे हुए विश्वास से कुछ भी काम नहीं चलता क्योंकि तोते के राम राम रटने की तरह ईश्वरीय बातों को केवल मुँह से रटना सच्चा विश्वास नहीं कहलाता किंतु उसके अनुसार चलना ही सच्चा विश्वास है। जब तक हमारे नित्य के व्यवहार में और आचरण में वह विश्वास काम नहीं आवे तब तक केवल मन में माना हुआ विश्वास किस कामका? ऐसे रूखे विश्वास–ऐसी अंधी श्रद्धा से कुछ काम नहीं होता! क्योंकि केवल मान लेता तो बीज है और माने हुए के अनुसार चलना उसका पेड़ है। बीज में से वृक्ष हो तब ही फल मिल सकता है। वैसे ही हम शास्त्र की जिन बातों को मानते हैं उनको पालें तब ही फल पा सकते हैं, विना पाले केवल मान लेने से फल नहीं मिलता। गुरु कहे कि, संध्या करना चाहिये तब हम कहें कि, हां महाराज! ठीक है। गुरु कहे कि प्राणायाम करना चाहिये तब हम कहें कि, हां महाराज! बहुत ठीक है। गुरु कहे दान देना अच्छा है तब हम कहें कि, वाह! वाह! कैसा अच्छा उपदेश है। गुरु कहे कि, विद्या सीखना

चाहिये तब हम कहे कि हां महाराज! यह तो बड़ी कल्याण करने की बात है। गुरु कहे कि, अधिक हर्ष शोच नहीं करना तब हम कहें कि वाह! वाह! हमारे धन्य भाग्य! बड़ा अच्छा प्रसंग है। इस तरह की बातें तो हम अनेक करें परंतु पालें एक को भी नहीं तो वह डफोलशंखपना ही है या और कुछ!

ऐसा करने से हमारा कल्याण नहीं हो सकता और न गुरु ही प्रसन्न होता है। वैसे ही धर्म की और शास्त्रों की बातें मान लेने ही से कल्याण नहीं हो सकता परंतु उन बातों का अपने जीवन में अनुभव करने और व्यवहार में पालने से ही कल्याण हो सकता है। भाइयो! जैसे बनै वैसे ईश्वर के ज्ञान और धर्म के कामों को साथ लेकर विश्वास करो! ज्ञान और कर्म विना का विश्वास तो मरा हुआ विश्वास है। इसलिये ऐसे मरे हुए विश्वास में पड़े मत रहो किंतु शास्त्र के ज्ञान और धर्म के काम से ईश्वर को अपने विश्वास का प्रमाण दिखाओ! प्रमाण दिखाओ!

*****

१५५ कर्तव्य पालन करने के लिये किसी बार ईश्वर भजन छोड़ना पड़े तो वह भी एक तप है

संसार में सब चीजों में प्रभु का भजन करना एक उत्तम में उत्तम सार का भी सार और तत्व का भी तत्व है। इतना होने पर भी किसी समय कर्तव्य पालन करने के लिये ईश्वर भजन छोड़ देना पड़े तो वह भी एक प्रकार का तप ही है। ईश्वर के निमित्त ईश्वर भजन के लिये अपनी इच्छा का भोग देना पड़े वह तप है, और ऐसा होने पर भी कोई समय ऐसा आता है कि, खास भजन को भी भोग देना पड़ता है, कारण भजन की इच्छा होना भी एक प्रकार की मन की वृत्ति है अर्थात् भजन की इच्छा भी एक प्रकार की इच्छा है, यद्यपि यह इच्छा उत्तम है परन्तु भगवदिच्छा के सब तरह से अधीन होने वाली इच्छा से भजन करने की इच्छा अधिक बड़ी नहीं है। इसलिये भगवदिच्छा के सब तरह से अधीन होने के लिये कभी २ भजन का भी भोग देना पड़ता है अर्थात् भजन भी छोड़ना पड़ता है। इस तरह पर भजन छोड़ देना पड़े तो वह भजन छोड़ना भी तप ही करना कहलाता है।

जैसे कोई स्त्री अपने बच्चे को रोता छोड़कर देवदर्शन करने जाय तो वह पाप है। यद्यपि दर्शन करना पुण्य है परन्तु बच्चे को सँभालना कर्तव्य

है और कर्तव्य है सो ईश्वर की आज्ञा है। पुण्य करने से भी ईश्वर की आज्ञा पालन बड़ा है। इससे ईश्वर की आज्ञा का भंग करके पुण्य करना सो पुण्य करने पर भी पाप करने के समान है। वैसे ही जिस मनुष्य पर कुटुंब का आधार हो वह मनुष्य जो तीव्र वैराग्य बिना केवल दुःख से घबराकर अथवा किसी अन्य कारण से कुटुंब को निराधार छोड़कर चला जाय अथवा बाबा साधु बन जाय तो उसको भी पाप लगता है, कारण जिस कुटुंब स्नेह का वह भागी बना है उस स्नेह का बदला देने को वह बँधा हुआ है और उसका बदला देना ईश्वर को आज्ञा है। उस आज्ञा को तथा स्नेह को तोड़कर चाहे भजन ही को इच्छा से हो परन्तु विना तीव्र वैराग्य के जो घर छोड़ जाय वे पाप के भागी बनते हैं, क्योंकि भजन भी एक प्रकार का आनंद है, इससे अपने आनंद के लिये ईश्वर की आज्ञा को तोड़ना प्रत्यक्ष स्वार्थपरता है, स्वार्थपरता से ईश्वर कैसे प्रसन्न हो सकता है? इसलिये भाइयो! याद रखो कि, ईश्वर की इच्छा के अधीन होने के लिये स्वार्थी भजन का भोग देना त्याग करना पड़े तो कुछ बड़ी बात नहीं है।

*****

१५६ मित्रों के दोष नहीं देखे जाते और उनके कितने ही घाव सहने पड़ते हैं, तब जो सच्चे भक्त हों वे प्रभु के दोष कैसे देखें? और प्रभु के घावों को सहने में आनाकानी कैसे करें?

एक सेठ गाड़ी में बैठकर सैर करने जा रहा था। मार्ग में एक वेश्या के घर के आगे होकर गाड़ी निकलते ही वेश्या ने कागज की एक गेंद सी बनाकर सेठ पर फेंकी, गेंद सेठ के शिर पर जाकर लगी जिससे पगड़ी नीचे गिर गयी इससे सेठजी को और उसके साथ वाले नौकरों को बड़ा क्रोध आया; इतने ही में वह वेश्या हँसती २ खिड़की में से बोली "सेठ साहब! क्या हुआ? यह गेंद तो मैंने फेंकी है!"

यह सुनकर सेठ हँस दिया और अपने आदमियों से कहने लगा "कुछ नहीं २! यह तो उसने हँसी की है!"

इस तरह पर उस वेश्या ने बीच बाजार में गेंद मारकर पगड़ी गिरा दी तब भी सेठ उस पर नाराज न हुआ, कारण यह था कि, वह उसको प्यारी थी। उसने सेठ की परीक्षा और हँसी करने के लिये प्रेम से गेंद फेंकी

थी वैसे ही प्रभु हमारी परीक्षा करने के लिये हम पर के प्रेम के कारण किसी समय घाव कर देता है उससे अप्रसन्न न होना चाहिये। बच्चा हमारी मूंछ खैचे, स्त्री कभी २ कठोर वचन कह दे और मित्र कभी कोई भूलकर जाय तो हम उन पर अप्रसन्न नहीं होते, परंतु ईश्वर जो कभी हम पर कुछ सहज की सी तकलीफ डाले तो हम उसी समय बिगड़ जाते हैं इसका कारण क्या! इसका कारण यही है कि, हम जितना प्रेम औरों पर रखते हैं। उतना प्रेम ईश्वर पर नहीं रखते इससे औरों का जितना सह सकते हैं उतना भी ईश्वर का नहीं सह सकते। इसलिये जब तक हममें ईश्वर की इच्छा के सामने पड़ने का जोश रहे तब तक निश्चय समझ रखना चाहिये कि हमने ईश्वर को पहँचाना नहीं है। संसार में जब कोई मनुष्य अपने प्रेम पात्र के ही दोषों को नहीं देखता तब जो प्रभु पर हमको पूर्ण हो तो हम उसके दोषों को कैसे देख सकते हैं, और उसके किये हुए घावों को सहने में कैसे आनाकानी कर सकते हैं? हम अपने नाम मात्र के मित्रों के लिये और खुशामदियों के लिये प्राण देने को तैयार रहते हैं और ईश्वर की ओर से किसी भी दिन कोई अड़चन आ पड़े तो हम दौड़धूप और हाय तोबा मचा डालते हैं। क्या यह वैष्णवता है? यह क्या प्रेम लक्षणा भक्ति का चिह्न है?

*****

१५७ ईश्वर जो करता है सो अच्छा ही करता है परंतु हम उसका भेद नहीं समझते, इसी से उसे बुरा बताते हैं

जो पक्के भक्त होते हैं वे सदा यही समझते हैं और अनुभव से कि, ईश्वर जो करता है सो ठीक ही करता है। वे विश्वास पूर्वक यह भी मानते हैं कि, बुरा होता है सो भी अच्छे के लिये। हम अंतःकरण से ऐसा विश्वास नहीं रख सकते यही हममें और भक्तों में भेद है। बुरा होता है सो भी भले ही के लिये इस बात के प्रमाण में भक्त लोग यह उदाहरण देते हैं:–

एक भक्त द्वारका जाने के निमित्त जहाज में बैठने के लिये समुद्र पर जाने को घर से निकला। मार्ग में अकस्मात् उसके पैर में चोट लगी जिस पर पट्टी आदि बांधने में देर लग गई और जहाज छूट गया जिससे उसको समुद्र पर से पीछे लौट आना पड़ा तब मार्ग में लोग उसकी हँसी करने और पूछने लगे "क्यों भक्त! द्वारका हो आये?"

भक्त ने उत्तर दिया "ईश्वर जो करता है सो अच्छा ही करता है? लोगों ने यह सुनकर उसकी हँसी की और पूछा "तुम्हारी टांग टूटी इसमें ईश्वर ने क्या भला किया!"

भक्त ने उत्तर दिया "ईश्वर तो सब भला ही करता है, परंतु हम उस बात को समझ नहीं सकते इससे बुरा मानते हैं।

दूसरे ही दिन तार आया जिससे मालूम हुआ कि द्वारका जाने वाले कल का जहाज मार्ग में डूब गया और उसके एक भी यात्री का पता नहीं लगा। यह खबर सुनकर जो लोग कल उस भक्त की हँसी करते थे वे ही आज उसको बधाई देने लगे और अपने आप इस बात को स्वीकार करने लगे कि ईश्वर जो करता है सो सब अच्छा ही करता है परंतु हम उसे समझते नहीं इससे बुरा मानते हैं इसलिये ऐसा कड़वापन मन में न आने दो और इस बात को सीखने का यत्न करो कि ईश्वर जो करता है सो अच्छा ही करता है।

*****

१५८ भक्ति का बदला मांगना ईश्वर की परीक्षा लेने के समान है

सच्चे भक्त बड़ी भक्ति करते हैं और इतनी शक्ति रखते हैं कि, उस भक्ति के प्रताप से जो चाहे सो पा सके परंतु तब भी वे अपनी भक्ति का बदला ईश्वर से कभी पाने की आशा नहीं करते, क्योंकि बदले की आशा रखना ईश्वर की परीक्षा करने के समान है इस बात को बहुत से लोग नहीं समझते इससे वे व्यवहारों में भक्ति का बदला पाने की बारबार आशा किया करते हैं और काच का टुकड़ा लेने के लिये भक्तिरूपी पारसमणि को देने पर तैयार रहते हैं। बहुत से आदमी कहते होंगे कि भक्ति का बदला मांगने से क्या बुराई है? किसान लोग मनोती मानते हैं कि मेरा बैल अच्छा हो जायेगा तो तीन ब्राह्मण जिमाऊंगा। स्त्रियां मनोती मानती हैं कि मेरी चोली (कंचुकी) नहीं मिलती सो मिल जायेगी तो श्रीजी की पेटी में दो पैसे डालूंगी विद्यार्थी लोग मनोती मानते हैं कि इस परीक्षा में हम पास हो जाँयगे तो अमुक महादेव के स्थान में दीपावली करेंगे। मुकद्दमेबाज मनोती मानते हैं कि हम मुकद्दमा जीत जायँगे तो हनुमान्‌जी के प्रति शनिवार तेल चढ़ायँगे और दूकानदार लोग मनोती करते हैं कि, इस साल में हमको अमुक लाभ होगा तो सत्यनारायण की कथा करावेंगे।

इस तरह प्राय: सबही लोग जरा सी बात के लिये अपनी भक्ति को बेच डालते हैं और अपने थोड़े से स्वार्थ के लिये ईश्वर की परीक्षा लेने को तैयार होते हैं 'मनुष्य की खोपड़ी में कितनी हड्डियां है?' 'मुसलमानों का राज्य कैसे गया?' आदि प्रश्न पूछना ही परीक्षा लेना नहीं कहलाता परन्तु ईश्वर से भक्ति का बदला मांगना भी परीक्षा लेना ही है, क्योंकि इससे ईश्वर पर अविश्वास प्रमाणित होता है। 'हम तेरे लिये अमुक किया करते हैं, तू हमारे लिये अमुक काम कर दें' इस प्रकार की बात करना तो व्यापार करने समान है प्रभु की परीक्षा लेना है और प्रत्यक्ष अविश्वास है। सच्चे भक्त का तो यही धर्म है कि, जैसे प्रभु रखे वैसे ही रहना, सब तरह से ईश्वर की इच्छा के अधीन होना और अमूल्य भक्ति का धूल जैसी वस्तु से कभी बदला मांगने की इच्छा न करना।

*****

१५९ अंधे मनुष्य को अपने अगुए के भरोसे पर चलना चाहिये तब ही वह सकुशल चल सकता है वैसे ही हमको भी अपनी डोरी ईश्वर को ही सोंप देना चाहिये

अंधा आदमी उसकी लकडी पकड़कर चलने वाले आदमी के भरोसे रहे तब ही सकुशल आगे बढ़ सकता है परंतु जो वह उस पर विश्वास न रखे तो पलपल में उसको फिकर रहता है, वह वारवार रास्ता भूल जाता है और कभी २ तो गढ़े में भी गिर जाता है। अंधे मनुष्य की तरह हम भी अज्ञानी हैं। प्रभु की माया का पार नहीं पाया जाता। हम भी अपने चलाने वाले अगुए प्रभु को छोड़कर अपनी इच्छा के अनुसार चलें तो माया के चक्कर में भी फँस गये विना कभी न रहें और जो माया के चक्कर में फँस गये तो अवश्य चौरासी लाख के चक्कर में भी जाही पड़े। ऐसा न होने देने के लिये हमको अपनी डोरी अंधेवाली लकड़ी ईश्वर के हाथ में सौंप देनी चाहिये। प्रभु के हाथ में डोरी दे देने से हम निर्भय हो जाते हैं और समय पर अपने इच्छित स्थान पर सकुशल पहुँच सकते हैं। जो अंधा अपने अगुए के भरोसे नहीं रहता वह खराब होता है। इसी तरह हम भी धर्म के काम में और प्रभु के मार्ग में महा अज्ञानी होते हुए भी जो अपनी डोरी समर्थ ईश्वर के हाथ में नहीं सौंप देंगे तो कदापि शांति प्राप्त' नहीं क सकेंगे और कभी सच्चा सुख नहीं पा सकेंगे। इसलिये भाइयो! प्रभु के चरण के शरण का बल प्राप्त करो और अपनी डोरी समर्थ प्रभु के हाथ में सौंप दो

तो वह करुणा का भंड़ार हमारा कल्याण करेगा ही।

*****

१६० भक्ति की जड़ बाल से भी बारीक तार पर है, वह बारीक तार सो ही विश्वास है

महात्मा लोग कहते हैं कि, भक्ति की जड़ मनुष्य के बाल से भी बारीक तार पर है जो वह पतला तार टूट गया तो सारी मेहनत चली जाय कारण जड़ कट जाने से पेड़ नहीं ठहर सकता। जैसे बने वैसे उस पतले तार को उस जड़ को मजबूत करो । भक्ति की यह जड़ सो ही विश्वास है। अर्थात् श्रद्धा विना की भक्ति है सो जड़ विना के वृक्ष समान है। भाइयो! जड़ की रक्षा करो! जड़ की रक्षा करो! क्योंकि वह जड़ बारीक में बारीक और नाजुक है। वह तारे सहज ही में टूट जाने योग्य है। इससे उसकी पूरी २ सँभाल रखो। अविश्वास के किसी भी भाव को मन में मत आने दो! श्रद्धा टूट जाने का कोई भी काम न करो! अपने विश्वास को डिगाने वाली किसी भी जगह न जाओ! सब प्रकार से और सारे बल से भक्ति के नाजुक तार को सँभालो! क्योंकि जो यह तार टूट गया तो काताकूता कपास हो जायेगा और सारा परिश्रम निष्फल जायेगा। भक्ति की जड़ को ढ़ीला न पड़ने देने पर ध्यान रखो क्योंकि जो रक्षा करने योग्य वस्तु है सो यही है, जैसे बने वैसे प्रभु पर के विश्वास को दृढ़ करो! यह दृढ़ता शास्त्रों को जानने और अच्छे काम करने से ही होती है, इसलिये भक्ति की जड़ दृढ़ करने के लिये ज्ञान और कर्म बढ़ाओ![1]

पद

प्रभुजी! मोहिं आसरे तेरो ।। टेक ।। कोऊ आश धरै काहूकी, तुम बिन और न मेरो । नहिं कछु कर्म, नहिं कछु विद्या नहिं परपंच घनेरो ।। प्रभु० ।।१।। ठाकुर हाथ लाज चेरेकी, तुम ठाकुर मैं चेरो । सूरदास ज्यों घरको चेरो, मैं चेरो घरकेरो ।। प्रभुजी० ।।२।।

कवित्त

काहूके अधार सेवा बणिज व्यापारहूको,
काहूके अधार थित वित खेत गामको ।

---

१ मेस्मेरिज्म के प्रयोग समय विषय दृष्टि में ऐसे विधेय से भक्ति संबंधी प्रश्न करने पर उसने यह उदाहरण दिया था और भी उसके कितने ही उदाहरण इस पुस्तक में दिये हैं।

काहूके अधार तनसार भ्रात बन्धुनको,
काहूके अधार प्रिय सार निज नामको ।।
काहूके अधार विद्या बुद्धि और बलको है,
काहूके अधार हाथी घोड़ा धन धामको ।
मैं तो निराधार मेरी हरिही करोगे सार,
मेरे तो अधार एक केवल हरिनामको ।।१।।

*****

१६१ बच्चे की मांगी हुई सब ही वस्तु पिता नहीं दे देता है, परन्तु जो उचित होता है सो देता है, वैसे ही ईश्वर भी हमको उचित होता है सो ही देता है!

हम देखते हैं कि, पुत्र पिता से अनेक वस्तुएं मांगता रहता है परन्तु पिता वे सबही वस्तुएँ उसे नहीं ला देता। वह तो वे ही वस्तुएँ देता है जो वे पाने के योग्य है, और जो उनके लिये उपयोगी हैं। वैसे ही हम भी अपने समर्थ पिता परमेश्वर से अनेक वस्तुएँ मांगते हैं। परन्तु उनमें से जो जो योग्य होती हैं वे ही वह हमको देता है। उसके आगे हम तो एक छोटे बालक की तरह है और इसी से हम एक बीछू तक को पकड़ना चाहते हैं, सांप तक पर भी हाथ मारना चाहते हैं, और चांद को भी जेब में रख लेने की इच्छा करते हैं परन्तु वह पिता हमको करने कैसे दे? सर्वशक्तिमान् प्रभु हमारे पिता से भी हमारा अनन्तगुण कल्याण चाहता है, इससे हमको अच्छी लगने वाली परन्तु उसको अच्छी न लगने वाली वस्तु वह हमको क्योंकर दे सकता है? इसलिये जब जब हमारी इच्छा के अनुसार हमको मिलने में देर हो तब यही समझो कि या तो हमारे हृदय में इतनी पवित्रता और इतना भगवदावेश नहीं आया है कि, जिससे हमारी प्रार्थना परमेश्वर तक पहुँच सके अथवा हमारी मांग अयोग्य है। ऐसा समझकर जब हमारी मांग खाली जाय तब ही अधिक २ भक्ति करना चाहिये परन्तु निराश होकर भक्ति की डोरी को ढ़ीली नहीं कर देना अर्थात् भक्ति को छोड़ नहीं देना चाहिये।

*****

१६२ प्रभु को अपनी इच्छाएँ न सोंप दें तब तक कुछ भी दिया नहीं कहला सकता

हम ईश्वर के लिये चाहे जितनी बातें करें चाहे जितना खर्च करे, चाहे

जितने तीर्थ करे, चाहे जितने व्रत करें, और चाहे जितनी दौड़धूप करें परंतु जब तक उसको अपनी इच्छाएँ न दे दें तब तक प्रभु प्रसन्न नहीं होता और न हमारा उसको कुछ दिया कहला सकता, क्योंकि इच्छाएँ दे देने में ही सब वस्तुओं का समावेश हो जाता है। इससे अपनी सब इच्छाएँ ईश्वर को दे दीं और ईश्वर की इच्छा के अधीन होने का बल प्राप्त कर लिया उसी ने धर्म का सार समझ लिया और उसी ने संसार को जीत लिया। जिसने ईश्वर को अपनी इच्छाएँ दे दीं उसने सर्वस्व दे दिया और जिसने अपनी इच्छाएँ को अपने अहंभाव में रखकर फिर कुछ दिया उसने कुछ भी नहीं दिया। परमेश्वर हमसे धन दौलत नहीं मांगता, ईश्वर हमारे स्त्री पुत्रों को नहीं मांगता, ईश्वर हमारी काया को कष्ट देने की आज्ञा नहीं देता और ईश्वर हमसे घरबार छोड़कर राख लपेटने को नहीं कहता वह तो केवल हमारी इच्छाएँ अर्पण करने को कहता है।

सब शास्त्रों का यही सार है और सब महात्माओं का यही उपदेश है कि तुम्हारी इच्छाएँ परमेश्वर के अर्पण कर दो तो तुम्हारा सर्वस्व अर्पण हो चुका। ईश्वर को अपनी इच्छाएँ दे देने का अर्थ इतना ही है कि जैसे परमेश्वर रखे वैसे रहना, उसमें हर्ष शोक करना नहीं और किसी भी स्थिति में उसको भूलना नहीं। इसी का नाम सच्ची भक्ति है। इसलिये भाइयो! अपनी इच्छाएँ ईश्वर के अर्पण करके उसी इच्छा के अधीन होने का यत्न करो! यही भक्ति का तत्व है, और यही भक्त की खूबी है कि, अपना अपनापन भूल जाना और प्रभुमय हो जाना।

*****

१६३ जो रोगी दवा खावे परंतु पथ्य न करे उसका रोग नहीं मिटता वैसे ही जो धर्म को जाने परंतु पाले नहीं उसका उद्धार नहीं होता

जो रोगी दवा खावे परंतु पथ्य न करे उसका रोग नहीं मिटता किंतु कभी २ अधिक ही हो जाता है। वैसे ही जो मनुष्य धर्म को तो जाने परंतु उसको पाले नहीं वह दवा खाने परंतु पथ्य न करने वाले रोगी के समान है। वे तो उलटे अधिक दोष के पात्र हैं, क्योंकि वे जानते हुए भी भूल करते हैं अर्थात् हाथ में मशाल लेकर कुए में गिरते हैं। अज्ञानियों पर कदाचित् दया भी हो जायेगी परंतु धर्म को जानकर भी जो पालते नहीं उसको कैसे क्षमा किया जायेगा? वे धर्मराज के पास न्याय के समय अपना बचाव कैसे

कर सकेंगे?

रोगी को रोगमुक्त होने के लिये केवल दवा ही नहीं खानी पड़ती परंतु साथ में पथ्य से भी चलना पड़ता है, जो पथ्य से न रहे तो दवा कुछ भी गुण नहीं करती वैसे ही केवल धर्म जानने से अर्थात् धर्म की बातें करने तथा धर्म की पुस्तकें पढ़ लेने से ही काम नहीं चलता परंतु धर्म के नियमों को अच्छी तरह से श्रद्धापूर्वक पालने से काम चलता है। धर्म केवल मुँह से कह डालने का नहीं होता किंतु हृदय में धारण करने और जीवनभर में अनुभव करने का है। जो लोग धर्म को केवल ऊपरी बातों ही में खो देते हैं और हृदय में खाली रह जाते हैं वे दया के पात्र हैं। समय पड़ने पर उनका मन उनको काटे विना नहीं रहेगा। भाइयो! देने लेने में हाथ पीछे और बातें करने में जीभ आगे रखने से कुछ धर्म नहीं होता किंतु उसका पालन करने से धर्म होता है। इसलिये धर्म के नियम सीखो! धर्म के नियम पालना सीखो!! अपने आचरण सुधारना सीखो!!!

*****

१६४ प्रजा को अपने राजा के नियम जानने चाहिये वैसे ही मनुष्यों को ईश्वर के नियम अर्थात् धर्म के नियम समझना चाहिये

राजा की ऐसी आज्ञा होती है कि, मेरे राज्य में रहनेवाले सब लोगों को मेरा कानून जानना और पालना चाहिये। यदि कोई मनुष्य कायदा न जानता हो और कोई अपरांध कर डाले तो पोलिस उसको पकड़कर ले जाती है, वैसे समय में जो वह मनुष्य यह कहे कि, मैं आपका कानून नहीं जानता था, इसी से मुझसे यह अपराध बन गया तो पोलिस उसको सजा किये बिना नहीं छोड़ते, उलटा ऊपर से यह कहती है कि तुमने राजा का कानून नहीं जाना तो यह भी तुम्हारी भूल है, क्योंकि जिसके राज्य में रहना उस राज्य का कानून जानना तो वहां की प्रजा का कर्तव्य है। वैसे ही ईश्वर के नियम जानना और उनको पालना ईश्वर के अखंड धर्मराज्य में रहनेवाले मनुष्यमात्र का कर्तव्य है। कानून न जानने से यह अपराध बन गया, ऐसा कहने से बचाव नहीं हो सकता। ऐसा कहना तो कहनेवाली की भूल हैं, क्योंकि जो जानना चाहिये सो न जानने में उसकी ही भूल है इसलिये भाइयो! ईश्वर के नियमों को जानो और उनको पालो, यही बचाव का उपाय है, हम नियम नहीं जानते थे इससे नहीं पाल सके

ऐसा कह देने से सजा पाने से बचाव नहीं हो सकता। इससे बने जैसे ईश्वर के नियम पालना सीखो!

*****

१६५ औरों को लाभ पहुँचाने के लिये साधुओं को भजन छोड़ना पड़े तो वह भी एक तप है

एक विद्वान् ब्राह्मण को नित्य वेद का पाठ करने की बड़ी रुचि थी। वह नित्य इच्छानुसार शास्त्रों का पठन पाठन किया करता था। इसके पीछे उसकी एक सेठ से पहचान हो गयी। सेठ उसको अपने पास रखना चाहता था परंतु वह ब्राह्मण इससे राजी न था क्योंकि वहां पर उसका ठीक ठीक पठन पाठन नहीं चलता था। इसके सिवाय धनवाओं का आडंबरयुक्त आचार विचार उसको पसंद नहीं आता और पैसेवालों की पैसे की गरमी अभिमान उस निखालिस गरीब परंतु विद्वान् ब्राह्मण को सहन नहीं होता था। इन सब बातों से वह मन ही मन में अकुलाया करता था। परन्तु अपनी भलमनसी के विचार से और कुछ कुछ लोभवश होकर भी उस सेठ की इच्छा के विरुद्ध नहीं होता था।

सेठ का घर देखने में सोने का ही घर था परन्तु उस ब्राह्मण के लिये तो वह प्रत्यक्ष पिंजरा और कैदखाना जान पड़ता था। पिंजरा कैसा ही अच्छा हो परन्तु उसमें बंद तोते की स्वतंत्रता का मनमाना आनंद कभी नहीं मिल सकता। पिंजरें में तोते को कैसा ही अच्छा अच्छा फल फूल आदि खाना मिलता हो और जंगल में चाहे कच्चा कड़वा अथवा सूखा खाना मिलता हो। पिंजरा चाहे सोने का हो और जंगल में उसको खुरदरे ऊंचे नीचे तथा टेढ़े सीधे वृक्ष पर बैठना पड़ता हो, पिंजर में ऋतु के अनुसार सुख से रहने को मिलता हो और जंगल में ठंड से सिकुड़ना, गरमी से तपना और बरसात में भीगना पड़ता हो तब भी तोते को तो खुला रहना ही पसंद आता है, इसी तरह उस गरीब ब्राह्मण को सेठ के यहां अमरस पूड़ी मिलती, बरफी पेड़ा मिलता। अच्छे अच्छे अचार और साग तरकारी मिलती, सोने के लिये हवादार मकान मिलता, बैठने फिरने को घोड़ा गाड़ी मिलती और बातें करने के लिये बड़े बड़े आदमी मिलते परन्तु तब भी ये सब तों उसको सोने के पिंजरे समान ही जान पड़ती थीं। कारण वहां उसको इच्छा के अनुसार पठन पाठन करने को नहीं मिलता था। सत्संग नहीं मिलता था और न भजन स्मरण ही करने

को मिलता था, वहां तो नई नई फाँसी की बातें नई नई मौज शौक की बातें काफी और आइसक्रीम (मलाई का बरफ) की बहार, हवा खाने जाने की तैयारियां, गाड़ी घोड़ों की बातें, पोशाकों की धूमधाम और मेहमानदारियों की बातें चला करती थीं। सिठानियों के रूठने मनाने चला करते थे और लड़कों की धाकाधाकी चला करती थी। इन बातों में उस एकांतवासी ब्राह्मण का मन कैसे लग सकता था? इससे वह बिचारा ब्राह्मण मन ही मन में अकुलाया करता था और वहां से छूटने का यत्न विचार करता था।

अकस्मात् उसको! गुरु मिल गये। गुरु से हाथ जोड़कर उसने कहा "महाराज! मैं तो एक सेठ के लफरे में फँस गया। मेरा सारा पठन पाठन छूट गया। अब जो सेठ को छोड़ भागता हूं तब तो उपाधि में फँसता हूं और नहीं छोड़ता हूं तो मेरा पठनपाठन सब मारा जाता है?

गुरु ने कहा "बेटा! तू पढ़ा तो है परन्तु गुना नहीं है!"

शिष्य ने पूछा "महाराज! यह कैसे?

गुरु ने उत्तर दिया "अभी तु कच्चा है इससे इसका भेद नहीं समझता! उस सेठ के पास रहना भी तेरा एक प्रकार का तप ही है?"

शिष्य ने विस्मययुक्त होकर पूछा "महाराज! इसमें तप कैसा? पठन पाठन छूट गया क्या यही तप है?

गुरु ने उत्तर दिया "इस गृहस्थ के लिये तू अपनी इच्छाओं का भोग देता है यही तेरा तप है और अपनी विद्या का उस सेठ के कुटुंब को लाभ पहुंचाता है यह तेरा धर्म है। उस सेठ ने पूर्व जन्म में अच्छे कर्म किये हैं, उन अच्छे कर्मों का फल ईश्वर उसको तेरे द्वारा पहुंचाता है। इससे कायर मत हो! तेरे भजन के भोग अर्थात् त्याग द्वारा उस कुटुंब को सत्संग और ज्ञान का लाभ पहुंचाता है सो ही तेरा तप है!"

*****

१६६ घर में तो घोर अन्धकार हो और बाहर बड़े बड़े दीपक हों तो किस काम के? इसी तरह हमारी बाहरी धूमधाम तो बहुत बड़ी है परन्तु अतःकरण भीगा हुआ नहीं है सो किस काम का ?

बहुत से नगरों में हम देखते हैं कि सड़कों पर बड़े बड़े लालटेन लगे रहते हैं और बहुत से घरों में बाहर बहुत तेज रोशनी होती है परन्तु उन

ही सड़कों के पास की गलियों में और उन घरों के भीतर हिस्से में घोर अँधेरा रहता है। बाहर दिखाने के लिये तो बड़े बड़े दीपक होते हैं परन्तु भीतर एक जरा सा भी नहीं होता। गलियों में और घरों में चाहे इस तरह काम भी चल जाय परंतु हमारे हृदय में तो इस तरह काम चलना उचित नहीं है! हम ऊपर तो धर्म का बड़ा आडम्बर रखें और बड़ी बड़ी धूमधाम मचावें परन्तु भीतर तक उसे पहुँचावे तो वह किसी काम का नहीं। गरीबी के कारण घरों में तो घोर अन्धकार और सड़कों पर बिजली की रोशनी! शहर सफाई के सम्बन्ध में चाहे ऐसा अंधेर चल जाय परन्तु आत्मा की उन्नति के विषय में प्रभु के विषय में ऐसा नहीं चल सकता "ऊपर से तो रंगा चंगा, भीतर की भगवान् जाने" वाली बात करने से ईश्वर ठगने में थोड़ा ही आ सकता है? बाहर से दीपक जलाना और भीतर घोर अँधेरा रखता तो धोखाबाजी कहलाती है। यह तो "खीला खाली और भपका भारी" की बात हुई। हृदय में अँधेरा रखें और ऊपर से दीपक जलावें अर्थात् ऊपरी ढोंग दिखावें तो ईश्वर प्रसन्न थोड़ा ही हो सकता है? ऐसे ढोंग और दंभ से तो उलटी हानि ही होती है। ईश्वर ऐसे दांभिक भाव से हमको बचा और हमारे हृदयको भक्ति में भिगो! बाहर से तो नदी बहावें परंतु भीतर से सूखा न रह जाय! इसकी पूरी संभाल रखो! जो भिगोने लायक वस्तु है वह तो भीतर ही है। अंतःकरण में ज्योति जगाये बिना बाहरी प्रकाश से काम चलनेवाला नहीं है इसलिये भाइयो! प्रभु के निर्मल प्रेम से अंतःकरण को भिगोने का यत्न करो! यत्न करो! ! यत्न करो! ! !

*****

१६७ धर्म के काम में स्त्री पुत्रों और लोकलाज से डरने के बदले प्रभु से डरना सीखो !

हमारी मूर्खता तो देखो! हमारी नालायकी तो देखो! कि हम जितने अपनी स्त्री से डरते हैं उतने प्रभु से नहीं डरते, हम जितनी सास श्वसुर की लज्जा मानते हैं उतनी भी प्रभु की नहीं मानते! हम जितना सत्कार अपने समधियों को करते हैं, उतना भी सत्कार परमेश्वर का नहीं करते! हम अपने मालिक से जितने डरते हैं उतने परमेश्वर से नहीं डरते! हम मक्खी मच्छर और पिस्सू खटमल का जितना फिकर करते हैं उतना भी फिकर पाप कर्म न करने का नहीं करते! क्या यह हमारी मूर्खता नहीं है?

जिसकी कृपा से हमारा जीवन और हमारा सर्वस्व बना हुआ है उस सर्वशक्तिमान् परमेश्वर का हम कुछ भी डर नहीं रखते, उलटें और अपनी इच्छा के अनुसार स्वतंत्ररूप से चलते हैं सो कब तक चल सकेगा? आगे या पीछे मृत्यु तो अवश्य आवेगी और न्याय भी हमारा होगा ही, क्योंकि कर्म के फल छूट नहीं सकते तब उस समय धर्मराज को क्या उत्तर देंगे? भाइयो! पहले से ही सचेत होकर प्रभु से डरकर चलो तो फिर किसी से भी न डरना पड़े! परमेश्वर दया में दया का स्वरूप है वैसे ही भय में भय का भी स्वरूप है उसके भय में चलने से अर्थात् उसके डरकर चलने से हम अभय हो सकते हैं। इसलिये भाइयो! स्त्री से डरने के बदले और लोकलज्जा से डरने के बदले परमेश्वर से डरना सीखो जिससे अभय हो जाओ!

*****

१६८ ज्ञान और भक्ति में भेद क्या? ज्ञान तो है बीज और भक्ति है पेड़ !

लोग जानते हैं इतना ज्ञान और भक्ति में भेद नहीं है। अंत में दोनों का अभेद ही है। कारण महात्मा कहते हैं कि ज्ञान है सो भक्ति का छोटा रूप है और भक्ति है सो ज्ञान का बड़ा रूप है। ज्ञान भक्ति का छोटा रूप है अर्थात् उसका बीज है, कारण ज्ञान का अर्थ है जानना, पहले ईश्वर का स्वरूप और अपना कर्तव्य जान लेने और समझ लेने से सच्ची भक्ति हो सकती है। ज्ञान है सो भक्ति का छोटा रूप अर्थात् बीज है और भक्ति है सो ज्ञान का स्थूल रूप है अर्थात् बाहर से दीख सकने योग्य ज्ञान का बड़ा रूप है सो ही भक्ति है। सारांश यह कि, ज्ञान है सो बीज है और भक्ति है सो वृक्ष है। तब ऐसा ही है तब बीज बिना पेड़ नहीं हो सकता और पेड़ बिना बीज नहीं हो सकता अर्थात् ज्ञान और भक्ति एक दूसरे से जुदा होने लायक नहीं है क्योंकि ज्ञान के विस्तार का नाम भक्ति है और भक्ति के बीज का नाम ज्ञान है। यद्यपि ज्ञान और भक्ति दोनों साथ ही साथ रहते हैं तब भी ज्ञान बीज है और भक्ति वृक्ष है। अर्थात् बीज से वृक्ष की कीमत अधिक और महत्त्व भी अधिक होता है इसमें संदेह नहीं परंतु बीज की कीमत भी कुछ समझने की नहीं है क्योंकि बीज न हो तो वृक्ष हो ही नहीं सकता। तब भी बीज है सो पूर्वरूप अर्थात् बालक है और भक्ति है सो उत्तमरूप अर्थात् युवा है। बालक और युवा में जितना भेद है उतना ही

ज्ञान और भक्ति में भेद है। तब भी इतना याद रखो कि, यह भेद है एक ही वस्तु में, दो न्यारी न्यारी वस्तुओं में नहीं, क्योंकि जो बालक है वही युवा होता है। तात्पर्य यह कि, जब तक वह बीजरूप है तब तक उसका नाम ज्ञान है और अनुभवरूप हो जाने से उसका नाम भक्ति हो जाता है।

इस तरह ज्ञान और भक्ति को अलग अलग जानने की भूल नहीं करना चाहिये। जब हम ज्ञान और भक्ति के भेद को अच्छी तरह समझ लेंगे तब ही ज्ञान के अधिक अधिक बीज चुन सकेंगे और उनमें से भक्ति के अच्छे अच्छे वृक्ष उत्पन्न कर सकेंगे। सब ही जानते हैं कि भक्ति के वृक्ष में से स्वर्ग और मोक्ष दोनों के फल मिल सकते हैं। इसलिये भाइयो! ज्ञान के बीज इकट्ठे करने और उनसे भक्ति के वृक्ष उगाने का यत्न करो!

कवित्त–चाहे तू योग कर भ्रुकुटी बीच ध्यान धर,
चाहे नाम रूप मिथ्या जानके निहार ले ।
निर्गुण निर्भय निराकार ज्योति व्याप रह्यो,
ऐसो तत्त्व ज्ञान निज मन में तू धार ले ।।
नारायण अपने को आप ही बखान कर,
मोते वह भिन्न नहीं या विधि पुकार ले ।
जौलों तोहि नंदको कुमार नाहिं दृष्टि परे,
तौलों तू भले ही बैठ ब्रह्म को विचार ले ।।

*****

१६९ सच्चे रुपयों के साथ कोई कोई खोटा रुपया भी चल जाता है, वैसे ही सच्चे भक्तों की साथ ढोंगी भी चल निकलते हैं इसलिये नहीं समझ लेना कि, संसार में सच्चे भक्त हैं ही नहीं।

आजकल संसार में ढोंगी बहुत बढ़ निकले हैं सो सच हैं परन्तु इस पर से यह नहीं समझ लेना चाहिये कि संसार में सच्चे भक्त हैं ही नहीं, क्योंकि जो सच्चा भक्त नहीं तो ढोंगियों की दाल ही नहीं गल सकती। संसार में जब सच्चे रुपये हैं तब ही तो उनके साथ में कभी झूंठा, रुपया भी चल जाता है परंतु जो सच्चे रुपये बिलकुल ही न हो तो झूठे रुपये चल ही कैसे सकते हैं! वैसे ही सच्चे भकतों के साथ में ढोंगी भी चल जाते हैं। इसलिये जो कदाचित् हम कभी झूंठे ढोंगी के ठगने में आ जायँ तो हमको

निराश होकर सारे ही भक्तों पर अश्रद्धा न करना और सब ही भक्तों को झूंठे मान लेने को महापाप नहीं करना चाहिये। यह तो अवश्य है कि सच्चे भक्तों के साथ झूंठे भी लगे ही हुए हैं परन्तु उनके लिये सच्चे थोड़े ही छोड़ दिये जाते हैं। मान लो कि हमको निन्नानवें भक्त झूंठे ही झूंठे मिले परन्तु जो एक सौवां ही सच्चा मिल गया तो वह निन्नानवें भक्त झूंठों से होनेवाली हानि को भी पूरा कर सकता है। इसलिये सच्चे भक्तों पर कभी अश्रद्धा न करो! ईश्वर को जितना अपना भक्त प्यारा है उतना और कोई भी पदार्थ प्यारा नहीं है। भक्तों का सन्मान करना प्रभु का सन्मान करने के समान है। शास्त्रों का यह सिद्धांत समझ लेने से भक्त का महत्व समझ में आ जाता है और तब ही भक्त के साथ प्रेम और मान का वर्ताव किय जा सकता है। भक्तों पर ऐसी मीठी नजर रखने से किसी समय बिना विचार अमूल्य लाभ मिल जाता है। जो कभी कोई ठग भक्त मिल जाय तो निराश होकर सारे ही भक्तों पर से श्रद्धा नहीं हटा लेना चाहिये और यह नहीं समझ लेना चाहिये कि सच्चे भक्त कोई हैं ही नहीं, कारण संसार में सच्चे रुपये हैं तब ही उनके साथ कोई खोटा रुपया भी आ जाता है परंतु एक रुपया खोटा निकल आने से सारे ही रुपये खोटे नहीं समझ लिये जाते। इसी तरह किसी एक आधे ढोंगी भक्त को देख लेने से सब ही को वैसे मान लेना भी भूल है, केवल भूल ही नहीं पाप भी है, ऐसे पाप से बचते रहो।

*****

१७० प्रभु की कृपा हमको क्यों नहीं मिलती? दुर्गंधिवाले पाखाने में हम जितना समय लगाते हैं उतना भी तो ईश्वर के शांतिमय मंदिर में नहीं लगाते?

हम चाहे तब शिकायत किया करते हैं कि भगवान् हम पर कृपा नहीं करता। ईश्वर को दोष तो हब बारबार दिया करते हैं परंतु अपनी भूलों को भी हम कभी देखते हैं? कभी नहीं! हमने ईश्वर के लिये ऐसा कौनसा काम किया है कि जिसके लिये वह हम पर विशेष कृपा रखें? हमारे बहुत से भाई बीड़ी पीने में जितना समय लगाते हैं उतना समय भी कभी प्रभु को याद करने में नहीं लगाते हैं। दँतुअन करने में जितना समय गँवाते हैं उतने समय तक भी हम ईश्वर प्रार्थना कहाँ करते हैं? नहानें धोने में जितना समय हम खर्च करते हैं उतना ही ईश्वर के नाम पर अच्छे कर्म

करने में नहीं खर्च करते! कपड़े पहनने में, बालों में तेल कंघा करने में और सेंट पोमेटम लगाने में जितना समय खोते हैं, उतना हम ईश्वर भजन में नहीं खोते, खाने पीने में जितना समय लगता है उतना समय भी ईश्वर के नाम पर अपने भाई बंधुओं को दुःख दूर करने के काम में नहीं लगता। अखबार बढ़ने में हम जितना समय लगाते हैं उतना समय भी प्रभु की याद में नहीं लगाते! बच्चों को खिलाने में हमारा जितना समय लगता है उतना भी प्रभु को रिझाने में कहां लगता है? तेरी मेरी करने में हम जितना समय लगाते हैं उतना धर्मशास्त्र पढ़ने में कहां लगाते हैं? अपने मित्र और सगे संबधियों से मिलने में हुए जितना समय लगाते हैं, उतना समय ईश्वर से मिलने के विचार में कहां लगाते हैं और तो क्या परन्तु दुर्गंधयुक्त पाखाने में नाक बंद करके हम जितनी देर बैठे रहते हैं उतनी देर भी ईश्वर के शांतिदायक मंदिर में हमसे कहां बैठा जाता है?

भाइयो! विचार तो करो! ईश्वर की हम पर कैसे कृपा हो सकती है? स्त्रियों में बैठकर हँसी मजाक करनें की हमको जैसी प्रबल इच्छा होती है वैसी कभी धर्म का रहस्य समझने की भी होती है? पान खाने और बीड़ी पीने की जैसे रुचि होती है वैसी कभी प्रभु का स्मरण करने की भी रुचि होती है? मेले तमाशे में जाना का जैसा मन होता है वैसा प्रभु के मंदिर में जाने का भी कभी होता है? अपनी स्त्रियों की और सरकारी हाकिमों की हम जितनी बड़ाई करते हैं उतनी कभी परमेश्वर की भी बड़ाई करते हैं? पेट पालन करने निमित्त के काम धन्धा में और आवश्यकता के योग्य सोने में जितना समय लगता है उतना समय यदि ईश्वरभजन में यदि कोई गृहस्थ न लगा सके तो ईश्वर उसे क्षमा भी कर सकता है परन्तु ऊपर लिखी बातों में लगनेवाला थोड़ा समय भी ईश्वर निमित्त न लगाया जाय तो ईश्वर की हम पर कैसी कृपा हो सकती है? इसलिये भाइयो! ईश्वर की कृपा प्राप्त करनी हो तो प्रेम से दीनतापूर्वक ईश्वर का शरण गहो और जो समय निरर्थक बातों में खोते हो वह समय ईश्वर को पकड़ने में लगा दो! ऐसा करने से समय आने पर आपों आप ईश्वर की कृपा प्राप्त हो जायगी। इससे भाइयो! प्रभु में लगो! ! प्रभु में लगो! ! !

३२ पद

हरि तोपै प्रसन्न किसविधि होय। मन को रह्यो कपट न खोय ।।टेक।। हरि कीर्तन हरि कथा सुननकों, बहु आलस ह्वै आवे। कामिनीकीर्तन परनिंदा

माहिं उदय न अस्त दिखावे।।१।। प्रभु की पूजन करन माहिं तुव काया थरहर कंपै । दो कौड़ी के लोभ कारनै, निशदिन नैनन झंपै ।।२।। प्रभुसेवा को चंदन घसिबे, बहु श्रम शरीर आनै । भंगभोग लगि सांझ सबेरै, पहरलागि ताहि छानै ।।३।। व्रत एकादशी जाग्रणमाहीं, नींद घनेरी आवै । पातरनृत्य भँडौवा महफिल छन जिमि रजनी जावै ।।४।। अंतर के छल को तुव दफ्तर, बांच्यो अन्तरजामी । रह्यो न छानी कह, रामजीवन, रे कपटी खल कामी ।।५।।

*****

१७१ अमृत कहां है? सच्चा अमृत भक्ति में है

एक बार दुनियां को अच्छी तरह पहचाने हुए अनुभवी रसिक कवियों में विवाद चला कि अमृत कहाँ है? किसी कवि ने कहा कि 'अमृत शहद में है क्योंकि वह मीठा है।

दूसरे ने कहा "नहीं! अमृत तो नववधू के मुख में है क्योंकि शहद से भी वह अधिक मीठा होता है।'

तीसरे ने कहा "नहीं! अमृत तो चन्द्रमा में है क्योंकि उसमें शांति है।"

चौथे ने कहा "वाह! चंद्रमा तो कलंकयुक्त है! सच्चा अमृत समुद्र में है क्योंकि समुद्रमंथन करते समय देवताओं के समुद्र में से ही अमृत मिला था।"

पांचवें ने कहा "नहीं नहीं! समुद्र में अमृत नहीं हो सकता, क्योंकि वह तो खारा है! अमृत होता तो स्वर्ग में इंद्र के पास है।"

छठा बोला "नहीं भाई! इंद्र के पास अमृत कहां से आया? इंद्र ही के पास अमृत होता तो नये नये मंत्री इंद्र ही क्यों होते! अमृत तो लक्ष्मीजी के पास है जिनकी माया में संसार लिपटा हुआ है।"

सातवें कवि ने कहा "तुम क्या कहते हो? लक्ष्मीजी के पास अमृत नहीं हैं, जो अमृत लक्ष्मीजी के ही पास होता तो भक्तलोग लक्ष्मीजी का त्याग क्यों करते और शास्त्र माया का त्याग करने का उपदेश क्यों देते? अमृत तो भक्तजनों की वाणी में है कि जिससे वे खुद शांति पाते हैं और दूसरों को शांति देते हैं।

तब तो सब कवियों ने इस बात को स्वीकार किया और कहा "देवताओं का अमृत चाहे स्वर्ग ही में हो हमको उससे कुछ काम नहीं,

हमको तो भक्तजनों की वाणी का ही अमृत मिल जाना चाहिये। वह अमृत देवताओं के अमृत से भी बढ़कर है, क्योंकि देवताओं के पास अमृत होते हुए भी पुण्यक्षय होने पर उनको पीछे नीचे गिरना पड़ता है और भक्तजन तो ईश्वर के नामरूप अमृत से जन्ममरण के चक्कर में से छूटकर देवताओं के शिर पर पैर रखकर ईश्वर के दरबार में जा सकते हैं।''

इसलिये भाइयो! भक्तों की वाणी का अमृत पाने की प्रार्थना करो! वह अमृत भक्तों का सत्संग करने से मिल सकता है और सत्संग करने में गांठ का कुछ खर्च करना पड़ता नहीं। यह तो गरीब से गरीब मनुष्य से भी बन सकने योग्य काम है, इससे जो करना हो, अमर बनना और ईश्वर के पास पहुँचना हो तो भक्तों की वाणी का अमृत पिओ, ऐसा सस्ता, सुगम और उत्तम अमृत दुनियां में तथा स्वर्ग में दूसरा नहीं है। इसलिये भाइयो! सन्तजनों के मुख से प्रभु का नामरूप अमृत पिओ! अमृत पिओ! !

कवित्त–चढ़े गजराज चतुरंगिनी समाज सह,
जीत क्षितिपाल सुरपालसों सजत हैं ।
विद्या अपार पढ़ तीरथ अनेक कर,
यज्ञ और दान बहु भांति सो करत हैं ।।
तीनों काल में नहाय इंद्रियों का वश लाय,
करके संन्यास विषय वासना तजत हैं ।
योग और जप औ तप को अनेक करै,
बिना भगवंतभक्ति भव ना तरत हैं ।।

*****

१७२ सत्संग में जाने से अन्तःकरणके दोष मालूम होते हैं और पाप से बचाव हो सकता है

एक जिज्ञासु ने किसी भक्त से पूछा ''महाराज! मनुष्य को सत्संग की आवश्यकता क्यों है?''

भक्त ने उत्तर दिया ''मनुष्य को अपनी ही कीमत समझने के लिये अपनी शक्ति समझने के लिये और अपना असली स्वरूप समझने के लिये सत्संग की आवश्यकता है।''

जिज्ञासु ने पूछा ''महाराज! सत्संग से अपनी कीमत कैसे जानी जाती है?

भक्त ने कहा कि सुनः–

एक सेठानी थी। वह बड़ी अभिमानी थी। प्रत्येक काम में मेरी ही इच्छा के अनुसार हो इसका उसको बड़ा विचार रहता था। अच्छे बुरे का उसको कुछ भी विचार नहीं था, औरों की इच्छा जानना तो उसने सीखा ही नहीं था, वह बहुत भली थी, उदार थी, भक्तिमान् थी और ईश्वरीय मार्ग में आगे बढ़ना चाहती थी, परन्तु अहंकार के मारे अपने को दुनियाँ भर से अधिक बुद्धिमान् समझने में वह अपनी होशियारी में अधूरी ही रह गयी। इसके बाद किसी साधु का उसे उपदेश लगा जिससे वह सत्संग में जाने लगी, वहां अंतःकरणके दोषों की चर्चा चली, जिसे सुनकर उसको मालूम हो गया कि, मैं बात बात में अभिमान करती हूं और जरासी जरासी बात में कड़क हो जाती हूं सो अनुचित है। इसके बाद उस साधु ने जब उसने फिर दूसरे दिन आने को कहा तब वह स्त्री बोली "महाराज! मैं तो आपके यहां आने से पहले अच्छी थी सो औरः उलटी बुरी हो गयी।"

साधु ने पूछा "यह कैसे?"

स्त्री ने उत्तर दिया "जब तक मैं सत्संग में नहीं जाती थी तब तक तो मैं यही समझती थी कि, मेरा जैसा कोई है ही नहीं, मैं ही बुद्धिमती, मैं ही पवित्र मैं ही धर्मवती और मैं ही सबसे अच्छी हूं, परंतु अब आपके सत्संग में आने से तो सब बात ही बदल गयी। अब तो मुझको ऐसा लगता है कि, मैं ही सबसे खराब हूं। क्योंकि मुझमें अभिमान है। जब तक मैं सत्संग में नहीं मिली थी तब तक मैं अपने मन को अच्छी लगती थी, परंतु जब सत्संग में मिली और अंतःकरणके दोषों को समझने लगी तब से तो अब मैं अपने ही मन को बुरी जानने लग गयी। इसी से ऐसा हुआ कि, सत्संग में आने से मैं बुरी हो गयी।"

महाराज ने कहा "बाई! ऐसी खराबी तो सबकी हो! मनुष्य अपने अंतःकरणके दोषों को समझने लगे, और इसके लिये वह अपने तईं पहले से बुरा भी समझे तो क्या बुराई हुई? ऐसी बुराई तो ईश्वर करे सबकी हो! इस तरह हृदय के दोषों को समझने से विकार छूट सकते हैं और दीनता आती जाती है। जितनी दीनता आती है उतनी ही प्रभु में लीनता होती जाती है, और प्रभु में लीनता होने से अपना तथा प्रभु का स्वरूप पहँचानने में आ सकता है। परंतु ये सब बातें होती है सत्संग में जाने ही

से! इसलिये जैसे बने वैसे सत्संग में लगी रहो!"

*****

१७३ हमको अपनी कीमत समझने के लिये सत्संग में जाने की आवश्यकता है

इसके बाद दूसरे दिन भी वह सेठानी सत्संग में गयी। महाराज ने पूछा "क्यों बाई! आज क्या अनुभव हुआ?"

सेठानी ने कहा 'आज भी एक नया पाठ मिला। पहले मैं धर्म के कामों में ऐसा समझा करती थी कि, यह अपने करने का काम नहीं है, यह तो साधु संन्यासियों का काम है, यह तो पागलों का काम है, यह तो फक्कड़ों का नंग भंगे का काम है, यह तो जिस पर प्रभु की पूर्ण कृपा हो उसका काम है। मुझसे ऐसे काम बन नहीं सकते। जिन धर्म के कामों को पहले मैं ऐसा समझती थी, सत्संग में पड़ने से उनही को अब मैं समझने लगी हूं कि ये तो मैं सुगमता से कर सकती हूं। सत्संग करने से मुझमें इतना बल आ गया है और अपने ही दोषों को मैं ऐसी अच्छी तरह समझ गयी हूं कि शायद हजारों पुस्तकें पढ़ने से कई वर्ष में भी जितना समझ में नहीं आता। अब मुझको मालूम होने लगा है कि पहले मैं अपने को बहुत अच्छी समझती थी सो केवल ऊपर ही का वारनिश था, भीतर तो 'ढ़ोल के अंदर पोल ' ही था, परंतु उस समय मैं यह बात नहीं जानती थी कि, लोग सत्संग में क्यों नहीं जाते इसका कारण अब मेरी समझ में अपने ही उदारहरण से आने लगा है कि, सत्संग में हमारे अंतःकरणके दोष हमारी आँखों के आगे आ जाते हैं। वे हमसे सहन नहीं होते उन दोषों को ढ़ांकने की हमारी आदत पड़ी हुई है और व्यवहार में उन दोषों पर ऊपर ऊपर से वारनिश लगाने की चाल पड़ रही है परंतु अंतःकरण के पापों को जड़ से उखाड़ डालने की इस वारनिश में शक्ति नहीं है अर्थात् संसार में अच्छा लगने के लिये ऊपरी ढ़ोंग धतूरे करने से अंतःकरण के पाप नहीं मिटते, परंतु सत्संग इन दोषों को जड़ से उखाड़ फेंकता है। इस तरह पर हमारे प्यारे अंतःकरण के पापों को सत्संग जड़ से उखाड़ देता है और फिर नहीं होने देता सो बात हमसे सहन नहीं हो सकती। इसी से हमको सत्संग में जाने की इच्छा नहीं होती।"

इससे सिद्ध होता है कि, जो सत्संग में न जायँ अथवा गये पीछे भी जो वहां न ठहर सकें और जिसके सत्संग में रुचि न हो उसके लिये निश्चय

समझना चाहिये कि अभी उनके अंत:करण के पाप नहीं गये, वे अभी अपनी कीमत नहीं समझे और वह कीमत सत्संग विना समझी भी नहीं जाती इसलिये जैसे बने वैसे सत्संग बढ़ाने का यत्न करो!

*****

१७४ कमर बांधने का पट्टा पेट पर बांधने से कुछ भूख मर सकती है परंतु उससे पूरी शांति नहीं होती, वैसे ही भक्ति विना के रूखे ज्ञान से भी पूरी शांति नहीं होती

भाइयो! याद रखो कि सच्ची भक्ति विना का रूखा ज्ञान शांति नहीं दे सकता! भक्ति विना के ज्ञान के विषय में एक पंड़ित ने कहा है कि, बिलायत में भूख बंद करने के लिये कमर पर बांधने का एक पट्टा आता है। उस पट्टे को कमर पर कसके बांधने से भूख कुछ कम हो जाती है, और ज्यों ज्यों नित्य प्रति उसे कुछ २ कसा जाता है त्यों त्यों शनैः २ भूख मरती जाती है और अंत में आहार बहुत कम हो जाता है। यद्यपि इससे भूख कम हो जाती है और थोड़ा खाने से भूख मिट जाती है। परंतु इससे वैसी शांति नहीं होती जैसी मनभर के खाने से होती है। पट्टा बांधकर भूख मारना और बात है, पेटभर खाना खाकर भूख शांत करना और बात है। भूख दोनों ही तरह शांत होती है परंतु उस शांति में बहुत अंतर है। इसी तरह भक्ति विना का ज्ञान भी रूखा ही होता है। भक्ति विना का ज्ञान पट्टा बाँधकर भूख शांत करने के समान है और भक्ति सहित ज्ञान मिष्टान्न भोजन से भूख शांत करने के समान है। इसलिये रूखे ज्ञान में भटकना छोड़कर भक्ति सहित ज्ञान प्राप्त करो! भक्ति से ज्ञान का महत्व बहुत बढ़ जाता है, क्योंकि भक्ति और ज्ञान का संयोग कुंदन में हीरा जड़ने के बराबर है, भगवान् ने भी गीता में कहा है:–

"तेषां ज्ञानी नित्ययुक्त एकभक्तिर्विशिष्यते ।
प्रियो हि ज्ञानिनोऽत्यर्थमहं स च मम प्रियः ।।"

अ० ७ श्लो० २७

अर्थ–उनमें (भक्तों में) सदा समान चित्तवाला तथा एकभक्ति वाला ज्ञानी श्रेष्ठ है, क्योंकि मैं ज्ञानी भक्त को अधिक प्रिय हूं और ज्ञानी भक्त मुझे बहुत प्रिय है।

*****

१७५ कुएमें हो उतना घड़े में आता है, वैसे ही गुरु में हो उतना शिष्य में आ सकता है इसलिये उत्तम में उत्तम गुरु को पसंद करो

कहावत है कि, कुए में हो उतना घड़े में आवे। जो हमारे पास न हो, जो हममें न हो वह दूसरे को कहाँ से दिया जाय? इसलिये गुरु लोगों को प्रेम भक्ति से अपने हृदय को और ज्ञान से अपने मस्तिष्क को तर करना चाहिये। जो गुरुओं में ही अच्छे गुण न हों तो वे शिष्यों को क्या सिखला सकते हैं? प्रायः गुरु के अच्छे बुरे आचरण पर ही शिष्य के आचरण का आधार रहता है। इसलिये जैसे बने वैसे गुरु लोगों को अपना आचरण सुधारना चाहिये, गुरु तँबाकू पीने वाला हो तो उसका शिष्य गांजा फूँकने वाला अवश्य होता है। गुरु परम त्यागी होता है उसका शिष्य भी परमार्थी होता है। जैसे पिता के गुण दोष स्वभाव से ही थोड़े बहुत पुत्र में आ जाते हैं वैसे ही गुरु का चाल चलन भी शिष्य के आचरण पर अवश्य असर करता है, इसीलिये मनुष्यों को अच्छे गुरु ढूँढ़नेकी आवश्यकता है। क्योंकि गुरु बनना कुछ हँसी खेल नहीं है। चौरासी लाख के चक्कर में से बचाकर स्वयं भगवान् के पास ले जाने की शक्ति रखने वाले गुरु कैसे उत्तम होने चाहिये और उनका कितना बड़ा महत्व समझना चाहिये सो विचार तो करो! इतना बड़ा पद, इतनी बड़ी जोखम का काम बिना शक्ति जो अपने ऊपर लें उनको कितने बड़े पापी और कितने बड़े मूर्ख समझना चाहिय? इतने बड़े पाप में पड़ने से बचने के लिये गुरु लोगों को अच्छे से अच्छे आचरण रखने चाहिये और शिष्यों को ज्ञानियों में ज्ञानी और भक्तिमानों में भक्तिमान् गुरु ढूँढ़ने चाहिये।

जो ऐसा न हो तो—

लोभी गुरु और लालची चेला। दोनों नरक में ठेलम ठेला ।।" वाली बात हो जाय। इसलिये सावधान रहो!

*****

१७६ थोड़ा सा रोग मिटाने के लिये रोगी वैद्य को बहुत सा दे डालता है तब प्रभु ने तो हमको सब कुछ दिया है उसके लिये हमको क्या करना चाहिये?

एक आदमी बीमार था। हाथ उसका अटक गया था, पैर से लँगड़ा था, शरीर से कोढ़ी था, पेट में बायगोला था, और आंख से अन्धा था उसको

धन्वन्तरि जैसा एक वैद्य मिल गया उसने उसको अच्छा कर देना स्वीकार किया और दवा देना आरम्भ किया। थोड़े दिन में पेट का गोला मिट गया तो रोगी ने वैद्य को सौ रुपये दिये। थोड़े दिन पीछे उसका हाथ अच्छा हो गया तब उसने एक अच्छा घोड़ा दिया। फिर लंगड़ापन मिट गया तब उसने एक खेत दिया अन्त में जब कोढ़ मिट गया तो रोगी ने वैद्य को अपना घरबार ही दे दिया। तब्र वैद्य ने पूछा "अब मैं तेरा अन्धापन भी मिटा दूं तो बोल! मुझे क्या देगा?

रोगी ने हाथ जोड़ पैरों में पकड़कर कहा "महाराज वैद्यराज! नम्रता पूर्वक आपको साष्टांग प्रणाम करने के सिवाय अब मेरे पास और है ही क्या? आपका उपकार अपार है! आपकी मेहनत का बदला देने को मेरे पास कुछ नहीं है!

इस पर उसकी नम्रता से प्रसन्न होकर वैद्य ने उसका अन्धापन दूर कर दिया।

भाइयो! उस वैद्य ने तो केवल बिगड़े हुए अंग दुरस्त किये थे जिसके ही बदले में रोगी ने उसको अपना सर्वस्व दे दिया और उसके पैरों में पड़ा तब विचार तो करो कि, हमारा तो कुछ भी नहीं था तब भी ईश्वर ने हमको सब कुछ दिया है, इसके लिये हम उसका कितना करें? अच्छी इंद्रियां, अच्छी तन्दुरुस्ती, अच्छे कुल और अच्छे देश में जन्म, अच्छे माता पिता, सुन्दर स्त्री, निर्दोष बच्चे, उत्तम विद्या और बहुत २ से वैभव पाने के लिये हमने क्या ईश्वर के यहां धरोहर जमा की है? याद रखो कि, इन सब वस्तुओं को पाने का हमारा कुछ भी हक नहीं है परन्तु यह सब उसकी कृपा का ही फल है। उसका बदला तो हम नहीं ही दे सकते किन्तु मानपूर्वक नम्रता से उसको दण्डवत् प्रणाम भक्ति तो कर सकते हैं। भाइयो! सो प्रेमपूर्वक भक्ति करो! भक्ति करो!

*****

१७७ एक मनुष्य के तीन मित्र! धन, कुटुंब और धर्म

एक मनुष्य के तीन मित्र थे। उनमें से एक सदा उसके साथ ही रहता था। प्रत्येक भोग विलास में वह उसको तैयारी कर देता और प्रत्येक धामधूप में वह सदा उसके आगे बना रहता था। दूसरा मित्र था सो दो चार दिन में मिलता था, तब भी अपने मित्र की चिंता रखता और अच्छे बुरे मौके पर काम आता था। तीसरा मित्र था सो महीने बीस दिन में

बुलाने से आता था। उसको अपने मित्र के पास रहने की इच्छा तो बहुत ही थी परन्तु वह शौकीन नहीं था और अपने मित्र को इच्छानुसार चलने भी नहीं देता था वरन् उस पर अपना अंकुश रखता था इसलिये मित्र उसे नित्य नित्य नहीं बुलाता था। इसलिये उनका आपस में मिलना बहुत दिनों में होता था।

एक बार उस मनुष्य को अदालत में हाजिर होने का हुक्म मिला तब तो वह घबराया और अपने अतिप्रिय तथा सदा साथ रहने वाले मित्र से बोला "यार! मुझे आज अदालत में हाजिर होने का हुक्म हुआ है मेरी सहायता के लिये साथ चलना!"

उसने उत्तर दिया "नहीं भाई! यह मुझसे नहीं बनेगा! मैं तो तेरे घर तक का साथी हूं, अदालत में जाने का साथी नहीं हूं।"

मित्र ने कहा "अरे यार! यह क्या सूखा जबाब देता है? तूने मेरे साथ इतनी मौज की, नित्य नित्य तू मेरे साथ का साथ रहा, मुझको नोंच नोंचकर खा गया और अब ऐन वक्त में जबाब देता है! धूल पड़ी तेरी मित्रता में!"

उसने जबाब दिया "तू चाहे जितना कहे परंतु मैं एक भी नहीं मानने का! तेरी मेरी दोस्ती इतनी ही है! पहले ही इसका क्यों न विचार किया? हमारी दोस्ती में किसी का भला हुआ है सो तेरा होगा? जरा विचार तो कर मैं तेरे पीछे २ फिरता था तू मेरे पीछे २ फिरता था?"

अपने प्रिय मित्र के ऐसे सूखे उत्तर से दुःखित हो पश्चात्ताप करता हुआ वह अपने उस दूसरे मित्र के पास गया जिससे दो चार दिन में मिला करता था और बोला "तू मुझको अदालत में मदद देगा?"

उसने जबाब दिया "मैं तो अदालत में नहीं जा सकता। तू अधिक आग्रह करता है तो मैं तेरे साथ अदालत के दरवाजे तक चलूंगा परंतु हाकिम के पास जाकर तेरा बचाव तो नहीं कर सकूंगा।"

तब उसने उस तीसरे मित्र को बुलाया और उससे भी वही बात कही। उसने तुरंत उत्तर दिया "मैं तेरे साथ चलने को तैयार हूं। तू मुझे नहीं बुलाया तो तेरा ही दोष है! मैं तेरे साथ न्यायाधीश तक चलूंगा और बनेगा सो तेरा बचाव करूंगा। जब तक मैं तेरे साथ हूं तब तक तुझको कुछ भी भय नहीं रखना चाहिये।"

इस तीसरे मित्र की ऐसी बात सुनने से उसको समाधान हुआ। दोनों अदालत में गये और वहां पर जितना बना उतना उसने उसका बचाव किया।

हमको भी उस तीसरे मित्र को पकड़ना चाहिये वह तीसरा मित्र कौन था तुम जानते हो? वह धर्म था। पहला प्रिय मित्र जिसने अदालत में जाने से इनकार किया था वह धन था और जिसने अदालत के दरवाजे तक साथ जाना स्वीकार किया था वह श्मशान तक साथ जाने वाला कुटुंब था धन और कुटुंब तो यहां ही रह जाँयगे परंतु प्रभु के दरबार तक साथ देने वाला तो एक धर्म ही है। इसी से महात्मा कहते हैं कि धर्म करो! धर्म करो!! धर्म करो!!! क्योंकि धर्म ही सच्चा साथी है। ईश्वर के दरबार में हमारा वकील धर्म ही है। धर्म के सिवाय दूसरा कोई भी वहां पर मदद कर नहीं सकता। इसी से महात्मा बुध ने कहा है।

"धर्मं कुरु धर्मं कुरु प्रसारय धर्मध्वजम् ।
प्रताडय धर्मदुदुभिं प्रधम धर्मशंखम् ।।

अर्थ–धर्म करो धर्म करो, धर्म की ध्वजा फैलाओ! धर्म के नक्कारे बजवाओ! धर्म के शंख फूंको!

महात्मा बुध ने ये शब्द किस समय कहे हैं सो तुम जानते हो महाकठिन तप करते २ जब बुद्धदेव को सच्चा ज्ञान हुआ तप तप में से समाधि में से उठने पर सबसे पहले उनके मुंह में से जो उद्‌गार निकले वे ये ही शब्द हैं!

*****

१७८ सोनार जैसे सोने के रजकणों को सँभालता है वैसे ही भक्तों को समय के कण (सेकड़ों) को सँभालना चाहिये

सोनार जैसे सोने के रजकणों को सँभालता है वैसे ही हमको अपने समय के सेकंड़ों को सँभालना चाहिये। जरा से रजकणों को पाने के लिये सोनार लोग कितना श्रम करते हैं? कैसी सफाई से रेत को इकट्ठा करते हैं? उसको फटकने में, धोने में तपाने में, दूसरी रेत से अलग करने में और उसकी सँभाल करने में वे कितना श्रम करते और कितना ध्यान देते हैं? जो हम इन सब बातों पर बराबर ध्यान दें तो आश्चर्य हुए विना न रहें। इस तरह थोड़े २ रजकणों को इकट्ठा करके वे इतना सोना इकट्ठा कर लेते हैं कि, जिसे देखकर हमको आश्चर्य हो, आश्चर्य इसी बात का कि इतने से

छोटे रजकणों में से इतना सोना?

भाइयो! इतनी मगजपच्ची करने पर भी सोनार तो थोड़ा ही सा सोना पाते हैं, परन्तु भक्तजन सोने की रेत की तरह समय के कण इकट्ठे करने से कुछ का कुछ ही पा जाते हैं। समय की रेत सो सेकंड़ अर्थात् पल है इन पलो को प्रभु भजन में लगाने से केवल सोना ही नहीं मिल सकता किंतु उसमें से दैवत और स्वर्ग भी मिल सकता है, केवल स्वर्ग ही नहीं अमरत्व और ईश्वर भी उन पलों को सँभालने से ही भक्तजन प्राप्त कर सकते हैं इन पलों का स्वभाव है चला जाना परन्तु जो इनको पकड़कर रख सकता है अर्थात् इनका अच्छा उपयोग करता है वही संसार में बड़े से बड़ा मनुष्य बन सकता है और जो इन पलों को भगवत्सेवा में लगाता है वही भक्त ईश्वर का कृपापात्र होता है। इसलिये समय का सदुपयोग करने का यत्न करो!

हमारी जिंदगी पलों से बनी हुई है और पल एक २ करके ऐसे निकल जाते हैं कि, हमको खबर तक नहीं पड़ती। इसलिये महात्माओं का कथन है कि, समय को सँभालना और काल का स्वरूप समझना ही सबसे कठिन विषय है, विद्वान् लोग कहते हैं कि, समय नापने की शीशी अर्थात् रेतघड़ी में से जो रेत के कण गिरते हैं वे केवल रेत के ही कण नहीं हैं परन्तु वे चमकीले हीरे हैं हीरे से भी बढ़कर हैं वह गिरता हुआ रेत का एक २ दाना आकाश के एक २ तारे से भी बढ़कर है और उसको जो पकड़ सकता है वही ईश्वर को पकड़ सकता है। जो इस तरह पर जाते हुए समय को न पकड़ा जाय और उसको अच्छे कामों में न लगाया जाय तो भर्तृहरि महाराज के इस 'कालो न यातो वयमेव याता:' कथन के अनुसार 'समय नहीं गया परन्तु हम ही चले गये' वाली बात हो जाती है, सँभाल रखो कि ऐसा न होने पावे, क्योंकि संसार में और सब ही पीछे मिल सकता है परन्तु गया हुआ समय पीछे नहीं मिल सकता। सारी पृथ्वी दे देने से भी एक पल पीछे नहीं मिलेगा। ऐसे अमूल्य समय को न खोने की पूरी २ याद रखो! संसारियों में और भक्तों में यही भेद है कि, संसारी जीव समय का मूल्य नहीं समझते इससे उसे मौज शौक और आलस्य में खोदते हैं और भक्त लोग समय की कीमत जानते हैं इससे उसे भगवत्सेवा में लगा देते हैं। और तब तर जाते हैं इसलिये भाइयो! ऐसे अमूल्य समय को निकामे मौज शौक और विषयवासना में न लगाओ! न लगाओ! उसको तो प्रभु

सेवा में ही प्रभुस्मरण में ही लगाओ!

३३ पद

कहा मन विषयनसों लपटाई, या जग में कोउ रहन न पावै, इक आवै इक जाई ।। टेक ।। काको तन धन संपति काकी, कासों नेह लगाई जो दीखै सो सकल विनाशै, ज्यौं बादरकी छाई ।।२।। तज अभिमान शरण संतन गहु, मुक्त होहु छिनमाहीं । जन नानक भगवंत भजन बिनु सुख सुपनेहू नाहीं ।।३।।

*****

१७९ चित्रकार की कलम यह अभिमान नहीं कर सकती कि यह चित्र मैंने बनाया है, वैसे ही मनुष्य भी ईश्वर के हथियार हैं इससे हमको ऐसा अभिमान नहीं करना चाहिये कि यह काम मैंने किया

जैसे हम सब काम किसी न किसी साधन या हथियार से करते हैं वैसे ही मनुष्य ईश्वर के हथियार हैं। जैसे कुम्हार को चक्कर है, लेखक को कलम है, लोहार को हथोड़ा है, किसान को हल है, बढ़ई को वसूला है, धोबी को पत्थर है, मल्लाह को नाव है, और चित्रकार को कलम है। वैसे ही ईश्वर के काम करने के लिये मनुष्य हथियार है। किसी भी लेखनी को यह कहने का अधिकार नहीं है कि, अमुक पुस्तक मैंने लिखी है, किसी भी हथोड़े को यह कहने का अधिकार नहीं है कि, यह यन्त्र मैंने बनाया है, कोई भी सुई यह नहीं कह सकती कि यह बढ़िया कपड़ा मैंने सिया है, और कोई भी चित्रकार की कलम यह अभिमान नहीं कर सकती कि अमुक चित्र मैंने ही बनाया ही, क्योंकि ये तो सब हथियार हैं, परन्तु उसमें जो कुछ कारीगरी है वह उसको काम में लाने वाले की है। वैसे ही हम भी परमेश्वर के हथियार हैं, हम जो कुछ अच्छे काम करते हैं वह सब ईश्वर की ही खूबी है, हम तो केवल निमित्त मात्र हैं, इसलिये हमको अपने काम का कभी अभिमान नहीं करना चाहिये।

धोबी की शिला कपड़े साफ करने का दावा करे, बढ़ई का बसूला घर बनाने का दावा करे; कुम्हार चाक दुनियां भर को बर्तन देने का दावा करे, और सुई संसार भर के मनुष्यों को वस्त्रों से ढ़ांकने का अभिमान करे तो कैसे चल सकता है? यह सत्य है कि इन इन हथियारों से ही वे काम

सफाई के साथ होते हैं परंतु इसपर से यह नहीं हो सकता कि उन कामों के कर्त्ता वे हथियार ही समझे जायँ, क्योंकि उन कामों में जो खूबी है वे तो उनके करने वालों ही की है। इसी तरह हमारे हाथ से भी जो काम होते हैं उनमें खूबी परमेश्वर की ही है। इससे इन कामों का कर्त्तापन अपने ऊपर लेना और उनका अभिमान करना बड़ा पाप है। इसलिये समझते बूझते हमको ऐसा पाप नहीं करना चाहिये। भगवान् ने गीता में कहा है:–

"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ॥"

अ० १८ श्लो० ६१

अर्थ–जैसे पेच में लगी हुई पुतली जैसे २ कल फिराई जाती है वैसे वैसे ही चलती फिरती है, वैसे ही अर्जुन! इन सब जीवों को उनके हृदय में स्थित अन्तर्यामी ईश्वर अपनी माया से फिराता है।

भगवान् कहते हैं कि, तुम तो कल की पुतली जैसे हो! तुमको चलाने वाला तो तुम्हारे हृदय में बैठा हुआ मैं ही हूँ। इतना ही नहीं किन्तु भगवान् यह भी कहते हैं कि, तुम तो निमित्त मात्र अर्थात् हथियार समान हो, तुमसे जो कुछ होता है वह कृपा तो मेरी ही है। भगवान् ने स्पष्ट कहा है कि:–

"तस्मात्वमुत्तिष्ठयशोलभस्व जित्वा शत्रून्भुंक्ष्व राज्यं समृद्धम् ।
मयैवैते निहताः पूर्वमेव निमित्तमात्रं भव सव्यसाचिन् ॥"

गी० अ० ११ श्लो० ३३

अर्थ इसलिये तू युद्ध करने को उठ! यश प्राप्त कर! और शत्रुओं को जीतकर समृद्धि वाला राज्य भोग! हे अर्जुन! युद्ध से पहले ही मैंने उनको मार डाला है। तुम तो केवल निमित्त मात्र हो!

भाइयो! हम जो अच्छे और बड़े काम करते हैं उनके लिये दयालु परमेश्वर ने पहले से ही तैयारी कर रखी है। हमारे केवल निमित्त मात्र होने ही की देर है, केवल उसका लाभ लेने ही की कसर है! ईश्वर की इतनी बड़ी कृपा का उपकार मानना तो एक ओर रहा परंतु उसके बदले में ऐसा अभिमान करना कि, सब काम मैंने ही किये हैं कितनी बुराई की बात है! इसका विचार तो करो! ऐसी भूल न होने देने के लिये दीनभाव से ईश्वर के शरण जाओ! और प्रभु का महत्व समझो! भाइयो! महत्व समझो!

१८० हम दुनियांदारी में इतने फँस गये हैं कि, ईश्वर कृपा अपने ही पास होने पर भी उसका लाभ नहीं ले सकते

एक मनुष्य यूरोप से अमेरिका की नायगरा नदी के पानी का गिराव देखने गया। उस स्थान से सात मील के अन्तर पर जब वह पहुँचा तो उसने पानी की आवाज सुनी, आवाज सुनकर उसने पास के गांव वालों से पूछा कि, यह आवाज किसकी है। गांव वालों ने उत्तर दिया कि हम नहीं जानते। तब तो उसको बड़ा आश्चर्य हुआ। उसने उनसे फिर पूछा कि, क्या तुमने वह पानी गिरने की जगह कभी नहीं देखी? किसान ने उत्तर दिया "नहीं! कभी नहीं! मैं तो अपने कुटुंब और खेत के ही काम में लगा रहता हूं मुझे उसे देखने सेखने की कोई जरूरत नहीं। हमको तो अपने काम से काम है।"

यात्री ने विस्मित होकर कहा "बाबा! संसार में ऐसे भी आदमी होते हैं! मैं तो पांच हजार मील दूर से इस जगह को देखने आय हूं और ये लोग पास होने पर भी नहीं देखते!"

इसी तरह जो दुनियांदारी में अधिक लीन हो जाते हैं वे अपने पास की पास ही स्थित प्रभु कृपा को नहीं देखते। व्यवहार की वस्तुएँ तो दूर भी होती हैं और उनको देखने जाने में देशकाल की कितनी ही अड़चने भी रोकती हैं परंतु ईश्वर को और ईश्वर की कृपा को देखने में तो कोई भी रोक टोक नहीं होती। इसलिये वे हमसे दूर हो ही नहीं सकते परंतु कसर इतनी ही है कि, हम उन्हें देखने की परवाह नहीं रखते। जो हम उनको देखने और जानने की इच्छा करें तो वह हमसे दूर नही है, परंतु हम उस दिहाती की तरह दुनियादारी में इतने फँसे रहते हैं कि, ईश्वर अपने पास होते हुए भी हम उसे जानने समझने की परवाह नहीं करते। इसमें ईश्वर का नहीं हमारा ही दोष है, क्योंकि ईश्वर ने तो कहा ही है कि, न मुझको कोई प्रिय है न कोई अप्रिय है परंतु जो मुझको भाव से भजता है वह मुझमें है और मैं उसमें हूं। इसलिये भाइयो! पास ही पड़े हुए रत्न को खो मत दो किंतु उसका ईश्वर कृपा का लाभ लेना सीखो! लाभ लेना सीखो!

*****

१८१ हमारे पाप काटने ही के लिये हमको दुःख दिये जाते हैं

एक छोटे बच्चे को उसकी माता साबुन से मलमल के नहला रही थी जिससे बच्चा रोने लगा परंतु उसने उसके रोने की कुछ भी परवाह न की और जब तक उसके शरीर पर मैल रहा तब तक उसी तरह से नहलाना जारी रखा और जब मैल निकल चुका तब ही मयना रगड़ना बंद किया। वह उसका मैल निकालने ही के लिये उसे मलती रगड़ती थी कुछ द्वेषभाव से नहीं। वैसे ही वह उसको दुःख देने के अभिप्राय से नहीं रगड़ती थी परंतु बच्चा इस बात को समझता नहीं था इससे रोता था। इसी तरह हमको दुःख देने से परमेश्वर को कोई लाभ नहीं है परंतु हमारे पूर्वजन्मों के पाप काटने के लिये और हमको पापों से बचाने के लिये और जगत् का मिथ्यापन बताने के लिये वह हमको दुःख देता है। अर्थात् जब तक हमारे पाप नहीं धुल जाते तब तक हमारे रोने चिल्लाने पर भी परमेश्वर हमको नहीं छोड़ता। इसलिये दुःख से निराश मत हो! दुःख से निराश मत हो!

*****

१८२ गाय को लकड़ी मारना ग्वाला को अच्छा नहीं लगता, परंतु वह गाय के फायदे ही के लिये ऐसा करता है वैसे ही हमको दुःख देने में ईश्वर को कुछ लाभ नहीं परंतु हमारा ही कल्याण है

गाय को लकड़ी मारना कुछ भले ग्वाले को अच्छा नहीं लगता परंतु गायों को बुरे मार्ग पर जाने से रोकने के लिये हाँकना और समय पर लकड़ी भी मारनी पड़ती है। इसलिये लाचारी से कभी गाय को लकड़ी भी मारनी पड़े तो वह ग्वाल को भले के लिये नहीं, परंतु गाय के भले के लिये है। वैसे ही हम पर जो दुःख पड़ते हैं वे भी हमारे ही भले के लिये हैं। हमको पाप से बचाने और हमसे भजन कराने ही के लिये हम पर कभी २ आपदाएँ आ पड़की हैं, क्योंकि सुख की अपेक्षा दुःख में प्रभु अधिक याद आता है। भगवान् ने गीता में कहा हैः–

"चतुर्विधा भजंते मां जनाः सुकृतिनोऽर्जुन ।
आर्तो जिज्ञासुरर्थार्थी ज्ञानी, च भरतर्षभ ।।

अ० ७ श्लो॰ १६

अर्थ–भरतवंश में श्रेष्ठ अर्जुन! भले काम करने वाले चार प्रकार के लोग मुझे भजते हैं १ दु:खिया, २ प्रभु और धर्म को जानने की इच्छावाला, ३ भोगने की सामग्री प्राप्त करने की इच्छावाला और ४ ज्ञानी,

भाइयो! इन चार प्रकार के भक्तों में दु:खिया को प्रभु ने पहिले गिनाया है यह इतने ही के लिये कि जिसमें मनुष्य यह समझ सके कि, दु:ख है सो केवल दु:ख ही नहीं है परन्तु उसमें भक्ति भी है और दु:ख पाप से बचा सकता है। गाय को ग्वाला की लकड़ी नहीं अच्छी लगती वैसे ही हमको भी दु:ख अच्छा नहीं लगता, परन्तु गाय यह नहीं समझती कि ग्वाला की लकड़ी बिना मैं सरकारी कांजीहौस में कैद हो जाऊंगी। ग्वाल की लकड़ी बिना मैं संध्यासमय अपने बछड़े से प्यार करने के लिये घर नहीं पहुँच सकूंगी, ग्वाल की लकड़ी बिना मैं अपने स्वामी के घर का खाना नहीं पा सकूंगी और ग्वाल की लकड़ी के अधीन हुए विना मैं कभी बाघ के मुँह में जा पडूंगी, इन बातों से रोकने के लिये गाय को अच्छा न लगने पर भी ग्वाल की लकड़ी की आवश्यकता है और उस लकड़ी में ही मजा है, वैसे ही हम को भी दु:ख अच्छे नहीं लगते परन्तु जो विचार से देखा जाय तो उसमें बड़ा आनंद है। इसलिये भाइयो! दु:ख से कायर मत हो!

*****

१८३ रात बहुत अँधेरी हो जाती है तब ही बरसात आती है वैसे ही दु:ख के पीछे तुरंत ही सुख आता है इसलिये दु:ख से कायर मत हो

जब दु:ख आ पड़े तब निश्चय समझना चाहिये कि, अब हम पर प्रभु की कुछ विशेष कृपा होने वाली है, क्योंकि दु:ख पीछे सुख देना ईश्वर का नियम ही है। जब बदलों से घिरकर बहुत ही अँधेरी काली रात हो जाती है तब लोग समझते हैं कि अब अवश्य पानी आवेगा और होता भी तब वैसा ही है कि शीघ्र ही गहरा पानी आता है, वैसे ही हमारे दु:ख भी अँधेरी काली रात के समान है, उसके पीछे बरसात् अर्थात् सुख तैयार रहता है परन्तु बात इतनी ही है कि, आँधी और बदली का तूफान हुए बिना ठीक २ बरसात नहीं आती, वह हलका सा और क्षणिक तूफान ही पानी आने का लक्षण है। वैसे ही हम पर आ पड़ने वाले दु:ख भी भविष्यत्

में आने वाले सुख के ही चिन्ह हैं इसलिये अपनी बुरी दशा देखकर दु:खित मत हो, क्योंकि सब दिन एक से नहीं होते। साधु लोग गाते हैं।

कवित्त

काहू दिन बाग हात बाजते नगारे साथ,
काहू दिन प्यादे पाँव बोझ शीश सहिये।
काहू दिन मेवा मिसरीनके अजीरन होत,
काहू दिन मुठीभर चून गोहि लहिये।।
काहू दिन आप द्वार भीर व्है भिखारनकी,
काहू दिन आप जाइ पर द्वार रहिये।
हारिये न हिम्मत बिसारिये न हरिनाम,
जाही बिध राखे राम ताही बिध रहिये।।

*****

१८४ नये पत्ते आने के लिये शरद्ऋतु में वृक्ष के पुराने पत्ते गिर जाते हैं, वैसे ही हमको अधिक सुख मिलने को थोड़े दु:ख आते हैं, इसलिये दु:ख से घबराना नहीं!

शरद्ऋतु में वृक्ष के पत्ते गिर जाते हैं सो किसलिये? इसीलिये कि उसमें पुराने के बदले नये पत्ते आवें और आगे जाकर वह नये फूल फल देवें, कुछ इसलिये नहीं कि, पेड़ ही सूख जायँ? पुराने पत्तों को गिरते देखकर वृक्ष दु:ख माने तो वह उसकी भूल हैं, क्योंकि उस पर से जितना जाता है, उससे भी थोड़ा ही समय में मिल जाता है, वैसे ही हम पर पड़नेवाले दु:ख और आपत्तियां भी बरसात आने से पहले होनेवाले क्षणिक तूफान के समान हैं, इसलिये ऐसे क्षणिक दु:खों के लिये रोना मूर्खता है, क्योंकि ये दु:ख तो गिरते हुए पुराने पत्तों के समान हैं, उनके बदले में हमको दूसरे बहुत से नये सुख मिलनेवाले हैं, फिर दु:ख क्यों मानना? क्या हम समझ सकते हैं कि किस मार्ग से प्रभु हमारा कल्याण करेगा? इसलिये चाहे जैसा दु:ख आ पड़ने पर भी हमको घबराना नहीं चाहिये, परंतु उसको भगवदिच्छा समझ उसमें से कुछ न कुछ अच्छा होने की आशा से शांति के साथ ईश्वर का भजन करतें करते उसको भोग लेना चाहिये।

*****

१८५ मालिक अपनी इच्छा के अनुसार फेरफार करे उसमें नौकर को बोलने का क्या हक? वैसे ही ईश्वर हमको अपनी इच्छा के अनुसार रखे उसमें हमको उदास होना क्यों चाहिये?

एक नौकर ने देखा कि घर में मेज उलटी पड़ी है, कागज फटे पड़े हैं, बोतलें फूटी हुई हैं, पुस्तकें तितरबितर हो रही हैं और घड़ी बंद हो रही है। यह देखकर वह बहुत दौडधूप करने लगा। गड़बड़ मचाने लगा और बिगड़कर कहने लगा "यह गड़बड़ किसने कर डाली? मैं उसको समझूंगा!"

इतने ही में उसका मालिक ने आकर कहा "यह सारी गड़बड़ मैंने की है।"

इतना सुनते ही नौकर चुप हो गया और सब चीजों को यथास्थित करने लगा, क्योंकि मालिक अपनी इच्छा ने अनुसार करे, उसमें नौकर को बीच में बोलने का क्या अधिकार? वैसे ही हम पर जो दुःख पड़ते हैं वे भगवदिच्छा से ही पड़ते हैं, इससे उनके लिये बड़बड़ाने का हमको क्या अधिकार है? ईश्वर तो मालिक का मालिक है, वह चाहे सो करे, उसमें वृथा हाय हाय मचाने से क्या लाभ? हमारे रोने धोने से वह अपना नियम थोड़ा ही बदल देगा? इसलिये भाइयो! दुःख से हार मत मानो परन्तु ईश्वरी इच्छा के अधीन हो?

*****

१८६ दुःख की परवाह करे सो भक्त काहे का?

एक वैद्यक स्त्री प्रायः बीमार रहा करती थी परंतु तब भी वह बड़ी आनंदी थी। उसको बहुत निर्बल देखकर दूसरी स्त्रियों ने हँसी में कहा "देखो देखो! यह वैद्य की स्त्री है!"

तब एक ने पूछा "बाई! तुम इतनी निर्बल हो तब भी आनंद में कैसे हो? अपने दुःख की तुमको कुछ चिंता नहीं होती?"

उसने उत्तर दिया "मेरे दुःख की मुझको चिंता नहीं है क्योंकि मेरा पति वैद्य है, उसने बहुत से रोगियों को मेरे देखते देखते अच्छा कर दिया है। वह जब मन में विचारेंगे तब मेरा रोग मिटने में क्या ढ़ील लगती है? जिसका पति पक्का वैद्य हो उसको रोग से क्यों डरना चाहिये?

भाइयो! वैद्य की स्त्री को ही जब इतनी हिम्मत होती है तब समर्थ

ईश्वर जिनका पति है उन भक्तों को दुःख से क्यों डरना चाहिये? इतने पर भी डरता हो वह भक्त नहीं। सच्चे भगवज्जीव तो यही मानते हैं कि जब ईश्वर की दृष्टि पड़ेगी तब ही हम निहार हो जायँगे। साथ ही में उनका यह भी समझना है कि गरीबों पर तो दयालु परमेश्वर की दृष्टि सबसे पहले पड़ेगी। उस समय दुःख आशीर्वाद समान हो जायगा। इसलिये परमेश्वर की इच्छा से आनेवाले दुःखों से कभी डरना नहीं चाहिये!

३४ कुंडलिया

दुख सुख सम करि मानिये यह कर्मन को भोग। राई घटै न तिल बढ़ैं हर्ष करहु भउँ सोग ।। हर्ष करहु भउँ सोग भोगविन ये न मिटाई। नल पांडव हरिचंद सहे दुःख मन न भ्रमोई ।। रामजीवन कहै सोचि बात चतुरन को सांची। रावणहू दुःख सह्यो जाहि कर्मनगति बांची ।।१।।

*****

१८७ दुःख ही हमारी परीक्षा है

सोनार लोग सोने को आग में तपाते हैं सो उसको जला डालने के लिये नहीं किंतु उसकी परीक्षा करने और उसको शुद्ध करने के लिये सोने को आग में डालने से उसकी कीमत घटती नहीं है किंतु और हमारा विश्वास और चाह उस पर बढ़ती है और कीमत भी उसकी निश्चय हो जाती है, वैसे ही ईश्वर हमको जो दुःख देता है वह हमारा नाश करने के लिये नहीं किंतु हमको पवित्र करने और हमको सच्चा सुख देने के लिये ही!

भाइयो! अवश्य याद रखना कि सुख का ताला खोलने की चाबी दुःख है, दुःख की चाबी से सुख का ताला जल्दी खुल जाता है। इसलिये ईश्वर की कृपा से दैवयोग ही से यह चाबी तुमको आ मिले तो उसके फेंकना नहीं, फेंकना नहीं! अर्थात् उसमें हिम्मत मत हार जाना! निराश मत हो जाना! उसमें भी मजा है परंतु उस मजे की खबर तुमको अभी नहीं पड़ेगी। जब उस चाबी से सुख का ताला खुल जायगा तब ही उसका मजा मिलेगा।

*****

१८८ ईश्वर के लिये दुःख सहने में भी मजा है !

पृथ्वी के पेट में हलकी नोक घुसेड़ी जाती है सो किसलिये? जमीन को साफ करने के लिये और उसको अधिक फलवाली करने के लिये! याद

रखना कि जमीन की कीमत बढ़ाने के लिये और उसमें से अधिक फल उत्पन्न करने के लिये ही उसमें कुदाली फावड़े के घाव किये जाते हैं, कुछ उसको खराब करने के लिये नही! वैसे ही हम पर जो दुःख पड़ते हैं वे हमारा बुरा करने के लिये नहीं किंतु हम न समझना सकें वैसी ही रीति से हमारा कुछ भला करने ही के लिये। इसलिये! दुःख से डरो मत!

दुःख का रहस्य समझनेवाले अनुभवी साधु तो यही कहते हैं कि–

खूबी है एक दुनिया में । महादुःख ही सहने में ।।

क्योंकि सुख में माया का स्मरण होता है और दुःख में प्रभु का स्मरण होता है! इसलिये दुःख के लिये दुःख अच्छा नहीं है परंतु ईश्वर के लिये दुःख अच्छा है। इसलिये प्रभुइच्छा से आये हुए दुःखों से उदास मत हो परंतु प्रभु के निमित्त दुःख सहन करो और उसमें से भी धैर्य ग्रहण करो!

*****

१८९ माली भी बिना किसी प्रबल कारण के वृक्ष की एक डाली तक नहीं काटता, तब कृपासागर परमेश्वर हमको बिना कारण दुःख क्यों देगा ?

कभी कभी माली वृक्षों को ऊपर से या आसपास से थोड़ा बहुत काट छाँट डालता है सो क्या वृक्ष का नाश करने के लिये? नहीं भाई नहीं? वह काट छाँट इसलिये करता है कि जिसमें वृक्ष सुंदर दीखने लगे, उसके कीड़े दूर हो जायँ और वह अधिक फलफूल देने लगे। वैसे ही ईश्वर हमको कुछ कम कर देता है अथवा हमको अच्छी न लगनेवाली स्थिति में देखता है सो इसलिये नहीं कि उसकी हम पर कुछ कृपा कम हो किंतु हमारा कल्याण करने ही के लिये, परंतु हम उसका ठीक कारण नहीं समझते, इससे शिर पीटते हैं, भक्तजन कहते हैं कि उस तरह की बातों पर चिंता करना और दुःखित होना तो ईश्वर का विश्वास न करने के समान है, क्योंकि तुम विचार तो करो कि, एक जंगली माली ही जब बिना किसी प्रबल कारण के वृक्ष की एक डाली या पत्ते तक नहीं तोड़ता तब कृपा का सागर आनंदस्वरूप परमेश्वर हमको बिना कारण दुःख क्यों देगा? जिस कारण के लिये उसने दुःख दिया है उस कारण के दूर होते ही दुःख आपों आप चला जायगा इसलिये दुःख से हिम्मत मत हारो! हिम्मत मत हारो!

१९० दुनियां में जन्म लिया वहां दुःख तो हमको भोगना ही पड़ेगा, फिर चाहे उसे हाय हाय करने भोगें चाहे प्रभु का स्मरण करते शांति से भोगें !

सुख और दुःख जन्म के साथ हैं वे भो भोगने ही पड़ेंगे क्योंकि हमारे शरीर की बनावट ही वैसी है और इस दुनियां की रचना ही वैसे है कि किसी भी जीव को सुख दुःख हुए बिना नहीं रहता इसीलिये भगवान् ने गीता में कहा है–

"मात्रास्पर्शास्तु कौंतेय शीतोष्णसुखदुःखदाः ।
आगमापायिनो नित्यास्तांस्तितिक्षस्व भारत ।।"

अ० २ श्लो० १४

अर्थ–हे अर्जुन! ठंड धूप आदि विषयों के साथ इंद्रियों का संबंध होने से सुख दुःख होते हैं, ये सुख दुःख तो आने और चले जानेवाले स्वभाव के हैं और रहते भी थोड़ी ही देर, इससे हे अर्जुन! इनको सहन कर!

भाइयो! ईश्वर हमको आज्ञा देता है कि सुख दुःख तो तुमको सहने ही चाहिये। केवल सहना ही नहीं चाहिये वरन् भगवान् का कहना तो यहां तक है कि सहने ही पड़ेंगे, क्योंकि जीवमात्र की बनावट और कुदरत के नियम ही ऐसे हैं कि जहां तक शरीर हैं वहां तक सुख दुःख हुए बिना रहेंगे ही नहीं! इन सुख दुःखों से हम किसी तरह छूट ही नहीं सकते, तब हम चाहे हँसकर सहें चाहे रोकर सहें परन्तु भोगने हमको ही पड़ेंगे, क्योंकि इंद्रियों और विषयों के संबंध में ही सुख दुःख हैं और जब तक यह शरीर है तथा जब तक तुम इस दुनियां में हो तब तक किसी भी देश में, किसी भी काल में और किसी भी स्थिति में एक पल भर भी तुम इंद्रियों और विषयों के संबंध बिना नहीं रह सकते और इस जीवन तथा इस दुनियां में सुखदुःख हैं सो सब इस संबंध में ही है, इससे इनको भोगे बिना छुटकारा नहीं है जिसमें हमारा वश ही नहीं चलता उसमें रोने से भी क्या लाभ? इसलिये भाइयो! शांति से दुःख सहन करो! !

३५ कुंडलिया

दुःख गह्यो सुख मानिकै भूल्यो सब संसार ।
आठ प्रहर भ्रमतो फिरै करतो लोकाचार ।।
करतो लोकाचार रार शत्रुनसों ठानै !
संतन को उपदेश नाहिं हिरदा बिच आनै ।।

रामजीवन कहै अहो भूलि परिगइ जगमाहीं ।
सुख त्यागो दुख मानि जाहिसों ब्रह्म लखाहीं ।।२।।

*****

१९१ याद रखो कि प्रभु की आज्ञा से ही दुःख आते हैं इसलिये उनको भोगना ही पड़ेगा

दुःख पड़ने पर बड़बड़ाना और उदास होना ईश्वर का सामना करने के समान है, क्योंकि ईश्वर की आज्ञा मानने को हम धर्म से बँधे हुए हैं। इतना ही नहीं परंतु हमारे शरीर की रचना और जगत् की प्रकृति के नियम से भी हम ईश्वर की आज्ञा मानने को बंधे हुए हैं इसके सिवाय यह भी समझने का है कि, हम पर जो दुःख पड़ते हैं उनको भोगने की ईश्वर की आज्ञा है इतना ही नहीं परन्तु वे दुःख ईश्वर के भेजे हुए हैं और उनको भोगने की इच्छा न करें तब भी वे तो भोगने ही पड़ते हैं उनसे छूटने का कोई उपाय है ही नहीं, क्योंकि पाप का दंड देने के लिये तथा पाप से बचाने के लिये दयालु प्रभु ने हम पर दया करके दुःख भेजे हैं। इसलिये उसको भोगे बिना छुटकारा ही नहीं है। भगवान् ने गीता में कहा हैः–

"बुद्धिर्ज्ञानमसंमोहः क्षमा सत्यं दमः शमः ।
सुखं दुःखं भवो भावो भयं चाभयमेव च ।।
अहिंसा समता तुष्टिस्तपो दानं यशोऽयशः ।
भवंति भावा भूतानां मत्त एव पृथग्विधाः ।।"

अ० १०, श्लो० ४-५

अर्थ–बुद्धि, ज्ञान, मोहरहित होना, क्षमा, इंद्रियों का जीतना, मन को जीतना, सुख, दुःख, उत्पत्ति, अधिकार, भय अभय तथा अहिंसा, समता, संतोष, तप, दान, यश और अपयश आदि जुदे जुदे भाव प्राणियों को मुझसे ही होते हैं।

इस तरह जब प्रत्येक वस्तु ईश्वर की दी हुई है तब उसका सामना करना ईश्वर का सामना करने के समान है। इसलिये भाइयो! दुःख से हारकर प्रभु का सामना मत करो! परंतु दुःख को शांति से भोगकर प्रभु को प्रसन्न करो!

पद

सब दिन होत न एक समान ।।टेक।। एक दिन राजा हरिश्चंद्र घर, संपति

मेरु समान। एक दिन जाय श्वपचगृह सेवत, अंबर हरत समान ॥सब दि०॥१॥ एक दिन सीता रुदन करत है, महाविपिन उद्यान। एक दिन रामचन्द्र मिलि दोऊ, विचरत पुष्पविमान ॥सब०॥२॥ एक दिन राजा राज युधिष्ठिर, अनुचर श्रीभगवान्। एक दिन द्रौपदि नग्न होत है, चीर दुशासन तान ॥सब०॥३॥ प्रकटत है पूरब की करनी, तज मन शोच अजान। सूरदास गुण कहंलग बरणों, विधि के अंक प्रमान ॥सब०॥४॥

*****

१९२ अच्छे खेत में ही खाद डाला जाता है वैसे ही जो प्रभु के प्यारे होते हैं उन ही पर दुःख पड़ते हैं।

तुम जानते हो कैसे खेत में खाद डाला जाता है? जो खेत अच्छा होता है उसमें ही खाद डाला जाता है परंतु जो खेत खराब होता है उसको वैसा ही छोड़ देते हैं। मल, मूत्र, विष्ठा, हड्डी, गोबर, गांव भर का कचरा और मोरियों का सड़ा हुआ पानी खाद में होता है। ऐसी बुरी बुरी चीजें किसान अपने प्यारे प्यारे खेतों में डालता है, कारण यह कि वह खाद है और खाद का गुण है अधिक फल देना। गांव का कचरा अच्छे खेत में पड़ने से ही जब अधिक फल आते हैं तब भक्तजनरूपी भले खेत में पड़नेवाला दुःखरूपी खाद कितना अच्छा फल देगा सो तो विचार करो! इसलिये भाइयो! आज ही से याद रखना कि भक्तों पर पड़नेवाले दुःख नहीं हैं किंतु खाद है। खाद में कुछ बदबू तो अवश्य आती है परन्तु गुण भी उसमें बड़ा है। वैसे ही दुःख सहना बुरा तो लगता है परंतु उसे शांति से सह लेने में बड़ा फल है सो याद रखना!

*****

१९३ फूल तोड़ा जाय तब ही वह देवता पर चढ़ सकता है, वैसे ही मनुष्य अपने धर्म के दुःख सहें तब ही ईश्वर को पा सकते हैं

सुन्दर फूलों को और मीठी कलियों को हम पेड़ पर से तोड़ लेते हैं सो किस काम के लिये? क्या उनको दुःख देने के लिये? नहीं नहीं! उनको उपयोगी बनाने के लिये! उनको देवपर-ठाकुर पर चढ़ाने के लिये! जो वे फूल वैसे ही पेड़ पर रहने दिये जायँ तो कुछ काल में कुम्हलाकर आप ही आप गिर जायँ! ऐसा होने से वे अकारथ जायँ, क्योंकि उनके जन्म की

सार्थकता नहीं हो सकती। किसी भी वस्तु की सार्थकता उसके उपयोग से होती है और उपयोगीपन दुःख से होता है। इसलिये अपनी उन्नति के लिये और ईश्वर को पाने के लिये मनुष्य जाति को दुःख के विना काम ही नहीं चल सकता। पेड़ पर से फूल नहीं तोड़ा जाता, परन्तु फूल की डंड़ी और पखुड़ियां तक जुदी कर दी जाती हैं, इसके बाद उसमें सुई डाली जाती है तब ही उसकी माला बनती है और तब ही वह ठाकुर पर चढ़ाने योग्य होती है। इतना संस्कार किया जाय तब ही वह सुन्दर स्त्रियों के कोमल कंठ में पहुँच सकती हैं और इतना दुःख सहने से ही वह राजाओं के मुकुट में पहुँच सकती हैं और तब ही वें राजाओं को, सुन्दरियों को तथा देवमूर्तियों को सुशोभित कर सकती हैं। याद रखो कि, इतनी उत्तमता दुःख सहने से ही आती है। इसलिये भाइयो! दुःख से उदास नहो परंतु यही समझो कि, दुःख में भी दैवी धैर्य ही है, दुःख में भी आशीर्वाद है, दुःख में भी ईश्वरीय कृपा है और धर्म के दुःख शांति से सहन करने में ही ईश्वर प्राप्त हो सकता है। इसलिये दुःख से उदास न होने का विचार कर लो!

*****

१९४ अनंतकाल के मोक्षके सुख पाने के लिये दुनियाँ के थोड़े दुःख भोग लेना सूली का कष्ट सुई में टाल देने के समान है

भाइयो! हम समझें तो ईश्वर की इच्छा से आये हुए दुःख तो आशीर्वाद समान हैं, क्योंकि इनसे सूली का कष्ट सुई में टल जाता है। तुम विचार तो करो कि, जिसको जन्मभर के लिये देश निकाले की सजा होने वाली हो उसका यदि १० ही १५ दिन में साधारण कैद भोग लेने से छुटकारा हो सकता है तो उसे भोग लेने को कौन इनकार करेगा? वैसे ही जो नरक में जाने से बचाव होता हो तो इस दुनियाँ के थोड़े दुःख भोग लेने में क्या हानि है? परंतु इन बातों को हम अच्छी तरह से जानते नहीं हैं, इसी से छोटे २ दुःखों को भी हम बड़े पहाड़ की तरह मानते हैं, यदि हम समझें और विचार करें तो मालूम हो जाय कि, दुःखरूप बनकर यह ईश्वर की दया ही हम पर बरसती है परंतु हम इसका विचार नहीं करते इसी से फायदा नहीं उठा सकते और दुःख २ पुकारा करते हैं। इसलिये दुःख से उदास मत हो परंतु यह समझो कि, ईश्वर के निमित्त यहाँ पर

थोड़ा दुःख भोग लेना सूली के कष्ट को सुई में टाल देने के समान है।

*****

१९५ दुःख है सो पाप का दंड़ है, इस दंड़ का भोग लेने से पाप कट जाते हैं और ईश्वर की कृपा हमपर जल्दी होती है, इससे इस दंड़ को भोग लेने में आनाकानी मत करो!

एक पिता के दोनों पुत्र कुछ अपराध करें और रुष्ट होकर पिता दोनों पुत्रों को योग्य दंड़ दे तब उनमें से एक तो अपनी भूल को स्वीकार कर नम्रतापूर्वक पिता से क्षमा मांगे और दूसरा पुत्र पिता के सामने पड़ जाय तो दोनों में लाभ किसको? जो पुत्र पश्चात्ताप करे, क्षमा माँगे और दंड़ को भोग ले उसपर पिता जल्दी राजी होगा और जो पिता का सामना करे उसे पिता छोड़ नहीं देगा वरन् दो चार लात अधिक ही मारेगा। इसी तरह ईश्वर इच्छा से पड़ने वाले दुःख भी हमारे पापों का ही दंड़ है धैर्य रखकर उनको सह लेने से ही हम ईश्वर को प्राप्त कर सकते हैं परंतु उसका सामना करने से अर्थात् हायतोबा मचाने से तो और अधिक ही दुःखी होना पड़ेगा। इसलिये भाइयो! सुख से फूलो मत और दुःख से हिम्मत हारो मत! परन्तु जैसे ईश्वर रक्खे वैसे ही आनंद से रहो!

*****

१९६ कुत्ता जब तक अनजान रहता है तब ही तक जंजीर बँधता है, वैसे ही पाप होते हैं तब ही तक हमको दुःख भोगने पड़ते हैं

कुत्ता जब तक अजाना रहता है, सबके सामने भोंकता है, इधर उधर भाग जाता है, और मालिक की आज्ञा में नहीं रहता है तब ही तक जंजीर से बाँधा जाता है, परंतु जब वह अपना जंगलीपन छोड़ देता है, और मालिक की आज्ञा में, दुनियाँदारी के कामों में और मालिक के इशारों में समझने लगता है तब उसको जंजीर से अलग करके खुला कर दिया जाता है वैसे ही जब तक हम पापी हैं और सच्चे भक्त नहीं बने हैं तब तक ही दुःख है, पीछे कुछ नहीं। भक्त हो जाने पर ईश्वर की इच्छा में अपनी इच्छा मिला देने पर हमको दुःख नहीं है और पाप छोड़ देने पर हमको बंधन भी नहीं है। ये सब झगड़े तो तब ही तक के लिये हैं, जब तक हम सर्वात्मभाव से प्रभु के शरणागत नहीं होते, दुःख से छूटना हो तो अजाने कुत्ते की तरह ईश्वर से अजाने न रहो, परंतु अपने विकारों को छोड़कर

प्रभु के शरणागत हो! इसके सिवाय दूसरा मार्ग दुःख से छूटने का नहीं है। बहुत रोने धोने और हायतोबा करने से दुःख नहीं जाता। दुःख तो पाप को छोड़कर प्रभु के शरणागत होने से ही छूटता है। इसलिये भाइयो! दुःख से छूटने के लिये किसी भी तरह, किसी भी मार्ग से, सर्वात्मभाव से प्रभु के मार्ग में जाओ! प्रभु के मार्ग में जाओ!! प्रभु के मार्ग में जाओ!!!

*****

१९७ चतुर वैद्य ही अपनी बनते कड़वी दवा नहीं देता तब आनंदस्वरूप परमेश्वर विना कारण हमको दुःख क्यों देगा

मनुष्य पर दुःख कब पड़ता है सो तुम जानते हो? दुःख कुछ मजे की चीज नहीं है, वह तो एक लाचारी का उपाय है। चतुर वैद्य ही अपनी बनते रोगी को कड़वी दवा नहीं देता और गरीब से गरीब माता भी अपने बच्चे को हलका खाना नहीं खिलाती। तब तुम विचार तो करो कि, सुख का स्वरूप और आनंद की मूर्ति परमात्मा हमको जानबूझकर दुःख कैसे देगा? वह तो जब हम शास्त्र को न माने, गुरु की परवाह न करें, पूर्वजों के बताये हुए मार्ग पर न चलें, धर्म को एक ओर रख दें, अंतःकरण की सलाह पर पानी फेर दें, स्वर्ग के सुखों से भी न ललचें और नरक से भी न डरें तब लाचार होकर ईश्वर को दुःख का अंतिम उपाय करना पड़ता है और वह भी हमारे भले ही के लिये, क्योंकि दुःख से लाचार होकर ही मनुष्य प्रभु की ओर झुकता है। इसलिये ईश्वर इच्छा से आये हुए दुःख हमको धैर्य के साथ सहन कर लेने चाहिये।

*****

१९८ भक्ति का बदला माँगने की इच्छा रखना ईश्वर पर अविश्वास रखने के समान है

भक्ति के विषय में श्रद्धा में सब बातों का समावेश हो जाता है क्योंकि श्रद्धा है सो रुपये के समान है और दूसरे साधन कौड़ियों के समान हैं। जो हमारे पास रुपया हो तो कौड़ियां बहुत सी आ सकती हैं, परन्तु हम प्रभु से अपनी भक्ति का बदला माँगते हैं सो तो अपने पास का रुपया खो डालते हैं, अपनी सारी पूँजी गँवा देते हैं और फिर भीख माँगते हैं, क्योंकि विश्वास ही भक्ति की पूँजी है। भक्ति के बदले की आशा रखना सोई विश्वास खो देना है, जो हमको परमेश्वर पर पूर्ण विश्वास है तो हमको

उससे भक्ति का बदला माँगने की आवश्यकता क्या है? क्योंकि भक्त का योगक्षेम करने के लिये तो भगवान् बँधा ही हुआ है और हमारी अपेक्षा हमारा कल्याण वह अच्छी तरह से समझता है। इसलिये उसकी इच्छा के अधीन होने में मजा है, उसका सामना करके माँगने में मजा नहीं है। माँगना तो अविश्वास और हलकाई है। भगवान् ने गीता में कहा है:-

"दूरेण ह्यवरं कर्म बुद्धियोगाद्धनंजय ।
बुद्धौ क्षरणमन्विच्छ कृपणाः फलहेतवः ।।"

अ० २ श्लो० ४९

अर्थ—फल की इच्छा विना जो कर्म करना सो ही उत्तम है, फल की इच्छा वाले कर्म तो उतरते दरजे के हैं इसलिये हे अर्जुन! ईश्वर के पाने के लिये इच्छा रहित होकर कर्म कर! भक्ति के बदले की इच्छा रखने वाले तो लोभी हैं!

इसलिये भाइयो! भक्ति के बदले की इच्छा रखकर अविश्वासी मत बनो! परन्तु भगवान् के आसरे का बल रखकर विश्वासी जीवन व्यतीत करना सीखो। संसार सागर तरने का सुगम मार्ग यही है।

३६ पद

प्रभुको भावसों नित भजहु, प्रभुको भावसों नित भजहु ।। टेक ।। सुख दुख द्वंद धर्म है तनके यों मनमें समझहु ।।१।। विषयवासना दुखके कारन तू इनको संग तजहु ।।२।। रामजीवन प्रभुभजन कारण स्वर्ग जायबे सजहु ।।३।।

*****

१९९ वृक्ष के नीचे बैठने से छाया और फल दोनों मिलते हैं, तब ईश्वर की शरण लेने से कितना मिलेगा! इसका विचार तो करो!

वृक्ष जड़ है तब भी हम उसके नीचे बैठें तो हमको छाया देता है और समय आने पर फल भी देता है। मनुष्य हजारों विकारों से भरे हैं तब भी जो हम किसी मनुष्य के आसरे रहें तो वह यथाशक्ति हमारी सहायता ही करता है, जो हम सूखी लकड़ी का आधार पकड़लें तो वह लकड़ी भी हमको पानी में डूबने से बचा लेती है! लकड़ी की बनी नाव ही हमको सकुशल पार उतार देती है, तब जो हम प्रभु की शरण लें, प्रभु की इच्छा के अधीन हो जायँगे तो हमको कितना लाभ हो सकता है! जरा विचार

तो करो वृक्ष से, लकड़ी से और हमारे पटेल तथा सेठ साहूकारों से ईश्वर कितना बड़ा है, कितना श्रेष्ठ है? ऐसे महापवित्र ईश्वर के शरणागत होने में हमको अड़चन क्या है? उसकी शरण में गये पीछे हमको किसी वस्तु के मांगने की जरूरत ही क्यों पड़े? क्योंकि वह नहीं जानता कि हमारा कल्याण किस बात में है क्या हम आज तक उसकी कृपा विना ही जीते रहते हैं? भाइयो! उसकी तो अखण्ड दया है। हमको हमारे कल्याण की आज तक जो वस्तु मिल गयी है उसकी रक्षा करने को और हमारी योग्यता के अनुसार दूसरी देने को वह बंधा हुआ है, उसने ऐसा किया ही नहीं है जिसमें हमको उससे मांगना पड़े। सच्चे भक्त को तो प्रभु के सिवाय प्रभु को छोड़कर दूसरी वस्तु मांगने के योग्य ही क्या है? इसीलिये भाइयो! पूर्ण प्रेम लगाकर अन्तःकरण के विश्वास से और हृदय के बल से सर्वात्मभाव से प्रभु के शरणागत हो! प्रभु के शरणागत हो!!

*****

२०० तप किसे कहते हैं? अपने मन की इच्छाओं को रोकना सो ही तप है

तप किसे कहते हैं? महात्माओं का कथन है कि, अपनी इच्छाओं का भोग देना अर्थात् त्याग करना सो ही तप है, इच्छा को रोकने का उदाहरण यह है:–

किसी मनुष्य ने एक साधु से भिक्षा के लिये अपने घर पर आने को कहा। साधु ने कहा "बाबा! मुझे आज खीर खाने की इच्छा हुई।"

साधु ने कहा "नहीं बच्चा! मैं खीर नहीं खाऊँगा।"

गृहस्थ ने पूछा "महाराज! यह क्या? अभी तो कहते थे कि मैं खीर खाऊँगा और अब कहते हैं कि नहीं खाऊंगा इसका कारण क्या?

साधु ने कहा "बच्चा? मुझको खीर खाने की इच्छा हुई है। इसी से मैं खीर नहीं खाऊंगा।"

गृहस्थ ने पूछा "महाराज! इसका कारण क्या?"

साधु ने कहा "ऐसा करना ही तप है अपनी इच्छाओं को और अपने मन को रोकना ही तप है।"

जो हम अपने मन की इच्छा के अनुसार ही काम करते रहें तो इच्छाएँ कभी पूरी नहीं पड़तीं। एक इच्छा पूरी होने से पहले दूसरी दस इच्छाएं उत्पन्न हो आती हैं, और उन दस में से दूसरी सौ फिर पैदा हो जाती हैं,

परंतु जो एक ही को दबा दिया जाय तो दस बंद हो सकती हैं। इससे अपनी इच्छाओं को रोकना ही तप कहलाता है। इससे वस्तुओं पर से मोह छूट जाता है, विषय फीके लगने लगते हैं, इंद्रियां शांत होती जाती हैं और ईश्वरीय मार्ग में बढ़ना सुगम हो जाता है। इसलिये असमर्थता के कारण यदि हमसे ईश्वर के निमित्त और कुछ न दिया जाय तो चिन्ता नहीं परंतु अपनी इच्छाएँ तो उसको दे ही देनी चाहिये। अपनी इच्छाएँ तो उसको दे देने बाद और कोई भी वस्तु देना बाकी नहीं बचता। मन मारना सीखने से ही ईश्वर की इच्छा के अधीन होना बनता है और ईश्वर को अपनी इच्छाएँ अर्पण की जा सकती हैं। इसी का नाम तप है और वह सात्विक तप है। इस तरह मन को मारना सीखने से व्यवहार के संकट सहना कठिन नहीं जान पड़ता और ऐसा धैर्य रखने से जीवन में बड़ी सरलता होती है। यह तप ऐसा है। जिसको थोड़ा सा बहुत सब ही मनुष्य साध सकते हैं। इसलिये भाइयो! मन को रोकना सीखो! रोकना सीखो!

*****

२०१ लड़का अपने पिता का अपमान करे सो कितनी बुरी बात है? तब हम तो सारे जगत् के पिता का अपमान करते हैं सो कैसा?

दूसरे लोग हमारा अपमान करें तो कम परवाह रहती है परन्तु खास हमारे ही लड़के हमारा अपमान करें तो कितना बुरा लगता है और उसमें भी जिन पर हमने बहुत परिश्रम किया हो और जिनसे अच्छी आशा रखो हो वे पढ़े लिखे जवान लड़के ही जब हमारा अपमान करें तो हमको कितना बुरा लगता है। वैसे ही जो जीव प्रभु में से उत्पन्न हुए हैं और प्रभु से ही अपना जीवन पा रहे हैं वे ही जीव प्रभु का सामना करें और प्रभु का अपमान करें तो प्रभु को बहुत बुरा लगता है। पशु पक्षी कीड़े मकोड़े और वृक्ष वनस्पति आदि जीव बालक समान हैं। बालक पिता की मूंछ खेंचे, गोदी में मूत दे, और रोते रोते लात भी मार दे तो पिता उस अज्ञान बालक को प्रेमवश क्षमा करे देता है, परंतु जवान लड़का अपने पिता की मूंछ खेंच नहीं सकता और न अपने थोड़े से स्वार्थ के लिये पिता को लात मार सकता है। और जो कभी उसने ऐसा किया तो पिता कैसा ही भला हो और चाहे उस लात से उसकी कोई हानि न होती हो तब भी वह अपने पुत्र ही के लाभ के लिये उसे कभी सहन नहीं कर सकेगा। वैसे ही मनुष्य हैं

सो प्रभु के लिखे पढ़े जवान लड़के हैं, और दूसरे प्राणी हैं सो अबोध बच्चे हैं, इसलिये दूसरे प्राणियों के अपराध क्षमा हो सकेंगे, परंतु मनुष्यों के पाप सच्चे पश्चात्ताप विना और सच्चे परमार्थ विना कभी क्षमा नहीं होंगे। भाइयो! समझ बूझकर भी स्वार्थ में अंधे होकर पिता पर लात न फेंको! न फेंको!! परंतु अपनी भूलों पर पश्चात्ताप करके प्रभु से क्षमा मांगो और उन भूलों के बदले में और अधिक अच्छे कर्म करो तो दयालु परमेश्वर तुमको अवश्य क्षमा करेगा।

३७ कवित्त

कबको पुकारत हों सुनो नहीं एको बात,
एहो नंदलाल तुम कैसे प्रतिपाल हो ।
कहैहैं दयाल सो तो दयाहू न देखियत,
मेरी मति ऐसी आछे नीके पशुपाल हो ।।
धन्यो हो नृसिंह रूप तब ही प्रह्लादकाज,
अब तो न लात कछु गोधनमें ग्वाल हो ।
डार्‌यो तेल काननमें कि बस्यो जाय काननमें,
शेषसेज लेट कीधौं पौढे जा पताल हो ।।१।।

*****

२०२ दूसरों को उपदेश करना कुछ बड़ाई की बात नहीं है, परंतु उसके अनुसार स्वयं चलना बड़ाई की बात है

एक पक्के अनुभवी बूढ़े साधू से किसी मनुष्य ने पूछा "महाराज! दुनिया में सबसे सुगम क्या है?"

साधू ने जबाब दिया "औरों को उपदेश देना!"

उसने पूछा "महाराज! उपदेश देना सुगम कैसे है? उसमें तो बुद्धिमानी की आवश्यकता है!"

साधु ने कहा "बच्चा! औरों को उपदेश देते समय तो सब ही बुद्धिमान् बन जाते हैं। क्या तू नहीं जानता कि अपने सगे संबंधियों में या यार दोस्तों में अथवा तो जात जमात में जब कोई मर जाता है तब उसके यहां सब लोग जाते हैं और सैकड़ों बातें धीरज दिलाने की कहते हैं, परंतु जब अपने ही घर में मौत होती है तब कौन धीरज रखता है? व्यभिचारी भी यही कहते हैं कि व्यभिचार नहीं करना चाहिये, चोर भी औरों को चोरी न करने का ही उपदेश देते हैं और शराब को बुरा बताते हैं तब भी

वे लोग अपने २ व्यसन को छोड़ नहीं सकते। लोग बात करने में सैकड़ों बार कहते हैं कि झूंठ बोलना बुरा है परन्तु हम ही कितनी बार झूंठ बोलते हैं सो विचार करो! इससे औरों को उपदेश करना तो सुगम है परन्तु उसको पालना कठिन है। ईश्वर के पवित्र नाम से-उस जन्म में होने वाली ईश्वरीय कृपा से हरिजन बहुत से उपदेशों को पाल सकते हैं, उपदेशों के अनुसार चलते हैं। इसी से दूसरे लोगों की अपेक्षा भक्तों का दरजा बड़ा है। उपदेश देना तो अति सुगम है परन्तु उसको पालना ही कठिन है और उसमें ही मनुष्य की परीक्षा है। महाभक्त तुकाराम का कथन है कि:–

बोले तैसा चाले, त्याची वंदावी पाउलें ।।

अर्थात् जो मनुष्य बोले वैसा ही चले उसके चरण तथा पादु का (खड़ाऊ) भी वंदन करने योग्य हैं तात्पर्य यह कि, कह डालने में कठिनता नहीं पड़ती परन्तु कहने के अनुसार चलने में कठिनाई है। इसलिये शिक्षा को हृदय में धारण कर उसका अनुभव करने का यत्न करो! यही सच्चे भक्त का लक्षण है।

*****

२०३ अपने दोषों को सुधारे विना गुरु बन बैठना पहले से ही नरक का टिकट खरीद लेने समान है

किसी राजा का गुरु मर गया तब वह दूसरा गुरु ढूँढ़ने लगा। परंतु कोई योग्य गुरु मिला नहीं। गुरु का दरजा कुछ ऐसा वैसा नहीं। और गुरु की जिम्मेदारी भी कुछ ऐसी वैसी नहीं। गुरु बन के माल मारना तो सबको अच्छा लगता है परंतु अंत में परिणाम क्या होता है सो भी विचार करना चाहिये? बहुत सी ढूंढ़ ढाँढ़ के बाद राजा ने एक विद्वान् पुरुष को पसंद किया और उससे कहा "आप मेरे गुरु बनिये और स्वर्गवासी गुरु की गदी पर विराजिये।"

तब उस पुरुष ने कहा "मैं गुरु बनने के योग्य नहीं हूं। गुरु की जिम्मेदारी को मैं समझता हूं। इतनी बड़ी जिम्मेदारी अपने शिर पर लेने की मुझमें शक्ति नहीं है।"

राजा ने उत्तर दिया "नहीं नहीं ऐसा नहीं ऐसा नहीं हो सकता मैं तो आपको ही योग्य समझता हूं, कल प्रातःकाल आपको गुरु की गदी पर बैठना होगा।"

राजा की यह बात सुनकर पंड़ित को बड़ी चिंता हुई, रातभर उसको नींद न आई पड़ा २ वह मन में विचार करने लगा "अपने दोषों को सुधारे विना मैं गुरु कैसे बन सकता हूं? मेरा अंत:करण मुझसे इनकार करता है! इस तरह अयोग्य रीति पर गुरु बन बैठना तो पहले ही से नरक का टिकट खरीद लेने के समान है। ये सब लोग मुझको चाहे अच्छा समझते हों परंतु मैं तो इस योग्य नहीं हूं। मैं गुरु नहीं बन सकता और राजा अपनी आज्ञा नहीं बदल सकता! इससे तो उत्तम बात यही है कि, अपनी जीभ काट डालूं तो सब झंझट ही छूट जाय। जीभ काट डालने से राजा मुझे गुरु नहीं बनावेगा और मुझे नरक में जाना नहीं पड़ेगा" बस इतना विचारकर उसने अपनी जीभ काट डाली।

भाइयो! इस प्राचीन सत्य घटना पर से हमको समझना चाहिये कि, गुरु पर कितनी ही बड़ी जिम्मेदारी है। गुरु के पद की जिम्मेदारी समझने वाला साधन कभी गुरु बनने की हिम्मत नहीं कर सकता! परंतु इस तरह के डफोल शंख गुरु बन बैठने की अपेक्षा वे तो अपनी जीभ काट डालना ही अच्छा समझते हैं। इसलिये भाइयो! गुरु बनने से पहले अपने दोषों को सुधारो! खूब शास्त्रों को विचारो!! और तब गुरु बनो!!! तूमड़ी में कंकर भर के गुरु मत बनो! ऐसे गुरु बन बैठने से शास्त्रों का और धर्म का मजा नहीं आता। कहा भी है कि:-

३८ पद

ना जाने व्याकरणी वस्तुको ना जानै व्याकरणी ।। टेक ।। चंदनभार बह्यो खर तोहूं २ ना जानै ताकी करणी ।।१।। मुखपूरित घृत भरचो ताहि पै २ स्वाद न जानै बरणी ।।२।। छपनभोग बनावत तोहू २ करछी स्वाद न धरणी ।।३।। राम जीवन प्रभु पूरिरह्यो जग २ लहै संत निज करणी ।।४।।

*****

२०४ संसार में सब मूर्खों की अपेक्षा पापी अधिक मूर्ख है; क्योंकि वह प्रभु का सामना करता है

संसार में मूर्ख तो बहुत से हैं परन्तु उनमें पापी सबसे बड़ा मूर्ख है, क्योंकि वह प्रभु का सामना करता है। राजा का समाना करने से निर्बल मनुष्य की जैसे खराबी होती है, और सिंह का सामना करने वाली बकरी का जैसे नाश होता है, वैसे ही समर्थ से भी समर्थ और काल के भी काल

प्रभु की इच्छा के विरुद्ध होना भी प्रभु से लड़ने के समान है। अब भाइयो! जरा विचार तो करो कि प्रभु का सामना करके हम क्या लाभ उठा सकेंगे? कहावत है कि, सूरज पर धूल फेंकी जाती है पीछी फेंकने वाले की ही आंख में गिरती है। जब सूरज के सामने फेंकी हुई धूल ही पीछी हमारी आंख में गिरती है तब विचार तो करो कि, जो करोड़ों सूरज को भी बनाने वाला है, उस पर हम धूल फेंकते हैं वह कहां गिरेगी? हम पाप को छोटा सा समझते हैं परंतु उस छोटे से पाप की भयंकरता कितना बड़ी है सो तो विचारो! पाप की अति भयंकरता से कांपकर ही मुनियों ने कहा है कि, संसार में सब मूर्खों से पापी अधिक मूर्ख होता है, क्योंकि संसार के और मूर्ख तो संसार की और २ वस्तुओं के साथ मूर्खता करते हैं परंतु पापी तो स्वयं परमेश्वर के सामने हो जाता है। इससे अधिक मूर्खता दूसरी क्या हो सकती है? प्रभु! हमको पाप से बचा! ! ! पाप से बचा! ! !

*****

२०५ बच्चे खाने को चीज लिये विना माँ का पल्ला नहीं छोड़ते, वैसे ही इच्छित वस्तु न मिले तब तक तुम भी प्रभु का पल्ला मत छोड़ो

बच्चे जैसे खाने की चीज लिये विना माता का पल्ला नहीं छोड़ते वैसे ही हमको भी इच्छित वस्तु पाये विना ईश्वर का पीछा नहीं छोड़ना चाहिये। हम भिक्षुकों के मांगने से घबरा जाते हैं परन्तु परमेश्वर मांगने से नहीं घबराता। उसकी तो यही इच्छा है कि, मनुष्य मुझसे मांगा ही करे और मैं उसको अधिक से अधिक दिया ही करूँ। दो चार भिखारी पीछे पड़े तो हमारे आजकल के तेज मिजाज सेठ बिगड़ पड़ते हैं, मांगने वालों से कायर हो जाते हैं और विना कुछ सोचे विचारे चाहे जैसी गाली दे उठते हैं तथा नौकरों से उनको धक्का लगवाकर निकलवा देते हैं, परंतु याद रखो कि, परम दयालु प्रभु वैसा नहीं करता! वह हमारे मांगने से कभी कायर नहीं होता। वह तो यही चाहता है कि और भी अधिक २ लोग मुझसे अधिक २ मांगते ही जायँ और मैं उनको दिया ही करूं, यही प्रभु की प्रभुता है। हम मांगने से थक जायंगे तो प्रभु हमको कुछ नहीं देगा क्योंकि माता पिता को अपने प्यारे बच्चों की तोतली वाणी मीठी लगती है और उनसे वे ही शब्द बारबार बुलाया करते हैं, वैसे ही प्रभु को

हमारी प्रार्थनाएँ मीठी लगती हैं और वह उन्ही शब्दों को हमसे बारबार कहलाना चाहता है। ईश्वर से बारबार मांगने में हमको कायर नहीं होना परंतु जैसे बच्चे खाना पाये बिना माता का पल्ला नहीं छोड़ते, हमको भी इच्छित वस्तु मिले बिना प्रभु का पीछा नहीं छोड़ना चाहिये। इच्छा करने योग्य वस्तु क्या है सो भक्तों को बताने की आवश्यकता ही नहीं है। सच्चे भक्त तो ईश्वर की कृपा को छोड़कर और कुछ मांगते ही नहीं हैं क्योंकि प्रभु को निष्काम भक्ति प्रिय है और ईश्वर कृपा में और सब इच्छित वस्तुओं का समावेश हो जाता है इसलिये ईश्वर की शरण में जाने की प्रबल इच्छा रखने सिवाय दूसरा कुछ भी सच्चे भक्तों को इच्छा रखने योग्य नहीं है।

पद

सन्तनके संग लार रे तेरी अच्छी बनैगी ।। टेक ।। हंसनकी गति हंसही जाने, कोई न जाने काग रे ।। तेरी० ।।१।। संतनके सङ्ग पूर्ण कमाई, होय बडे तेरो भाग रे ।। तेरी० ।।२।। ध्रुवकी बनी पह्लादकी बनि गई, हरि सुमिरन बैराग रे ।। तेरी० ।।३।। कहत कबीर सुनो भाई साधो, राम भजनसे लाग रे ।। तेरी० ।।४।।

*****

२०६ भूख न लगी हो तब अच्छा खाना भी अच्छा नहीं लगता, वैसे ही पापियों को प्रभु की मोक्ष देने वाली बातें भी अच्छी नहीं लगतीं

जिसको भूख नहीं होती वह खाने में सैकड़ों बहाने निकालता है और अच्छे से अच्छे पदार्थ भी उसके आगे रखे जायँ तो वह कुछ न कुछ दोष ही ढूंढ़ता है। परंतु जिसको सच्ची भूख लगी होती है उसको रूखा सूखा, कच्चा पक्का कैसा ही पदार्थ दिया जाय तो वह उसे भी खुशी के साथ खाता है, वह भी उसको स्वादिष्ट लगता है, वह भी उसको पच जाता है और उसमें से भी उसको पोषण मिलता है। वैसे ही जो ईश्वरीय मार्ग में आना चाहते हैं, और जो सरल हृदय के हैं उनको प्रभु संबंधी साधारण बातें भी मीठी लगती हैं, उनमें से ही उनकी भक्ति बढ़ती है और उन साधारण बातों से ही वे अपूर्व आनंद लूटते हैं। परंतु जिनका हृदय कठोर है और जिनका मन सांसारिक बुरी लीलाओं में फँसा है उनको ईश्वर संबंधी अच्छे विचार कभी नहीं आवे, वे भक्ति की सुगम से सुगम क्रिया

भी नहीं पालन कर सकते। ऐतिहासिक बातें भी वे नहीं मानते और बड़े २ भक्तों की अद्‌भुत शक्ति की कितनी ही सच्ची बातें तथा ईश्वर की अनंत दया और अखूट सामर्थ्य का विचार भी उनको कभी नहीं आता! उनके लिये तो यही समझना कि उनकी सच्चा ज्ञान प्राप्त करने की इच्छा अभी जागृत हुई नहीं है, उनका व्यावहारीक मोह अभी छूटा नहीं है, उनकी अज्ञान की ऊंघ अभी उड़ी नहीं है और ईश्वरीय ज्ञान की भूख अभी उनको लगी नहीं है। वैसे लोग कितने ही सिद्धांतों को नहीं मानते, इससे क्या ईश्वरीय नियम बदल सकते हैं? इसलिये कितने ही उतरते प्रकार के जीवों को देखकर भक्तों को उदास नहीं होना परंतु ऐसा समझना चाहिये कि, ईश्वर कृपा से हमको ईश्वरीय ज्ञान की भूख जल्दी लग आई है और उनको घंटे दो घंटे बाद लगेगी। वे भी हमारे भाई हैं और उनको भी अंत में भूख लगेगी ही। इसलिये इनसे नाराज न हो और उनका तिरस्कार न करो परंतु प्रार्थना करो कि, हे प्रभो! हमारे बंधुओं को तेरी महिमा समझने की समृद्धि दे!

दोहा–भाग्यहीनको ना मिलै, भली वस्तुको भोग ।
आम पकनके दिननमें, होत कागको रोग ॥

*****

२०७ राजा का अपमान करने ही से सत्यानाश हो जाता है, तब ईश्वर का अपमान करने से कैसी भयंकर खराबी होगी सो तो विचार करो

एक जिज्ञासू ने किसी महात्मा से पूंछा "महाराज! पाप किसे कहते हैं?

महात्मा ने उत्तर दिया "बेटा! ईश्वर का अपमान करना अर्थात् ईश्वर की इच्छा के विरुद्ध चलना ही पाप है। हम किसी गरीब आदमी का अपमान करें तो उसको क्रोध आता है। मालिक का अपमान करें तो वह हमको नौकरी से जबाब दे देता है। किसी सरकारी अफसर का अपमान करें तो वह उसी समय हमको पकड़ाकर चाबुकों से पिटवाता है और कैद करा देता है, तथा किसी राजा का अपमान करें तो उसी समय फांसी पाना पड़ता है।

मनुष्य का अपमान करने से ही जब इतना कष्ट भोगना पड़ता है तब राजाओं के राजा और देवों के देव परमेश्वर का अपमान करने से हमको

कितना कष्ट सहना पड़ेगा सो तो विचारो! प्रभु का अपमान करने का नाम पाप है, और ईश्वरीय आज्ञाएँ नहीं पालना, धर्म के नियमों को न मानना सो ईश्वर का अपमान करना है क्योंकि हमारा सनातन धर्म ईश्वर का ही दिया हुआ है इसलिये भाइयो! प्रभु का अपमान न होने की पूरी सँभाल रखो!

हमारे बहुत से भाई स्त्री को अपने बायें पैर का जूता समझते हैं परंतु वह स्त्री भी थोड़ा बहुत अपमान हो गया तो उसे सहन नहीं कर सकती, इतना ही क्यों? हमारे आश्रित पशु पक्षी भी अपमान सहन नहीं कर सकते। तब अनंत ब्रह्मांड़ जिसके आश्रित हैं वह समर्थ प्रभु हमारे अपमान को कैसे सहन कर सकेगा? हम अपने जरा से अपमान से ही जब बिगड़ उठते हैं, तब काल के भी काल समर्थ प्रभु का हम नित्य अपमान करते हैं अर्थात् नित्यप्रति कुछ न कुछ पाप करते हैं उससे वह कितना रुष्ट होगा और उसके रुष्ट होने का परिणाम क्या होगा सो भी तो विचार करो! और तो क्या परंतु हमको तो वह विचार करने में भी डर लगता है इसलिये भाइयो! प्रभु की इच्छा के सामने मत हो! प्रभु का अपमान मत करो! प्रभु का अपमान मत करो! धर्म के नियमों से टेढ़े मत चलो! धर्मके नियमों के विरुद्ध मत चलो!

*****

२०८ मीठे पानी की आशा से कुँआ खुदाने में जो खारा पानी निकल आवे तो कितना दुःख होता है? वैसे ही प्रभु ने हमको धर्म करने भेजा है परंतु हम पाप करते हैं इससे ईश्वर को कितना दुःख होता होगा

किसान बड़ा परिश्रम करके खेत हांकता है, और खर्च करके अच्छा बीज बोता है सो इसी आशा से कि, उसमें खेती अच्छी हो, परंतु खेती के बदले जो उसमें घास पैदा हो जाय अथवा कुछ भी पैदा न हो तो उसको कितना दुःख हो? मीठा पानी मिलने की आशा से बड़ा खर्च करके कुँआ खुदाया जाय और उसमें खारा पानी निकले तो कितना रंज हो? बहुत सा समय, बहुत सा श्रम और बहुत सा खर्च करके बच्चे को पढ़ा लिखाकर होशियार किया जाय और फिर वह बदचलना निकल आवे तो पिता को कितना भारी दुःख हो?

इसी तरह ईश्वर ने कृपा करके हमको यह मनुष्ययोनि दी है, अच्छे देश में जन्म दिया है और उज्ज्वल धर्म दिया है। इतने पर भी जो हम सीधे मार्ग पर न चलें और पापकर्म करें तो ईश्वर को बुरा लगे बिना कैसे रह सकता है? ईश्वर की यह इच्छा है कि, हम संसार में आकर परमार्थ में लगे और इसी शर्त पर प्रभु ने हमको मनुष्य अवतार दिया है परंतु हम अपने कुछ स्वार्थ के लिये प्रभु की इच्छा को एक कोने में रख देते हैं और अपनी शर्त पर अपने ही हाथ से पानी फेर देते हैं, यह हमारी कितनी बड़ी नीचता है? इससे ईश्वर को कितना बुरा लगेगा? और ईश्वर के कोप से हमारी कैसी कैसी खराबी होगी सो तो विचार करो? इसलिये भाइयो! हजार बात की एक बात यह है कि, जैसे बने वैसे पाप से बचने का यत्न करो!

पद राग गौड़ी

कौन कुटिल खल कामी । मोसम कौन कुटिल खल कामी ।।टेक।। तुमसों कहा छिपा करुणानिधि! तुम उर अंतरयामी ।।मोसम०।।१।। भरि भरि उदर विषय रस पीवत, जैसे सूकर ग्रामी । जो तन दियो ताहि बिसरायो, ऐसे नमकहरामी।।मोसम०।।२।। जहां सतसंग तहां अति आलस, विषयिन सँग बिसरामी । श्रीहरिचरण छाँडि औरनको, निशिदिन करत गुलामी ।।मोसम०।।३।। पापी पतित अधम परनिंदक, सब पतितन में नामी । कीजे कृपा दास तुलसी पर, सुनिके श्रीपति स्वामी ।।मोसम।।४।।

*****

२०९ यहां पर हमारे पाप छोटे छोटे बीज समान हैं परंतु प्रभु के दरबार में पहुँचकर धर्मराज के पास न्याय के समय बड़े वृक्ष हो जाते हैं

बड़ के छोटे बीज में से जैसे बड़ा वृक्ष उत्पन्न हो जाता है और अग्नि की छोटी सी चिनगारी से जैसे बड़ी भयंकर आग पैदा हो जाती है। वैसे ही पाप को भी कभी छोटा नहीं समझना चाहिये। पाप यहाँ पर बीज समान है इससे हमको छोटा और निर्जीव सा जान पड़ता है, परंतु ईश्वर के दरबार में पहुँचते ही न्याय के समय वह वृक्ष समान बड़ा और अग्निसम भयंकर हो जाता है, इतना ही नहीं परंतु एक पाप में से दस पाप उत्पन्न हो जायँगे और उन दस में से दूसरे सौ पाप निकल पड़ेंगे, क्योंकि पाप एक, दो, तीन, चार, पाँच के क्रम से नहीं बढ़ते परंतु एक, दस, सौ,

हजार, दस हजार, लाख के क्रम से बढ़ते हैं इसलिये पापों से बहुत कुछ सँभालना और बचना चाहिये। हम हैजे और प्लेग के कीड़ों से जितने डरते हैं उससे भी पाप से हजार गुना अधिक डरना चाहिये क्योंकि उन जंतुओं से तो केवल कुछ जल्दी ही मरना पड़ता है, परंतु पापों से हजारों और लाखों बरस तक नरक में पड़ना पड़ता है। इसलिये भाइयो! पाप से डरो और बचने का यत्न करो!

*****

२१० पापियों के अच्छे कर्म बृथा नहीं जाते, परंतु भक्तों के अच्छे कर्मों से उसकी कीमत थोड़ी होती है

याद रखना कि, पापी मनुष्य के भी अच्छे कर्म निष्फल नहीं जाते यद्यपि उन कामों की कीमत कम हो जाती है तब भी वे निरर्थक तो नहीं जाते देखो!

दो राजाओं में लड़ाई हुई। उनमें से एक के बहुत से मनुष्य मर गये। तब उसने अपनी रक्षा के लिये उन मरे हुए मनुष्यों की लाशों से किला बनाय और उसकी आड़ में से गोली चलाना शुरु किया। फल यह हुआ कि, शत्रुओं की गोलियाँ उन लाशों में लगकर अटकने लगी और इस तरह पर उसकी आड़ में बैठी हुई सेना बच गयी। यद्यपि मुरदे शत्रुओं के सामने खड़े होकर लड़ते नहीं थे परंतु शत्रुओं की गोली रोकने में तो वे काम ही आये, वैसे ही पापियों के भले काम भी उन लाशों के समान हैं वे शत्रुओं की गोली थोड़ी देर सह सकते हैं परंतु शत्रुओं को मारकर नहीं भगा सकते अर्थात् भले काम करने से पापीजन कितने ही नये पापों से बच सकते हैं परंतु पाप की वासना को निर्मूल नहीं कर सकते और प्रभु के पास पहुँचा नही सकते, इसलिये पापियों के अच्छे काम भी मुरदों के समान हैं परंतु वे मुरदे हैं तब भी शत्रुओं के घाव सहने और उनकी ओट में खड़े हुए लोगों को बचानेवाले हैं। इस तरह अच्छे काम कभी व्यर्थ नहीं जाते इस बात का विश्वास रखकर पापियों को भी अच्छे काम करने चाहिये। ऐसा कभी मत मानो कि पाप से भले काम भी व्यर्थ जाते हैं। भले काम करने से कभी मत हटो! अच्छे काम को सदा करते ही रहो!

पापियों के और भगवदीय जीवों के अच्छे काम में अंतर इतना ही है कि पापियों के अच्छे काम तो मुरदे के समान हैं और धार्मिकों के अच्छे काम लड़नेवाले शूरवीर योद्धा समान हैं अर्थात् पापीजन अपने भले कामों

से दूसरे पापों से बचते हैं परंतु भक्तों के भले कामों से तो उनके अंतःकरण की वासनाएँ ही जल जाती हैं जिसका परिणाम यह होता है कि, पापियों के भले काम तो उनको शत्रुओं की मार से बचाते हैं परंतु धार्मिकों के भले काम शत्रु का ही समूल नाश करते हैं, अच्छे कामों में इतना बड़ा बल है और जिसमें भी धर्मार्थ किये हुए प्रभुनिमित्त किये हुए कामों में तो अनंत गुना बल है इसलिये भाइयो! पाप को छोड़कर ईश्वर के निमित्त अच्छे काम करो! अच्छे काम करो!

*****

२११ विष थोड़ा सा खाया हो तब भी हानि ही करता है वैसे ही पाप को छोटा नहीं समझना, छोटा सा पाप भी अंतःकरण में शांति नहीं रहने देता

बहुत बड़ी भूल तो हम यह करते हैं कि पाप को छोटा गिनते हैं। हम ऐसा समझते हैं कि जरा सी झूँठ बोल लेने में क्या होता है, जरा सा भोग विलास कर लेने में क्या होता है? कभी क्रोध आ गया तो क्या? कोई पापी विचार मन में आ गया तो क्या? एक दिन देवदर्शन नहीं हुए तो क्या? एक आधा व्रत न हुआ तो क्या? एक दिन माला नहीं फेरी तो क्या? और कभी अपना मतलब निकालने के लिये ढोंग बताना पड़ा तो क्या? ये तो यों ही चला करते हैं। ऐसी जरा-जरा सी बातों में पाप नहीं लग जाता।

बहुत से आदमी ऐसा मानते हैं परन्तु यह बड़ी भूल की बात है, क्योंकि प्राचीन विद्वान् कह गये हैं कि पाप को छोटा नहीं समझना। सांप के बच्चे को छोटा समझकर नहीं छोड़ देना, क्योंकि चाहे वह छोटा है परंतु तुमको पूरा कर डालने के लिये तो बहुत है और विष को भी छोटा नहीं समझना क्योंकि प्राण लेने के लिये तो वह भी बहुत है। इसी तरह पाप को भी छोटा नहीं समझना चाहिये। छोटा सा पाप भी सत्यानाश कर देता है, क्योंकि वह शराब पीने के व्यसन के समान है, शराब पीने की जैसे नित्यप्रति इच्छा बढ़ती जाती है वैसे ही पाप करने की भी प्रवृत्ति दिन प्रतिदिन अधिक ही अधिक होती जाती है। इसलिये पाप को हलका समझने की कभी भूल नहीं करनी चाहिये। जो बचने का है सो तो नित्य को छोटे पाप से ही है। थोड़ा बहुत मिलकर भी बहुत बड़ा संग्रह हो जाता है और तब उससे ही बड़ा पाप करना भी सूझता है। इसलिये जिनको हम

छोटा समझते हैं उन छोटे पापों से ही बचने का यत्न करो तो बड़े पापों से आप ही आप बच जाओगे! हमको अधिक सम्हालकर रहना है सो तो इन छोटे छोटे पापों से ही! क्योंकि ये ही हमारे हाथ से बारबार बनते रहते हैं। बड़े पाप तो रोज रोज नहीं होते और होते हैं सो भी किसी किसी पापी ही के हाथ से, परंतु छोटे छोटे पाप तो प्रत्येक मनुष्य से बन जाते हैं, क्योंकि हम उनको छोटे गिनते हैं। याद रखो कि जिन बातों को हम छोटा गिनते हैं वे ही छोटे छोटे पाप बड़े पापों का दरवाजा होता है। भाइयो! यह दरवाजा बंद करो! पाप को छोटा न मिलने से यह दरवाजा बंद होता है इसलिये पाप को छोटा गिनने की भूल मत करो! पाप कभी छिपा नहीं रहने का!

३९ पद

छुपि पाप करै कहा जानी, प्रभुसौं तुव एक न छानी ।।टेक।। दिन अरु रात्रि सूर्ज अरु चन्दा ऐसे दस निगरानी ।।१।। जो प्रभु पूरि रह्यो जगमाहीं, तासों कोउ न लुकानी ।।२।। यों मन समुझि पाप पोटरिया, काहे शिर धारैं अज्ञानी ।।३।। रामजीवन खुलि है यह आगे चित्रगुप्त केरी दीवानी।।४।।

*****

२१२ प्रभु की बातें छोड़कर व्यवहारी झगड़ों में पड़े रहना मिष्टान्न छोड़कर मट्टी खाने के समान है

हम ऐसे बहुत से आदमियों को पहचानते हैं कि जिनको राख, मट्टी, कोयला खाने की आदत होती है। जिनको ऐसी चीजें खाने की आदत होती है वे अच्छे से अच्छा खाना पाने पर उस आदत को नहीं छोड़ सकते, वैसे ही हमारे बहुत से भाई बहनें ऐसी हैं कि, जिनको प्रभु की उत्तम से उत्तम बातें भी अच्छी नहीं लगतीं और व्यवहार की हलकी से हलकी बातें भी अच्छी लगती हैं। हम भी अब तक थोड़े बहुत वैसे ही बने हैं। दूसरों के व्यभिचार की, दूसरों के लड़ाई की, दूसरों के मुकद्दमें की और दूसरों की रीति भांति की बातें सुनना हमको बहुत अच्छा लगता है, परंतु प्रभु की बातें सुनने में हमको अरुचि होती है, आलस्य होता है, नींद आती है और सच्चे झूंठे इधर उधर के अनेक बहाने उठ खड़े होते हैं। अभी हममें प्रभु की बातें सुनने का प्रेम जागृत नहीं हुआ है इससे उसमें रस नहीं आने लगा है–

राख, मट्टी, कोयला खाने की आदत वालों की हम हँसी करते हैं और उन पर तर्स खाते हैं परन्तु खुद हम ही इस कहावत को पूरा करते हैं कि "गधे को शक्कर अच्छी नहीं लगती और घूड़े पर के जूंठे पत्ते चबाना अच्छा लगता है।" प्रभु के गुण की, प्रभु के यश की और प्रभु के आनंद की बातें छोड़कर हम दिन रात सांसारिक दंत कथाओं में लगे रहते हैं इसका तो कुछ विचार करो! औरों की ऐब निकालना सबको ही आता है परंतु अपना घर भी तो देखो! हमारी रुचि कैसी हलकी है सो सोचो। राख मट्टी खाने वाले तो केवल निर्दोष राख और मट्टी ही खाते हैं परंतु हम तो लोगों की निंदा करके दूसरों के पाप को खाते हैं सो तो समझो! इस पाप से छूटने का सुगम उपाय तो यही है कि जहां तक बने वहां तक व्यवहारिक निरर्थक बातों से बचो और भगवान् का यश गाने में लगो! भगवान् का यश गाने में लगो!

४० पद

रे मन जन्म पदारथ जात। बिछुरे मिलन बहुरि कब ह्वै है, ज्यों तरुवरके पात ॥ टेक ॥ सुनत बात कफ कंठविरोधी, रसना टूटी बात। प्राण लिये जम जात मूढ मति देखत जननी तात ॥ छिन इक माहिं कोटि जुग बीतत, पीछे नरककी बात। यह जग प्रीति सुवा सेमरको, चाखतही उडिजात ॥२॥ जमके फंद नहीं पडिवो रे, चरणन चित्त लगात। कहत सूर वृथा यह देही, अंतर क्यों इतरात ॥३॥

*****

२१३ स्वर्ग का टिकट तो इकट्ठा ही मिलता है थोड़े दिन वेश्या रहकर फिर सती होना नहीं बन सकता

यह एक बहुत जरूरी याद रखने की बात है कि, स्वर्ग के मार्ग में बीच में ठहरने को मुकाम नहीं है। स्वर्ग का टिकट तो इकट्ठा ही मिलता है। हम यात्रा करने जाते हैं तब मार्ग में अनेक मुकामों पर उतरते और टुकड़े २ करके टिकट खरीदते जाते हैं परंतु स्वर्ग जाने के लिये टुकड़े २ करके टिकट नहीं मिलता, वहां तो साबित एक ही टिकट मिलता है। तात्पर्य यह कि, चार दिन भक्ति करके छोड़ दी जाय बरस छः महीने पीछे फिर भक्ति करना जारी कर दिया जाय, किसी प्रकार का सुख या दुःख आ पड़े तो भक्ति छोड़ दी जाय, अवकाश मिलने पर शुरू कर दी जाय, इस तरह पर भक्ति नहीं होती।

संत का और सती का धर्म एक सा है। कोई भी स्त्री थोड़े दिन दुराचारिणी रहकर फिर सती नहीं हो सकती, वैसे ही बीच बीच में थोड़े २ दिन भक्ति छोड़ देने से भक्त नहीं हो सकता, और स्वर्ग में गया नहीं जा सकता। इसलिये भक्ति का तार तो साबित ही लगातार ही रखना चाहिये, क्योंकि स्वर्ग का टिकट टुकड़े २ होकर नहीं मिलता किंतु साबित एक ही बार में मिलता है। इसलिये भाइयो! अखंड़ भक्ति करो! अखण्ड भक्ति करो!! भक्ति के तार को टूटने मत दो!!!

*****

२१४ गढ़े के पानी को एक भैंसा खराब कर डालता है, वैसे ही धर्म का ज्ञान न रखने वाले भक्तों को परधर्मी लोग शंका शील बना देते हैं, इसलिये धर्म का ज्ञान सीखो

प्रत्येक भक्त को अपने धर्म के सिद्धान्त और उसका रहस्य अवश्य जानना चाहिये। जब तक धर्म का पूरा रहस्य न समझा जाय तब तक प्रभुमय जीवन नहीं हो सकता, और जब तक धर्म के सिद्धान्त अच्छी तरह न समझे जायँ तब तक मन की शंकाओं का ठीक २ समाधान नहीं हो सकता, और जब तक शंकाओं का समाधान न हो तब तक पर धर्मियों के जाल में फँस जाने का भय रहता है, इसलिये भक्तों को अपने धर्म के संबंध में अधिक नहीं तब भी आवश्यकता के योग्य ज्ञान अवश्य प्राप्त कर लेना चाहिये। जैसे थोड़े पानी के गढ़ों में गिरकर भैंसे पानी को गंदा और मैला कर देते हैं। वैसे ही थोड़े ज्ञान वालों के मन को भी पर धर्मियों को टेढ़े सीधे प्रश्न द्वारा भ्रमित कर देने में देर नहीं लगती, परंतु जैसे बड़ा तालाब भैंसों के झुंड़ से भी गंदा नहीं हो सकता वैसे ही ज्ञानी भक्तों का मन अपने धर्म के लिये दूसरों की विरुद्ध टीका से कभी चलित नहीं होता। अपने धर्म पर विश्वास बढ़ाने के लिये और अपने भक्ति भाव को दृढ़ करने के लिये भक्तों को और जिज्ञासुओं को अपने धर्म का पक्का ज्ञान प्राप्त करना चाहिये। जो भक्त अपने प्रिय धर्म का ज्ञान प्राप्त करने पर ध्यान नहीं देते वे कभी २ उस गढ़े की तरह भैंसे के पड़ने से ही गदले—भ्रमित हो जाते हैं। इसलिये भक्तों को छोटा सा गढ़ न रहना परंतु बड़ा सागर बनने का यत्न करना चाहिये। यह बात धर्मशास्त्र के ज्ञान से हो सकती है। भाइयो! जो पक्का भक्त बनना हो तो धर्म का ज्ञान प्राप्त करने का यत्न करो!

२१५ गुरु का कर्तव्य सड़ा हुआ कुत्ता और राम की बात

गुरु बन के पराया माल उड़ाना किसको अच्छा नहीं लगता? संसार में मान पाना, शिष्यों से पूजा कराना और इच्छा अनुसार चलना किसको अच्छा नहीं लगता? संसार की उत्तम से उत्तम वस्तु जब चाहो तब सामने मौजूद है, राजा महाराजा और सेठ साहूकार आकर पैरों में गिरते हैं। और जो जबान से निकले वही कायदा माना जाता है तब कहो गुरु बनना किसको अच्छा नहीं लगता? परंतु योग्यता विना ऐसा अधिकार भोगने का कैसा बुरा परिणाम निकलता है तो भी तुम जानते हो? इसके लिये रामायण में एक उदाहरण लिखा है कि–

भगवान् रामचंद्र स्वधाम पधारते समय सारी अयोध्या को साथ लेकर सरयू पर पहुँचे तब उन्होंने वहां से नगर में आदमी भेजे और निश्चय कराया कि कोई अयोध्या में रह तो नहीं गया? लौटकर आदमी ने खबर दी "महाराज! एक कुत्ता बाकी है! वह एक दुर्गंधि वाली गली में पाखाने के पास पड़ा है। उसकी दशा बहुत खराब है। सारा शरीर उसका गल गया है। देह में हजारों कीड़े पड़ रहे हैं और बुरी बास आती है।"

रामचंद्रजी ने आज्ञा दी "उसे बड़ी सँभाल के साथ मेरे पास ले आओ!"

दूत जाकर कुत्ते को उठा लाया। उसे देखकर लोगों को बड़ी दया आई। उन्होंने रामचंद्र से पूछा "महाराज! इसका ऐसा क्या अपराध है, जिसके लिये इसको इतना दुःख भोगना पड़ता है?"

रामचंद्र ने उत्तर दिया "यह कुत्ता पूर्व जन्म में गुरु था और इसके शरीर में जो कीड़े पड़े हैं वे इसके शिष्य थे। उन अज्ञानी शिष्यों का माल इसने खूब खाया परंतु उनको अच्छे मार्ग पर नहीं लगाया इससे अब वे शिष्य कीड़े बनकर उसके शरीर को इस जन्म में खाये डालते हैं।"

जो गुरु बन बैठे हो और जो बनने की इच्छा रखते हो उसको रामचंद्र की यह बात खूब ध्यान में रखनी चाहिये। रामचंद्र कहते हैं कि, वैसे गुरु तो शिष्य का केवल रुपया ही खाते हैं परंतु जो वे उचित रीति से नहीं खाते हैं तो शिष्य तो उन गुरुओं का रुधिर, मांस और जीवन तक खा जायंगे इसलिये भाइयो! विचार करो कहीं ऐसा न हो जाय कि,

लोभी गुरु आलसी चेला। दोनों नरक में ठेलम ठेला।।

*****

२१६ हम थोड़ा सा सुख पाने पर ही अपने बंधुओं को भूल जाते हैं परंतु प्रभु अपने अनंत सुख में भी हमको नहीं भूलता

एक सेठ किसी कामवश कहीं गया था वहां से लौटते समय मार्ग में उसको एक ऊजड़ मैदान मिला। उस मैदान में उसको ४–५ दिन तक सफर करनी पड़ी। जाड़े की ऋतु थी और जिसमें भी जाड़ा उन दिनों तेज पड़ता था इससे उसको जाड़े का अपने शरीर से अनुभव करना पड़ा। उस मैदान में बसने वाले गरीब लोगों को जाड़े से दुःखित देखकर उसको बड़ी दया आई, जिससे उसने उन लोगों से कहा कि मैं तुम्हारे तापने के लिये लकड़ियों की गाड़ियां भर के भिजवाऊंगा, साथ ही उसने अपने साथ वाले आदमियों से घर पहुँचने पर लकड़ी भेजने की याद दिलाने के लिये भी कह दिया।

थोड़े दिन में वह घर पहुँच गया, घर पर कुछ अधिक जाड़ा नहीं पड़ता था और तिस पर भी पैसे वाले को सब तरह की सुविधा रहती है तब उसको जाड़े की खबर ही क्यों पड़ने लगी? घर में अच्छी अँगीठियां, काश्मीरी दुशाले, काच की खिड़कियां और गरम कपड़े तथा खाना तैयार हो वहां ठंड़ विचारी कैसे आ सकती है? घर पहुँचते ही सेठ साहब को गरमी मिल गयी इससे उस मैदान में लकड़ी भेजने की बात याद न रही। नौकर ने याद भी दिलाई परंतु उत्तर यही मिला कि अब तो मुझको गरमी लगने लग गयी इससे वहां भी गरमी आ गयी होगी फिर लकड़ी भेजने की क्या जरूरत है?

भाइयो! हम भी उस सेठ जैसे ही हैं। हमको भी जब कुछ अनुकूलता अथवा कुछ सुख मिल जाता है तब अपने पहले दिनों को और अपने गरीब भाइयों को भूल जाते हैं। दयालु प्रभु ही एक ऐसा है कि, जो अपने अनंत सुखों में भी हमको नहीं भूलता और मोक्षधाम छोड़कर तथा ईश्वरता छोड़कर हमारे लिये अवतार धारण करता है उसकी दया देखो! प्रभु की अनंत दया देखो! और हमारी नीचता देखो इसलिये भाइयो! जैसे बने वैसे अपने मन की नीचता छोड़ कर प्रभु की दया में जाओ! प्रभु की शरण में जाओ और थोड़ा सा सुख मिल जाने ही पर अपने गरीब भाई बन्धुओं को मत भूलो! मत भूलो!! मत भूलो!!!

*****

२१७ धर्म जानते हुए भी औरों को न बताना बड़ा पाप है इसलिये भक्तों को चाहिये कि औरों को धर्म का उपदेश दें

जो हमारे पास कोई अच्छी दवा तैयार हो अथवा हम जानते हों कि, अमुक दवा अमुक रोग पर अच्छी है तो आवश्यकता पड़ने पर वह दवा देना या बताना जैसे हमारा कर्तव्य है वैसे ही धर्म के तत्व बताना और समझाना भी हमारा कर्तव्य है, क्योंकि उपदेश विना ज्ञान नहीं मिलता। इसलिये उपदेश अवश्य करना ही चाहिये। गांव में हैजा फैल रहा हो और हमारे पास हैजे की दवा रखी हो परन्तु जो हम किसी से यह बात न कहें तो कोई जान थोड़ा ही सकता है? यह बात न जताने से दवा होते हुए भी बहुत से मनुष्य मर जायँ तो क्या कम पाप है? वैसे ही लोग अधर्म में फँसे हो और हम धर्म को जानते हो तब भी उनको धर्म का मार्ग न बतावें तो वह भी एक बड़ा अपराध है, उपदेश करने में और धर्म का मार्ग बताने में प्रभु का मार्ग चौड़ा और भपकेदार करने में भक्तजनों को और गुरुजनों को बिलकुल भी आलस्य नहीं करना चाहिये। जो तुम प्रसंगोपात्त बारबार उपदेश किया करोगे तो किसी न किसी दिन मनुष्यों पर उसका अच्छा असर हुए विना रहेगा ही नहीं। धर्म का उपदेश तो सदा करते ही रहना चाहिये! पृथ्वी पर जो जो धर्म बहुत फैले हुए हैं वे सब उपदेश से ही फैले हैं। इसलिये धर्म का उपदेश करने में देर मत करो! देर मत करो!

२१८ किसी को आग में से या कुएँ में से बचाना जैसे धर्म है वैसे ही धर्म का उपदेश करना कराना भी ईश्वर का प्यारा काम है

किसी को आग में बचा लेना जैसे दया का काम है, किसी को पानी में डूबने से बचा लेना जैसे परमार्थ का काम है। किसी को घाव पर मरहम पट्टी करना जैसे भला काम है धंधे विना भटकते लोगों को रोजगार लगाना जैसे धर्म का काम है, भूखे को अन्न देना जैसे मनुष्य का कर्तव्य है, और किसी को भी आवश्यकता के समय अपने से बनती मदद देना जैसे ईश्वर का प्यारा काम है वैसे ही औरों को उपदेश करना भी एक धर्म का पवित्र कर्तव्य है, और ईश्वर का प्यारा काम है, क्योंकि उपदेश से भटकते

हुओं को मार्ग मिल जाता है, पापियों के पाप छूटते हैं, भक्तों को अंत:करण की शांति मिलती है व्यवहार में फँसे हुए लोग अपने दोषों को समझने लगते हैं मनुष्यों में अपनी शक्तियों का उपयोग करने का बल आता है, दु:खियों को प्रभु के नाम से धीरज मिलती है, और गंगा यमुना में स्नान करने से जितनी शांति होती है उससे भी अधिक मन की शांति उपदेश से होती है। इससे धर्म का उपदेश करना बहुत बड़ा पवित्र और परमार्थ का काम है। इसलिये ऐसा यत्न करो जिसमें धर्म के अच्छे से अच्छे उपदेशक बढ़ें!

जिस धर्म में उपदेशकों को पूरा २ आश्रय मिलता है उसी धर्म की और सब धर्मों से अधिक उन्नति भी होती है। बौद्ध धर्म की उन्नति प्राचीन काल में उपदेशकों ही से हुई थी, महात्मा शंकराचार्यजी ने भारत में से बौद्धधर्म को गारत किया सो भी उपदेश से ही, और आजकल संसार में ईसाई धर्म फैलता जाता है सो भी उपदेशकों को आश्रय मिलने से ही है। सैकड़ों वर्षों से हजारों आपत्तियां भोगने पर भी हिंदू धर्म अब तक ठहरा हुआ है इसका कारण भी उपदेशक ही है। वे उपदेशक साधु ब्राह्मण हैं। उनको मिलने वाले आश्रय ही से हिंदू धर्म ठहरा हुआ है। परंतु अब समय बदल गया है इससे समय के अनुसार उपदेशक भी रखने चाहिये तब ही धर्म की वृद्धि हो सकती है, यह बात सब धार्मिक भाइयों को और उनमें भी विशेष करके धनवानों को अवश्य याद रखना चाहिये।

राग बिहाग

क्यों रे नींद भर सोया, मुसाफिर! क्यों रे नींदभर सोया ।। टेक ।। मनुषा देहि देवनको दुर्लभ, जन्म अकारथ खोया ।। मुसा० ।।१।। धन दारा जोबन सुत तेरा, वामें मन तेरा मोह्या ।। मुसा० ।।२।। सूरदास प्रभु चलेहि पंथको, फिर नैनाभर रोया ।। मुसा० ।।३।।

*****

२१९ ईश्वर के गुणों का पार नहीं आता!

एक बच्चा अपनी माता के साथ समुद्र किनारे सैर करने गया वहां जाकर माता तो किनारे पर बैठ गयी और बच्चा खेलने लगा। खेलते २ वह समुद्र में से चुल्लू भर के पानी ले आया और बोला "माता! देख तो मैं समुद्र लाया?"

माता ने कहा "हां बेटा! ठीक है! यह भी समुद्र का ही पानी है, परंतु

समुद्र तो अभी पीछे है। इतने से चुल्लू में समुद्र थोड़ा ही आ सकता है?"

बच्चा फिर दूसरा चुल्लू भर लाया और बोला "माँ मैं समुद्र लाया!"

तब भी माता ने पहले जैसा ही जबाब दिया। इस तरह खेल ही खेल में वह बच्चा कई चुल्लू भर लाया परंतु वह माता ने उसे समुद्र लाना नहीं माना इसी तरह मनुष्य प्रभु के चाहे जितने गुण गान करे परंतु इससे ईश्वर के गुणों का पार नहीं आ सकता और न उसके पूरे २ गुण गाने में आ सकते हैं सब भाइयों को भली भांति याद रखना चाहिये कि, हम प्रभु के चाहे जितने गुण गान करे परंतु वह तो समुद्र में चुल्लू भर के पानी लाने के ही बराबर है। इसीलिये पुष्पदंत आचार्य ने महिम्नस्तोत्र में कहा है–

"असितगिरिसमं स्यात् कज्जलं सिंधुपात्रे
सुरतरुवरशाखालेखिनी पत्रमुर्वी ।।
लिखति यदि गृहीत्वा शारदा सर्वकालं
तदापि तव गुणानामीश पारं न याति ।।"

अर्थ–नीलगिरि पर्वत समान कज्जल की स्याही बनाई जाय महासागर की दवात बनाई जाय, सब देवताई वृक्षों की कलम बनाई जाय, पृथ्वी की सतह का कागज बनाया जाय, और सब में बढ़िया से बढ़िया लिखने वाली सरस्वती सदा लिखती रहे तब भी हे ईश्वर! तेरे गुणों का पार नहीं आता।

इंद्रविजय छंद

वेद थके कहि तंत्र थके, कहि ग्रंथ थके निशि वासर
गाते । शेष थके, शिव इंद्र थके पुनि, खोज
कियो बहु भाँति विधाते ।। पीर थके पुनि, मीर
थके, पुनि धीर थके बहु बो ले गिराते । सुन्दर
मौन गही सिध साधक कौन कहै उसकी मुख बाते ।।

*****

२२० पैसे से आत्मा को शांति नहीं मिलती

एक मूँजी सेठ मरने को पड़ा तब उसके संगे संबंधियों ने उससे वसियतनामा कर जाने को कहा, परन्तु उसके गले बात न उतरी। उसकी

किसी को भी पैसा दे जाने की इच्छा नहीं थी, इससे वह यही जबाब देता था कि, अभी देर है। होते होते उसका रोग बढ़ गया और पैसे के लिये उसको बड़ा दुःख होने लगा, तब तो उसके रिस्तेदारों ने थैलियाँ उसके पास ला धरी, उसने उठाकर थैली अपनी छाती पर रख ली। रख तो ली परन्तु उसका बोझ उससे सहा नहीं गया और बोझ के मारे श्वास रुकने लगा तब लाचार होकर, उदास होकर, कायर होकर उसने अपने ही हाथ से थैली कलेजे पर से हटा दी। अन्त में पैसे की चिंता ही चिन्ता में बिना वसियतनामा लिखे ही सेठजी चलते बने।

मक्खीचूस की इस सच्ची बात पर से हमको समझना चाहिये कि मरते समय अकेला धन सुख नहीं दे सकता, किन्तु धर्म ही सुख देता है, इसलिये जो धन हो तो धन से धर्म प्राप्त करो! धर्म प्राप्त नहीं करोगे तो धन से उलटा दुःख ही होगा। याद रखो कि धन कमाने में दुःख होता है, धन की रक्षा करने में दुःख होता है और धन को छोड़ जाने में भी दुःख होता है। उसको तो केवल धर्म के कामों में खर्च किया जाय तब हीं सुख होता है। भाइयो! धन को धर्म के काम में लगाने का एक भी मौका मत जाने दो! क्योंकि पंड़ितों ने कहा है कि धन की तीन गति हैं दान, भोग और नाश। जिसने धन का दान नहीं किया और भोग भी नहीं भोगा उसके धन का तो शहद की मक्खियों के छते की तरह नाश ही होता है इसलिये दान करो! दान करो!! दान करो!!!

धन गाड़ रखने से जितना होगा उतना ही रहेगा, सूद पर देने से कई वर्षों में थोड़ा बहुत बढ़ेगा परन्तु धर्म में खर्च करने से तो एक का अनन्त गुना फल होगा। इतना ही नहीं परन्तु तुरन्त ही हृदय की शांति होगी और जो नहीं खर्च करोगें तो मरते समय धन का ढ़ेर छोड़कर जाते खजाना भरा होते हुए भी ईश्वर के पास खाली हाथ जाते न सहन हो सकने योग्य वेदना ही होगी। इसलिये भाइयो! धन खर्च करके धर्म प्राप्त करो! धर्म प्राप्त करो!!

राग बिहार

बेर बेर नहिं आवै अवसर, बेर बेर नहिं आवै। जो जाने तो करले भलाई, जन्म जन्म सुख पावै ॥ टेक ॥ धन जोबन अंजलिका पानी, जात देर नहिं लावै। तन छूटे धन कौन कामको, काहेको कृपण कहावै ॥ अवसर० ॥१॥ जाको मन बड़ो कृष्णसनेहको, झुंड़ कबहुँ नहिं आवै। सूरदास ये ही

बिनती। हरखि निरखि गुण गावै ॥ अवसर० ॥२॥

*****

२२१ विश्वास रखो कि, प्रभु जो करता है सो सब ठीक ही है

दो मित्र एक गाड़ी में बैठकर जा रहे थे। दो में से एक तो गाड़ी हांकता था और दूसरा भीतर बैठा था। हांकने वाला अपनी इच्छा के अनुसार गाड़ी को इधर उधर गली कूंची में दौड़ाता जाता था। इस तरह विना हिसाब किताब दौड़ती हुई गाड़ी को देखकर भीतर बैठे हुए मित्र ने कहा "तू ऐसी तेजी से गाड़ी दौड़ाता है और अपनी इच्छा के अनुसार टेढ़ी सीधी हांकता है, इससे मुझे डर लगता है।"

गाड़ी हांकने वाले ने कहा "जो तुझको मेरा विश्वास नहीं और डरता हो तो गाड़ी अपने हाथ से हांक ले!"

भीतर वाले ने कहा "मुझे गाड़ी हांकना नहीं आता।"

तब हांकने वाले ने कहा "या तो तू गाड़ी हांक ले और नहीं तो मुझ पर विश्वास रख! गाड़ी हांकना तू जानता नहीं और मुझ पर विश्वास रखता नहीं तब काम कैसे चल सकेगा?"

अंत में उसको उस हांकने वाले पर विश्वास करके चुपचाप भीतर बैठे रहना पड़ा तब ही सुख मिला।

वे दोनों मित्र जीव और ईश्वर हैं। गाड़ी में बैठने वाला जीव है और हांकने वाला ईश्वर है। जीव ईश्वर के भरोसे पर रहे तब ही सुखी हो सकता है, क्योंकि जीव को गाड़ी हांकना नहीं आता। तात्पर्य यह कि, हम इस बात को नहीं जानते कि, हमारा कल्याण किसमें है? परंतु ईश्वर इस बात को अच्छी तरह जानता है। इसलिये हमको सर्वात्मभाव से ईश्वर के शरणागत होना चाहिये और अखंड़ित रूप से प्रभु के विश्वास में रहना चाहिये, तब ही इस लोक और परलोक के सुख प्राप्त हो सकते हैं। भाइयो! प्रभु को तुम्हारी गाड़ी हांकने दो! अर्थात् भगवदिच्छा के अधीन हो और विश्वास का फल भोगो! फल भोगो!

दोहा–मेरे चींत्यो होत नहिं, क्यों करों मैं चिंत!
हरको चींत्यो हर करै, तापर रहुँ निश्चिंत ॥

*****

२२२ राज नदी के बीच में जल मरा! इस बात का मर्म अनुभवी विना दूसरा कौन बतावे?

यह एक समझने योग्य बात है कि, अनुभवी लोग बात का मर्म कैसे समझ जाते हैं। एक उदाहरण है किः–

एक संगतराश कारीगर कमाई करने को विदेश गया। वहां अकस्मात् उसकी मृत्यु हो गयी तब उसके किसी परिचित ने उसके पुत्र के नाम लिखकर पत्र भेजा उसमें लिखा था "तेरा बाप नदी के बीच में जलकर मर गया।"

पत्र पढ़कर पुत्र को बड़ा आश्चर्य हुआ और दूसरे सुनने वालों को भी बड़ा विस्मय हुआ कि, नदी के बीच में डूबकर मरना तो बन सकता है परंतु जलकर मर जाना कैसे हो सकता है? बहुत से आदमी वहां पर इकट्ठे हो गये परंतु इस बात का ठीक २ अर्थ कोई भी नहीं बता सका, संयोगवश उसी समय एक दूसरा राज आ पहुँचा, उसने उस पत्र को पढ़कर कहा "ठीक तो है? कागज में लिखा है सो सत्य है!"

लोगों ने पूछा "यह कैसे बन सकता है?"

राज ने उत्तर दिया "वह मकान बनाने का काम करने वाला है इससे नाव में भरकर कहीं से बिना बुझाया चूना लाता होगा सो पानी लगने से उसमें गरमी पैदा होकर आग भड़क उठी और वह नदी के बीच में नाव का नाव ही पर जल गया! इसमें आश्चर्य की बात क्या है?"

यह सुनकर नदी के बीच में जल मरने की बात सबको सत्य प्रतीत हो गई। जो बात थोड़ी देर पहले झूंठी मान ली गई थी वही बात अनुभवी मनुष्य गुरु मिल जाने से जरा सी देर में सच्ची प्रमाणित हो गई। गुरु महिमा ऐसी ही है। छोटमज्ञानी का बनाया पद हैः–

४१ पद

सो गुरु बिन मर्म न जानैं कोय, पूरण ब्रह्म सच्चिदानँदको जा विधि अनुभव होय ।। टेक ।। भरचो भंड़ार औषधिन भारी बैचे पँसारी सोय । बैद विना वाको मर्म न जानै कौन रोगकी कोय ।।१।। रैन अँधेरी वस्तु परी ठिग जन नहीं जानै कोय । भानु उद्योत होत सह जहिमें जानपरत सब कोय ।।२।। रामजीवन जीवनफल चाहै तो सतगुरु संग जोय । जाकी कृपा होत अंतर में आनंद घन ले जोय ।।३।।

भगवदिच्छा के अधीन होकर और किसी भी प्रकार का बड़बड़ाहट

किये बिना शांति से दु:खों को भोग ले तो ईश्वर उन दु:खों को दूर कर देता है। दु:खों के बीच में ही कुछ सुख दे देता है और दूसरे नये दु:ख नहीं आने देता। इसलिये जैसे बने वैसे ईश्वर की दया में जाना चाहिये प्रभु की दया में जाने का सहज उपाय यह है कि, जैसे ईश्वर रखे वैसे रहना, परंतु इस तरह पर रहना विश्वास से ही बन सकता है। विश्वास न हो तो इस तरह रहना बन नहीं सकता। भाइयो! भगवान् के आसरे का बल रखना सीखो! तो प्रभु तुम पर दया किये विना रहेगा नहीं!

*****

२२३ हमारे काम कैसे ही अच्छे क्यों न हों परंतु ईश्वर के कामों के आगे तो किसी भी गिनती में नहीं, इससे इन कामों का झूंठा अभिमान मत करो!

आजकल कलें इतनी बढ़ गयी हैं कि, सब काम कलों ही सें होने लगे हैं और इन कलों ही की कृपा से काम ऐसे सफाईदार होते हैं कि पहले की बनी वस्तुओं से इनका मिलान किया जाय तो जमीन आसमान सा सफाई में अन्तर पाया जाता है। इतना होने पर भी प्रभु के कामों के आगे वे किसी भी गिनती में नहीं है। तुम सुई को कैसी ही चिकनी बनाओ परंतु जो दूरबीन से देखोगे तो उसमें सैंकड़ों गढ़े मालूम होंगे, बढ़िया से बढ़िया उस्तरे को धार को सूक्ष्मदर्शक यन्त्र से देखोगे तो उसमें अनेक खांचे दीखेंगे और बढ़िया रंगे हुए कपड़े को ऐसे यंत्र से देखोगे तो उसमें कमती बढ़ती रंग दीखेगा, परंतु जो तुम एक मक्खी को या एक चिऊँटी को सूक्ष्मदर्शक यंत्र से देखोगे तो उसमें कहीं भी वैसी गड़बड़ या असमानता नहीं दीखेगी और न एक पतंग में ऐसा कमती बढ़ती रंग देखने में आवेगा, क्योंकि वे कुदरत के अर्थात् दैवी काम हैं। हमारे काम सादी आँखों से हमें अच्छे दीखते हैं परन्तु दूरबीन से जैसे उसकी कसर या दोष देखने में आ जाता है वैसे ही हमारे काम ईश्वर के यहां दोष वाले दीखते हैं कारण हमारे दूरबीन और सूक्ष्मदर्शक यंत्र की अपेक्षा प्रभु की शक्ति में उन कामों को जान लेने का अनंत गुना बल है। इससे हमको अपने किसी भी काम का अभिमान नहीं करना चाहिये।

ईश्वर के काम हमारी सादी नजर में छोटे जान पड़ते हैं परन्तु दूरबीन से देखने में अद्भुत चमत्कार वाले जान पड़ते हैं। अब विचारने की बात है कि जब सादे काच के दूरबीन से ही ऐसे जान पड़ते हैं तब भक्तिरूपी

दूरबीन से समर्थ ईश्वर के अद्‌भुत कृति वाले स्वाभाविक कर्म कितने उत्तम दीखेंगे और उनके आगे हमारे कर्म कितने हलके दीखेंगे सो तो ख्याल करो! भक्तों में और व्यावहारिक लोगों में जो भेद है सो यही है कि, भक्त लोग अपने कामों को छोटे समझते हैं अर्थात् ईश्वर के कामों का महत्व समझते हैं और व्यवहारिक लोग अपने कामों को बहुत तब समझते हैं अर्थात् प्रभु के काम की सच्ची कीमत नहीं समझते। भाइयो! अपने कामों का अभिमान न करो परंतु भक्ति के दूरबीन से अपने कामों को और ईश्वरीय शक्ति को देखना सीखो! भक्ति का दूरबीन ऐसा अलौकिक है कि वह ऊपर लिखे अनुसार चलने से तुम्हारे अभिमान को तोड़ डालेगा और प्रभु की बड़ाई दिखाकर तुमको प्रभु के मार्ग में जा धरेगा। इसलिये भक्तिरूपी दूरबीन को पकड़ो!

*****

२२४ सोने की खान हमारे घर में है; परंतु हम उसे जानते नहीं वह खान हमारा धर्मशास्त्र ही है

अमेरिका की सोने की खान की जब तक लोगों को खबर नहीं पड़ी थी, तब तक लोग उसमें से मट्टी लेकर घर बनाते थे, सड़क बनाते थे और पुल बनाते थे, परन्तु पीछे जब मालूम हुआ कि, इस मट्टी में सोना मिला हुआ है तब उनको बड़ा आश्चर्य हुआ। आश्चर्य होने के साथ उनको खेद हुआ और पश्चात्ताप भी हुआ कि हाय! हाय! सोने की मट्टी हमने घर बनाने में लगा दी!

अमेरिका की सोने की खानों से भी लाख गुनी कीमत वाले हमारे शास्त्र हमारे ही घर में धरे हैं परन्तु हम उनकी कीमत नहीं समझते और उनको अपने काम में नहीं लेते। वेद, उपनिषद्, स्मृति, गीता, भागवत, महाभारत, पुराण, रामायण आदि ग्रंथ आज घर घर में रखे हैं परंतु खेद है कि वे केवल शोभा ही के लिये कांच की आलमारियों में बंद रखे जाते हैं अथवा एक प्रकार की बेगार टालने के लिये कहीं कोने कोचरों में डाल रखे जाते हैं। हम अपने जीवन में उनसे कुछ भी लाभ नहीं उठाते। उनको खाने का लाभ तो केवल कीड़े ही उठाते हैं। राम! राम!! राम!!!

भाइयो! याद रखो कि, भगवद्‌गीता, उपषनिद् आदि हमारे धर्मशास्त्र पारस की खान समान हैं क्योंकि उनमें प्रभु की महिमा का वर्णन है, और वे खानें हैं भी हमारे घर में ही, परंतु तब भी हम उनका

उपयोग न करें तो उनमें से धर्म के तत्व न जाने, उनमें से प्रभु का नाम न सीखें तो समय आने पर पश्चात्ताप ही होगा।

अमेरिका वालों ने तो विना जाने सोने की मट्टी को मकान बनाने के काम में लिया था परंतु हम जान बूझकर वे पारस कीड़ों को खिलाते हैं इस पाप की कैसे क्षमा मिलेगी? इस पाप का दंड़ हमको क्या मिलेगा? इसका विचार तो करो! इस महापाप का हमको दंड़ मिले विना नहीं रहेगा इसलिये भाइयो! अब भी समय है तब तक चेत जाओ! चेत जाओ! !

*****

२२५ भरे हुए घड़े में जैसे दूसरी वस्तु नहीं समा सकती, वैसे ही पापियों के हृदय में पाप भरा होने से उनमें ईश्वरीय ज्ञान नहीं आ सकता

भरे हुए घड़े में जैसे दूसरी चीज नहीं समाती वैसे ही पापियों के हृदय में पाप भरा रहने से उसमें ज्ञान नहीं आ सकता। रोगी को जैसे स्वादिष्ट वस्तु भी अच्छी नहीं लगती और मिठाई भी। जैसे कडवी लगती है वैसे ही जिसको पाप करने का रोग बढ़ा हुआ होता है उसको ज्ञान अच्छा नहीं लगता। अंधे के लिये जैसे दर्पण किसी काम का नहीं वैसे ही पापियों के लिये ज्ञान भी किसी कामका नहीं, क्यों जैसे आँख विना दर्पण में पड़ने वाला प्रतिबिंव नहीं दीख सकता वैसे ही धर्म विना ज्ञान भी समझमें नहीं आ सकता, इसी से पापियों के हृदय में ईश्वरीय ज्ञान का गहरा असर नहीं होता, भगवान् ने गीता में कहा है:—

"येषां त्वंतगतं पापं जनानां पुण्यकर्मणाम् ।
ते द्वंद्वमोहनिर्मुक्ता भजंते मां दृढ़व्रताः ।।"

गी० अ० ७ श्लो० २८

अर्थ—धर्म के भले काम करने से जिन मनुष्यों के पाप कट गये हैं वे सुख दुःख से छूटकर दृढ़ निश्चयपूर्वक मुझे भजते हैं।

प्रभु को भजना प्रभु को पहँचानना और प्रभु में तन्मय होना ही ज्ञान है। यह ईश्वरीय ज्ञान पाप छोड़ देने से मिलता है और भले काम करने से पाप जलते हैं। इसलिये पाप का नाश करने के लिये जैसे बने वैसे अधिक २ धर्म के कर्म करते जाना चाहिये।

भाइयो! पाप की भयंकरता तो देखो कि, पवित्र ज्ञान का असर भी

पापियों के हृदय नहीं पहुँच सकता तब और तो कौनसी चीज असर करेगी? मनुष्य जाति को सुधारने के लिये संसार में उत्तम से उत्तम और पवित्र से भी पवित्र वस्तु ज्ञान है। यह ज्ञान भी पाप की कठोरता के आगे कुछ देर के लिये हार खा जाता है। देखो पाप की भयंकरता? भाइयो! जैसे बने वैसे पाप से बचने का उपाय करो! जो पाप से बचने में जरा भी सुस्ती या देर की तुरंत ही पाप में फँस जाओगे और जो जरा भी पाप में फँसे तो तुम्हारी सारी चतुराई चूल्हे में पड़ जायेगी और तुमको उलटा ही उलटा मार्ग सूझ पड़ेगा इसलिये भाइयो! खूब सँभाल रखो जिसमें कभी भूल चूके भी पाप न हो!

*****

२२६ बंदर जैसे हीरे के कीमत नहीं समझते, वैसे ही पापी ज्ञान की कीमत नहीं समझ सकते !

किसी बंदर के हाथ में कहीं से एक बढ़िया हीरा पड़ गया। उसे उसने मुँह में रखा परंतु कुछ स्वाद न आया, मुँह में फिराया परंतु वह पिघला नहीं और दाँतों से चबाया परंतु वह टूटा नहीं तब तो क्रोध में आकर बंदर ने उसे मुँह से निकालकर दूर फेंक दिया। यह देखकर एक कवि ने उस हीरे से कहा "ऐ हीरा! बंदर ने तेरी कीमत न समझी, इससे तू उदास मत हो! उसने पत्थर से फोड़कर तेरा चूरा न कर डाला सो ही तेरा बड़ा भाग्य समझ !"

दोहा–जाको जामें स्वाद नहिं, सो ताको न सुहाय ।
दोष लगा के दाख को, काक नीमफल खाय ।।

इसी तरह पापीजन ज्ञान की कीमत न समझें तो क्या ज्ञान की कीमत कम हो सकती है? कभी नहीं बन्दर हीरे को फेंक दे तो क्या हीरे की कीमत कम हो सकती है? कभी नहीं! वैसे ही पापीजन अपने हृदय में भरे हुए पाप के कारण ज्ञान को न ले सकें तो इससे ज्ञान की शक्ति कम नहीं हो सकती किन्तु पापियों की नालायकी प्रकट होती है। पवित्र मनुष्य को प्रभु के प्रिय भक्तों को ज्ञान अच्छा लगता है परंतु नीच लोगों को ज्ञान नहीं लगता। कहा है कि :–

इसलिये भाइयो! पाप के लिये पवित्र ज्ञान को मत छोड़ दो! ज्ञान को मत दबाओ! और ज्ञान का उलटा उपयोग मत करो! परंतु अपने पवित्र आत्मा के लिये और अपने समर्थ प्रभु के लिये पाप छोड़ देने में

ज्ञान का उपयोग करो!

४२ पद

जाने भज्यौं नहिं भगवान्, सो नर जीवतहू शव जान ।।टेक।। पेट भरिबे पापकरि बहु भइ न मन में ग्लानि । पुण्य पाडोसियनको हू वरजि भो सो महान ।।१।। करत लोकाचार इत उत अस्त होवै भान । निंदरिया विषयन संगहु बीतै रैन महान ।।२।। रामजीवन जीवन को फल कह्यो न बढ्यो अभिमान । एक दिन सब छार होवै जावैं जब शमशान ।।३।।

*****

२२७ ईश्वर के बड़े दंड की पापियों को खबर नहीं है, इससे वे पाप करते हैं

छोटे लड़के छत पर खेलने में जब दौड़ते हैं तो यह नहीं जानते कि, हम गिर जायँगे तो हाथ पैर टूट जायँगे। वैसे ही पापियों को भी खबर नहीं रहती कि पाप का कितना भारी दंड मिलेगा। जो लोगों को पाप का दंड मिलने की याद रहे तो वे इतने भारी पाप न करें।

पाप की खराबी, पापियों की नीचता, नरक की भयंकरता और काल के भी काल महान् ईश्वर की कल्याणकारी आज्ञाओं को भंग करने से होनेवाला बुरा परिणाम लोग अच्छी तरह नहीं जानते। इसका बड़ा दुःख है, जो मनुष्यों के हृदय में पाप की भयंकरता और नरक की हजारों प्रलयकाल की सी उग्र अग्नि का ख्याल बराबर बना रहे तो पाप का नाम सुनते ही कंपकपी आये बिना न रहे और पाप का मन में विचार आते ही भय लगे बिना न रहे परन्तु छत पर बेफिक्र दौड़ते हुए बालकों की तरह मनुष्य भी अपनी स्वार्थता में पाप के फल का नरक की भयंकर वेदना का विचार नहीं रखते। इसी से मनुष्य पाप में फँस जाते हैं, इसलिये भाइयो! अपने जरा से स्वार्थ का नहीं, परन्तु पाप के भयंकर दंड का विचार करो! नरक की प्रज्वलित अग्नि का विचार करो! और पवित्र पिता समर्थ परमेश्वर की आज्ञा का अनादर होने का खयाल करो! तथा हमारे शिर पर सदा काल फिर रहा है, उसका ख्याल करो! तो पाप से बच सकोगे!

कवित्त

तारो पतित जानके, सुधारो विरद आपके,
काढ़ो भुजा तानके, कहां देर डारी है ।

सुदामा यार तार्‌यो है, प्रह्लादतैं उगार्‌यो है,
द्रौपदी की लाज राखी, सभा देख सारी है ।।
गजने जो ध्यायो, प्रभु वैनतैय छोड़ि धायो,
व्रजको बचायो, ताते नाम गिरिधारी है ।
दास तो पुकारै, प्रभु काटिये कष्ट कोटि भारे,
अरजी हमारी आगे मरजी तिहारी है ।।१।।

*****

२२८ अपने धर्म का ज्ञान हो परंतु आचरण अच्छे न हों वे गुरु अंधे के हाथ में दीपक समान हैं

मुनष्य मात्र को गुरु की जरूरत है, उत्तम से उत्तम गुरु की जरूरत है। परंतु वैसा गुरु न मिले तो साधारण गुरु की ही जरूरत है। साधारण गुरु भी शिष्य के तो कामका ही है। कहावत प्रसिद्ध है कि 'न होने से काना मामा ही अच्छा है।" इसी तरह बिलकुल गुरु न होने से तो साधारण गुरु ही अच्छा है, वे अपने उपदेश के अनुसार न चलते हों तब भी शिष्यों के लिये तो उनका उपदेश बड़े कामका है। इस पर एक दृष्टान्त है:-

एक अंधा आदमी हाथ में लालटेन लिये किसी अँधेरी गली में होकर जा रहा था। उससे किसी ने पूछा "सूरदास! यह लालटेन तेरे किस कामका है? तू तो इससे भी नहीं देख सकता!"

अंधे ने जबाब दिया "बाबा! यह मेरे कामका तो नहीं है परंतु दूसरे आंख वालों के कामका तो है? जो मेरे पास लालटेन न हो तो दूसरे आदमी मुझसे टकरा जांय!"

इसी तरह आजकल के वे कलियुगी गुरु भी, जो कहते हैं ठीक और चलते हैं गैर ठीक, उस अंधे के समान हैं। परंतु उनका उपदेश उस लालटेन के समान है। उस लालटेन का प्रकाश उस अंधे के काम का नहीं होता परंतु दूसरे आंखों वालों के कामका होता है, वैसे ही अंत:करण में विना भीगे और ऊपर से मिथ्याचार करने वाले हमारे कितने ही साधु संन्यासी और दूसरे धर्म गुरुओं के उपदेश उनको सुधारने में तो काम नहीं आते। परंतु वे विश्वास हरिजनों के बहुत काम के हैं। भाइयो! जो गुरु निर्बल हों तब भी हमको हमारी भलाई के लिये उनको निबाह लेना चाहिये, क्योंकि वे चाहे अंधे हों परंतु हम जो आंख वाले हैं तो उनके हाथ का लालटेन हमको प्रकाश दिये विना नहीं रहेगा। इसलिये जो गुरु अंधे

हों और उनका अंधापन न छूट सकने योग्य हो तब भी हमको गुरु विना नहीं चल सकता। इससे हमको आँख वाले हो जाने की जरूरत है।

४३ पद

तै कहा करचो गीत गाय, तैं कहा करचो गीता गाय ।। टेक ।। तजि प्रपंच न गोविंदके गुन, रटे नहिं मन लाय ।।१।। पाय संपति दान न कीनो, भयो न कोउको सहाय ।।२।। संत संग निमिषहु नहिं कीनो, रह्यो कुसंग लुभाय ।।३।। रामजीवनको फल यह, रहै गोविंद गाय ।।४।।

*****

२२९ जीवन का कर्तव्य देने को टुकड़ा भला, लेने को हरिनाम!

जीवन के पवित्र कर्तव्य के लिये जुदे २ विद्वानों और जुदे २ साधुओं ने जुदी २ रीति से जुदे २ रूप में एक की एक ही बात सैकड़ों और हजारों रीति से कही हैं। बहुत से मनुष्य ऐसा मान लेते हैं कि, धर्म का बोझा ऐसा भारी है कि उठ नहीं सकता। वे लोग कहते हैं कि हमारे बाप का बाप आ जाय तब भी इतना किया नहीं जा सकता। उनको धर्म इतना कठिन जान पड़ता है, इसका कारण यही है कि, वे धर्म के सूक्ष्म से सूक्ष्म सूत्र को भी नहीं जानते। महात्मा तुलसीदासजी ने धर्म का सार कहा है कि:–

दोहा–तुलसी या जग आयके, करलीजे दो काम ।
देने को टुकड़ा भला, लेने को हरिनाम

जीवन के कर्तव्यों का और धर्म की हजारों तथा लाखों बातों का सार यही है कि, बन सके उतनी गरीब को सहायता देना और प्रभु का नाम भजना। महात्मा लोग कहते हैं कि, देने के योग्य तो दान है और लेने के योग्य केवल ईश्वर का नाम है। भर्तृहरि ने भी कहा है कि, सब धर्मों का सार यही है कि, किसी भी प्राणी को दुःख पहुँचा सो पाप है और दूसरों की भलाई करना सो पुण्य है। इसलिये भाइयो! लंबी लंबी और टेढ़ी सीधी गलियों में न फँसकर केवल सार वस्तु को तत्व को पहँचान लो! तत्व को पकड़ लो! वह तत्व यही है कि, अपने भाई बंधुओं की सहायता करो और प्रभु का नाम स्मरण करो!

दोहा–सबको बातैं छोड़के, दो बातैं लिख ले ।
कर साहब की बंदगी, भूखे को कुछ दे ।।

२३० हमारी प्रार्थनाएँ सफल क्यों नहीं होती?

बहुत गरज पड़ती है तब हम बहुत जरूरत के समय ईश्वर की प्रार्थना करने लगते हैं और कुछ माँगने लगते हैं। स्त्री, पुत्र, धन, मान, विजय, विद्या, वशीकरण आदि वस्तुओं में से एक न एक की तो हमारी माँग बनी ही रहती है। कई बार इनमें से हमको एक भी वस्तु नहीं मिलती जिससे हम निराश हो जाते हैं, परंतु निराश होना चाहिये नहीं, क्योंकि इस बात का कारण तो हम जानते ही नहीं हैं कि, हमारी प्रार्थना क्यों नहीं स्वीकार होती? जो हम इन कारणों को समझ लें तो फिर हमको निराश न होना पड़े और न हम ऐसी अयोग्य वस्तु मागे। देखो:–

१ कई बार तो हमारी प्रार्थना केवल ऊपरी मन से होती है, सच्चे अंत:करण से शुद्धमन से नहीं होती। इससे वह ईश्वर तक नहीं पहुँचती।

२ कई बार हमारा माँगना बिना जरूरत का तथा अयोग्य होता है। जो ईश्वर हमको हमारे वैसे माँगने के ही अनुसार दे तो उसमें हमारी बुराई हुए बिना न रहे। इसलिये वह सर्वज्ञ प्रभु हम पर दया करके हमारी अयोग्य माँग को पूरा नहीं करता।

३ हमारे योग्य माँगने के अनुसार ईश्वर हमको देने को तैयार हो, उससे पहले ही हम प्रार्थना करना छोड़ देते हैं और दूसरे विषयों में लग जाते हैं। इस तरह पर जब अपने काम की हम ही चिंता नहीं करते तब उसकी चिंता ईश्वर क्यों रखे? ऐसे समय में हमारी प्रार्थनाएँ आकाश ही में लटकती हैं। इसलिये जो अपनी प्रार्थनाएँ ईश्वर के दरबार में स्वीकार करानी हों तो उनमें अंत तक लगे ही रहना। बीच बीच में भक्ति को छोड़ नहीं देना चाहिये।

४ किसी २ समय हमारी माँग बहुत ही छोटी होती है अर्थात् हलकी वस्तुओं की होती है, और परम कृपालु परमेश्वर की इच्छा हमको बहुत सा देने की होती है इससे वह हमारी छोटी सी माँग को स्वीकार नहीं करता।

हमारी प्रार्थनाएँ स्वीकार न होने के ऐसे २ अनेक कारण हैं इसलिये ऐसी २ माँग रद्द हो जाने से हरिजनों को उदास नहीं होना चाहिये। सच्चे भक्त वे ही हैं जो अपने स्वार्थ के लिये ईश्वर से कुछ भी नहीं मांगते, परंतु भगवदिच्छा के अधीन होकर रहते हैं और निष्काम भक्ति करते हैं। महान्

ईश्वर से जरा जरा सी चीजें माँगना मूर्खता है और यह नीचे दरजे की भक्ति है। हम अच्छे धर्म में रहकर भक्त बनकर ऐसी हलकी २ चीजों के लिये ईश्वर को श्रम दें सो कितनी बुरी बात है? अपनी बनते हम कीड़ी मकोड़ी तक को दुःख देना नहीं चाहते और अपनी स्त्री पुत्र आदि को भी दुःख होने देते यहां तक कि कितने ही मनुष्य ऐसे जो अपनी स्त्री को घर में झाड़ू लगाते देख लें तो उसके हाथ में से झाड़ू छीनकर खुद आप अपने हाथ से झाड़ू लगाने लगते हैं और स्त्री को बिठला रखते। अब देखना चाहिये कि, घर धंधा करना जिसका नित्य का काम है उसको भी जो आदमी करने का श्रम नहीं देते, वे अपने हलके से स्वार्थ के लिये सबसे बड़े में बड़े ईश्वर को बारबार श्रम देने को तैयार होतें हैं सो क्या थोड़े दुःख की बात है?

भाइयो! प्रभु सर्वव्यापी है? हमारे मांगे विना भी वह हमारी जरूरतों को समझता है। केवल समझता ही नहीं है, किंतु उनको पूरा करने के लिये भी वह सर्व शक्तिमान् विश्वंभर समर्थ है। इसलिये हमको मोह के अच्छी दीखने वाली वस्तुओं को मांगकर ईश्वर को श्रम नहीं देना चाहिये, परन्तु निष्काम भक्ति करना चाहिये। यही संसार के महान् भक्तों का सिद्धांत है।

*****

२३१ बच्चे जो जो मांगते हैं वे वे सब ही पिता उनको नहीं दे देता, परंतु उचित होता है सो देता है, वैसे ही ईश्वर हमारा कल्याण होने वाली वस्तुएँ देता है

एक बालक रो रहा था उससे किसी भक्त ने रोने का कारण पूछा लड़के ने उत्तर दिया "मैं जो कुछ मांगता हूं वह मेरा पिता मुझे नहीं देता।"

भक्त ने पूछा "तू क्या मांगता है?"

बालक ने कहा "चाकू।"

वहीं पर एक दूसरी छोकरी बैठी थी उसने कहा "मैं दियासिलाई की पेटी मांगती हूं परंतु माता मुझे देती नहीं।"

तीसरे बालक ने कहा "मैं फटाके मांगता हूं परन्तु बाप मुझे नहीं देता।

चौथे बालक ने कहा "मैं इस कुत्ते के साथ खेलना चाहता हूँ परंतु

माता नहीं खेलने देती।"

पांचवें ने कहा "सबक याद न होने से मुझको गुरु ने मारा।"

एक मोहल्लें में खेलते हुए पांच बालकों की यह बातें सुनकर भक्त ने समझ लिया कि इसमें माता पिता का या गुरु का कुछ भी दोष नहीं है वे तो बालकों के भले के लिये उनकी मांगी हुई वस्तु नहीं देते हैं। परंतु बालक इस बात को नहीं समझते, इससे बुरा मानते और रोते हैं। इसी तरह हमको भी अपनी प्रार्थनाओं के लिये समझना चाहिये, इतना ही नहीं परन्तु उस बालक को गुरु ने जैसे मारा था वैसे ही हम पर भी कभी २ किसी बात पर ताड़ना होती है, वह भी हमको सुधारने के ही लिये होती है।

अथवा हमारी किसी भूल का ही वह परिणाम होता है। इसलिये हमारी प्रार्थनाएँ जो कभी निष्फल हो जाय तो भी निराश नहीं होना परन्तु अधिक २ उत्साह से प्रेमपूर्वक भक्ति में लग जाना चाहिये।

भाइयो! याद रखना कि, हमारा मांगना प्रायः अयोग्य ही होता है, क्योंकि हम हमारे अहंभाव में लिपटे रहते हैं। इसलिये ऐसी तुच्छ और अयोग्य मांग की निष्फलता से ईश्वर के लिये बुरे विचार मत करो! और तुम में जो कुछ थोड़ा बहुत विश्वास है उनको जाने मत दो!

कोई बालक कुएं पर खेलना चाहे, अथवा सांप को पकड़ने का हठ करे तो बाप उसको करने थोड़ा ही देगा? पेट अच्छी तरह भरा होने पर भी जो बालक फिर खाना मांगे तो क्या उसकी भली माता बारबार खाना देकर अपने बच्चे को बीमार होने देगी? किसी बच्चे को कोई बीमारी हो उसे मिटाने के लिये माता दवा पिलावें परंतु दवा कड़वी होने से बालक रोवे तब भी उसकी परवाह न करके माता उसको दवा पिला दे तो क्या वह बुरा करती है? यदि कोई बालक केवल अपने खेलने के लिये चंद्रमा लेना चाहे और पिता उसे चांद न दे सके तो इसमें पिता का क्या दोष? हम अज्ञानी और अशक्त हैं तब भी अपने बच्चों की इतनी खबरदारी और चिंता रखते हैं तब सर्वव्यापी सर्वशक्तिमान् ईश्वर अपने भक्तों के लिये कितनी चिन्ता रखता होगा? इसका विचार तो करो! महान् ईश्वर की असीम कृपा को जो हम अच्छी तरह समझ लें तो फिर हमको उससे मांगने की कोई चीज ही बाकी न रहे। ईश्वर की दया, ईश्वर का बड़ापन और ईश्वर का सर्व शक्तिमान् होना हम समझते नहीं हैं इसी से हलकी २

चीजों को ईश्वर से मांगकर हम उस पर अपना अविश्वास दिखलाते हैं।

जैसे बालक को सांप की दुम पकड़ना अयोग्य नहीं लगता, वैसे ही हमको भी ईश्वर से बारबार मांगना अयोग्य नहीं लगता, परंतु उसमें ही अपना भला मानकर अपने भविष्यत् को ईश्वर की इच्छा पर छोड़ सच्चे भक्तों को कृपाभिलाषी ही बनना चाहिये।

*****

२३२ भले आदमी से माँगना खाली नहीं जाता, तब ईश्वर से सच्चे दिल से की हुई प्रार्थना कैसे खाली जायेगी?

एक गरीब मनुष्य ने किसी रास्ते चलने मनुष्य ने नम्रता पूर्वक प्रार्थना की कि एक पाई दीजिये। उसको उस पर दया आ गई इससे उसने आठ आने दे दिये। भिखारी ने कहा "महाराज? मेरे पास इतने पैसे नहीं है। आप पैसा हो तो दीजिये!"

इतना कहकर वह आठ आनी उसको पीछे देने लगा। तब उस उदार मनुष्य ने कहा "भाई! हम अपने पास पाई या पैसा नहीं रखते हम तो रुपये और रेजगारी ही पास रखते हैं और जब देना होता है तो रुपया रेजगारी ही देते हैं, पाई पैसे का देना ही क्या? तेरा तो इतने ही से संतोष हो गया परंतु इतना सा देने में हमारी बड़ाई क्या?"

भाइयो! साधारण मनुष्य ही जब ऐसे विचार वाले और ऐसे उदार होते हैं तब ईश्वर कितनी शुभेच्छा और कितनी उदारता रखता होगा? इसका विचार तो करो! लोग कहते हैं कि, "अजी हम भक्ति तो करते हैं परंतु कुछ लाभ नहीं होता!"

भाइयो! लाभ न होना तो तुम कहते हो परंतु कभी अस्पताल में जाकर तो देखो कि कितने आदमी कैसे २ भयंकर रोग से दुःखित होकर पड़े हैं और तुम कैसे अच्छे भले हो! तुमको दीखता है कि, दूकान में अभी वृद्धि नहीं हुई परंतु उसके बदले में घर में वृद्धि हो गई उसे नहीं देखते? तुमको दीखता है कि, प्रार्थना करने पर भी हमको बच्चे नहीं होते परंतु हैजा, प्लेग आदि भयंकर रोगों से तुम्हारे देखते २ सैकड़ों हजारों आदमी मर गये और तुम अभी मौज उठाते बैठे हो सो नहीं देखते? तुम कहते हो कि, हम बीमारी से अच्छे नहीं होते परंतु इस बीमारी के कारण तुम अनेक प्रकार के पाप में से बचते हो और कुछ २ सुधरते भी जाते हो सो

तो देखो! तुम कहते हो कि हमको मान पान और खिताब नहीं मिलते परंतु लाखों अकाल पीड़ितों की ओर तो देखो! उनकी अपेक्षा तुमको प्रभु ने कैसा आनंद दे रखा है सो तो विचारो! तुम कहते हो कि, ईश्वर हमको कुछ देता नहीं, जो दे तो हम औरों को बहुत कुछ दिया करें परंतु यह तो देखो कि, वह जो तुमको अधिक नहीं देता तो तुमसे कुछ लेता भी तो नहीं है, क्या यह उसकी थोड़ी कृपा है? अपने कर्मों की ओर देखो और तब ईश्वर की दया की ओर देखो। हम तो पाप में डूब पड़े हैं तब भी वह हम पर इतनी कृपा करता है सो क्या कम है?

भाइयो! हमारी माँग बहुत छोटी होती है परंतु उसकी उदारता बहुत बड़ी होती है इसलिये जो वह हमारे माँगने के अनुसार न दे और उसके बदले में कोई बड़ी कृपा कर दे तो उस भेद को हम कहाँ विचारते हैं? हमारा जो समय निकलता है और हम जो अनेक प्रकार के सुख भोगते हैं यह सब उस समर्थ ईश्वर की दया ही है, इसमें हमारा कोई हक नहीं है, यह तो केवल उसकी कृपा ही है। इसलिये मनुष्य को सदा अपनी स्थिति में ही संतोष रखना चाहिये, और यह समझकर कि ईश्वर ने हमको जो कुछ दिया है वह हमारी योग्यता से अधिक है, सदा ईश्वर की इच्छा के ही अधीन रहना चाहिये। हमारा उचित माँगना कभी खाली नहीं जाता, किसी न किसी रूप में उसका फल मिल ही जाता है इससे हमको सदा ईश्वर भक्ति में आगे ही आगे बढ़ते जाना चाहिये और शनैः २ निष्काम भक्ति से ईश्वर की इच्छा के अधीन होना सीखना चाहिये, तथा कहना चाहिये कि:–

राग कानडा

मैं भरोसे अपने रामके, मैं भरोसे अपने रामके ।। टेक ।। और न है कछु कामके, मैं भरोसे अपने रामके ।। मैं भरोसे० ।।१।। जो मांगै सो देत पदारथ, बारी जाऊं उस नामपे ।। मैं भरोसे० ।।२।। दोऊ अक्षर हैं कुल तारक, अंत देत सुख धामके ।। मैं भरोसे० ।।३।। तुलसीदास प्रभु नाम दयाघन, और देव सब नामके ।। मैं भरोसे० ।।४।।

*****

२३३ ताला खोलने के लिये जैसे चाबी वाले की जरूरत है वैसे ही हमारे अन्तःकरण का ताला खोलने को सद्गुरु की जरूरत है

हमारी चाबी खो गयी हो अथवा हमको एक नया ताला खोलना हो परंतु उसकी चाबी हमारे पास न हो तो हमको उदास होकर न बैठे रहना चाहिये, क्योंकि गांव मैं चाबी वाले भी बहुत हैं और उनके पास चाबियाँ भी कई प्रकार की हैं। जो हम उस चाबी वाले को ढूंढ़ लावें तो वह हमको काम के लायक चाबी दे सकता है। चाबी वाले को ढूंढ़ने के लिये भी हमको चीन, जापान अथवा अमेरिका नहीं जाना पड़ता, जहाँ हम घर से बाहर निकले कि, चाबी वाला गली गली में फिरता हुआ अथवा अपनी दूकान पर बैठा हुआ मिला। दूसरों के ताले खोल देना ही उनका धंधा है परन्तु बुलाना तो एक बार तुमको ही पड़ेगा। घर में बैठे २ ही जो तुम कहते रहो कि, ताला खुलता नहीं, ताला खुलता नहीं तो क्या ताला आप ही आप खुल जायेगा? उसमें तो चाबी वाले की मदद लिये ही काम चलेगा। उसमें भी जो कोई अटपटा या नई सूरत का ताला होगा तो वह साधारण चाबी वाले से भी नहीं खुलेगा। उस समय अधिक चतुर चाबी वाले को बुलाने की जरूरत होगी। हमारे लोहे या पीतल के साधारण ताले खोलने के लिये ही जब इतनी खटपट करने की जरूरत पड़ती है और चाबी वाले का काम पड़ता है तब हमारे अंतःकरण का ताला खोलने के लिये और स्वर्ग का ताला खोलने के लिये कैसे होशियार चाबी वाले की जरूरत पड़ेगी सो तो विचारो? ऐसे ताले खोलने के लिये सद्गुरु की जरूरत है। अच्छी २ खूबसूरत चांदी की चाबियों के गुच्छे तो हमारी बहुत सी सेठानियों के पास रहते हैं परंतु उन झूंठी चाबियों से सच्चे ताले नहीं खुल सकते। वैसे ही सच्चे गुरु विना और पूरी लौ लगे विना धर्म और स्वर्ग के ताले नहीं खुल सकते। इसलिये हमको ऐसे सद्गुरु की आवश्यकता है जो हमारे अन्तःकरण के ताले को खोल दे ऐसे महान् गुरु विना मोक्ष का द्वार नहीं खुल सकता यह निश्चय है। इसलिये भाइयो! श्रीसद्गुरु की शरण जाओ सद्गुरु की शरण जाओ!

*****

२३४ महात्मा दुःख का अर्थ क्या करते हैं? वे कहते हैं कि, परमार्थ के लिये दुःख उठाना भी देवपूजा के समान है

तुम जानते हो महात्माओं के शब्दकोश में दुःख का क्या अर्थ लिखा है भगवदिच्छा के आया हुआ दुःख है सो प्रभु की दया और हमारा कल्याण है। इसके लिये बड़े २ संत बारंबार कहा करते हैं कि, बहुत दिन से हम पर दुःख क्यों नहीं आया? प्रभु हमको भूल गया क्या? हमसे कुछ अपराध बन गया होगा नहीं तो ईश्वर हमको भूल नहीं जाता! दुःख बिना प्रभु की प्रीति कैसे मालूम हो? दुःख सहे विना जल्दी कल्याण भी तो नहीं हो सकता! इसलिये भक्तों पर भगवदिच्छा से आये हुए दुःख तो होने ही चाहिये! ऐसे दुःख से दुःखित हो वह संत काहेका?

भगवदिच्छा से आये हुए दुःखों को शांति पूर्वक सहन करना सो ईश्वर की सेवा करने के समान है और परमार्थ के लिये दुःख सहना सो देव पूजा के समान है। इसलिये महात्माओं के शब्दकोश में दुःख शब्द का अर्थ लिखा है 'प्रभु की दया और हमारा कल्याण' दुःख का ऐसा अर्थ समझे पीछे दुःख से उदास क्यों होना चाहिये? संत लोग दुःख को मांगते हैं अर्थात् तप करते हैं और हम लोग संसारी जीव ठहरे इससे दुःख नहीं मांगते अर्थात् तप नहीं करते, परंतु इतना धैर्य तो हमको रखना चाहिये जिसमें भगवदिच्छा से आया हुआ दुःख तो हम शांति से सहन कर सकें। जो हम इतना धैर्य भी न रख सकें तो हममें और पशुओं में अन्तर ही क्या? हममें धर्म का बल होने का प्रमाण क्या? और ईश्वर के निमित्त हम अपनी इच्छाओं का कुछ भोग दे सकते हैं वह दुःख सहे विना दिखाने में कैसे आवे? इसलिये जिनको धर्म और ईश्वर की परवाह हो उनको भगवदिच्छा के आये हुए दुःख शांति पूर्वक सहन कर ही लेने चाहिये।

*****

२३५ साधु लोग ईश्वर से किस प्रकार के दुःख मांगते हैं?

साधु संत ईश्वर से दुःख मांगते हैं इसका क्या कारण? वे किस प्रकार के दुःख मांगते हैं सो तुम जानते हो? वे विना प्रयोजन उपवास करके दुःख पाना नहीं मांगते, वे बाहरी धूनी तापना नहीं मांगते, वे गांजा पी पीकर कलेजा जलाना नहीं मांगते! वे विना प्रयोजन बरसात में भीगना और श्मशानों में पड़े रहना नहीं मांगते! वे काशी करोत लेना नहीं मांगते! वे यह नहीं मांगते कि बीमारी में पड़े रहने पर भी इलाज न कराना! वे

उलटे शिर लटकना नहीं मांगते! वे पास पैसा न होने पर भी यज्ञ करना और सदाव्रत बांटना नहीं मांगते! वे यह नहीं मांगते कि धर्म का अड़ंगा लगाकर औरों को नाहक हैरान करना और वे यह भी नहीं मांगते कि, उजाड़ जंगल में अँधेरी गुफा में पड़ा रहना; इस तरह के विना काम जान बूझकर खरीदे हुए दुःख वे नहीं माँगते, परंतु वे इस तरह के दुःख माँगते हैं जो परमार्थ के लिये हों, जो धर्म के लिय हों, अपने गरीब भाई बंधुओं को मदद देने को हों, अपने जीवन को अधिक उपयोगी बनाने को हों और ईश्वर के निमित्त हों इस पर से हमको यह बात समझनी चाहिये। कि, वे अपनी तुच्छ इच्छाओं की तृप्ति के लिये अथवा अपनी मूर्खता से भरे हुए हठके लिये दुःख नहीं मांगते परंतु परमार्थ के लिये मांगते हैं। इस बात को अच्छी तरह समझ लेने से हमको उनका दुःख मांगना अयोग्य नहीं जान पड़ेगा। संतों की तरह हमको ईश्वर से दुःख मांगने की जरूरत नहीं है, परंतु प्रभु की इच्छा से जो दुःख आन पड़ें, उनको प्रभु का स्मरण करते २ शांति पूर्वक सह लेना हमारा कर्तव्य है, इसी में हमारी योग्यता है, यही हमारा धर्म है और इसी से प्रभु प्रसन्न होते हैं।

*****

२३६ दुःख में ऐसा क्या गुण है? जिसके लिये संतजन उसे प्रभु से माँगते हैं

संतजन कहते हैं कि, दुःख सहना देवपूजन के समान है। आज हमारे यह बात गले नहीं उतरती, परंतु जो गहरे बैठकर विचार करें तो उसमें भी खुबी है। ईश्वर की इच्छा से आन पड़े हुए दुःख सहने से, तथा अपने धर्म का पालन करते दुःख सहने से ईश्वर की सेवा क्यों कर होती है सो समझाने के लिये एक संत ने कहा है कि, किसी दिन भिक्षा न मिलने से भूखा रहना पड़े तब भी उसकी परवाह न करना, परन्तु यों ही समझना चाहिये कि, एक बार भूखे रहने से शरीर की शुद्धि और विकारों की कमी होगी सो भी एक प्रकार का कल्याणही का मार्ग है। आश्रम में कोई बीमार आ पहुँचे और उसकी सेवा शुश्रूषा करने में रातभर जागना पड़े तो उसको भी प्रभु सेवा ही समझना चाहिये। किसी गाँव से हम आते हों और मार्ग में हरि कथा होती हो वहाँ थोड़ी देर बैठ जायँ परन्तु सत्संग के रस में लीन हो जाने वहां से उठने में देर हो जाय और अपने मुकाम पर न पहुँच सकें तो मार्ग में रह जाने से होने वाला दुःख भी प्रभु सेवा ही है,

भिक्षा कम मिली हो और उसे भी खाने को बैठते समय कोई अतिथि आ पहुँचे और उसे उसमें से टुकड़ा देना पड़े तो उस भूखे को सह लेने का दुःख भी प्रभु सेवा ही है। अपनी कम्मल किसी गरीब को दे देना और दूसरी कम्मल न मिलने तक जाड़े से दुःख पाना भी प्रभु सेवा है। अपना कोई स्वार्थ न होने पर भी मूर्ख लड़कों को पढ़ाने में शिरफोड़ी करना और उनके कोमल हृदय में पवित्र धर्म का अंकुर जमाना भी प्रभु सेवा है। अपना समय और आनंद खोकर भी दूसरों को उपदेश करने का श्रम उठाना और लोगों को उनके दोष समझाकर उनसे उन दोषों का पश्चात्ताप कराकर उनके प्रभु के मार्ग में लगाना भी प्रभु सेवा है। वर्षों के श्रम से साधुसंतों के पास रह सीखी हुई जड़ी बूटियों को जंगल में खोद लाने का श्रम उठाकर उनका गरीबों को मुफ्त फायदा पहुँचाना भी प्रभु सेवा है। और अपने धर्म के लिये स्नान ध्यान करते, तीर्थ करते, शास्त्र पढ़ते, ब्रह्मचर्य पालते और संसार की अनेक मोहक वस्तुओं से मन को खींचते तथा दुनियांदारी को छोड़ते विचित्र संयोगों से जो कष्ट हो उनको ईश्वर की इच्छा जानकर शांति पूर्वक सहन कर लेना प्रभु सेवा है। इस तरह पर ईश्वर की इच्छा से प्रसंगोपात्त आ पड़े हुए दुःखों को शांति से सहन कर लेना सो भी प्रभु सेवा है और प्रभु सेवा के ही लिये संतजन ईश्वर से दुःख मांगते हैं। उनको दुःख भी सुखरूप हो जाते हैं। इसलिये दुःख से कायर मत हो! परंतु यही समझो कि ईश्वर की इच्छा से आये हुए दुःखों को सहना देवपूजा करने के समान है।

*****

२३७ चाहे तो थोड़ी देर दुःख सहलो चाहे स्वर्ग छोड़ दो!

संतलोग दुःख क्यों मांगते हैं सो तुम जानते हो? वे कहते हैं कि, पिता अपने प्यारे बच्चों को ही जरूरत पर लात मारता है सो इसलिये कि वे सुधरें कुछ द्वेषभाव से नहीं! वैसे ही ईश्वर हमको दुःख देने के लिये दुःख नहीं देता परंतु हमको सुधारने और हमारा कल्याण करने ही के लिये थोड़े बहुत दुःख कभी २ देता है। दूसरे के बच्चों को कोई नहीं मारता और तो क्या परंतु पिता ही अपने बिगड़े बैठे पुत्र का आगे जाकर मारना छोड़ देता है और उसको उसकी इच्छा पर चलने देता है। वैसे ही प्रभु भी अपने प्यारे भक्तों को ही दुःख देता है क्योंकि उसको तो उनका कल्याण करना है और कल्याण होता है पाप कटने से, परन्तु पाप तब ही कटते हैं

जब दुःख सहन किया जाय इस तरह प्रभु अपने भक्तों को दुःख देता है परंतु बिगड़े बैठे लोगों से और उसकी आज्ञा से विपरीत चलने वाले लोगों से कुछ भी नहीं कहता, क्योंकि साधारण थप्पड़ मारने से उनकी शुद्धि नहीं होगी, परंतु गहरे नरक की अग्नि में पड़ने से उनकी शुद्धि होने वाली है। इसलिये भाइयो! आज से याद रखना कि जो बाप की थप्पड़ खा लेता है अर्थात् ईश्वर इच्छा से आये हुए दुःखों कों शांतिपूर्वक सह लेता है वही पिता का वारिस होता है अर्थात् स्वर्ग पाता है, और जो वह थप्पड़ नहीं खाता अर्थात् दुःख को शांतिपूर्वक सहन नहीं करता वह वारिस नहीं हो सकता। अब तुम चाहो सो करो! या तो थप्पड़ खालो या वारिस होना छोड़ दो! अर्थात् या तो थोड़ा दुःख सह लो या स्वर्ग छोड़ दो! ईश्वर ने तुमको बुद्धि और धर्म दोनों दिये हैं अब समझकर जो करना हो सो करो! जो अच्छा लगे सो करो!

*****

२३८ विश्वास रखो कि, दुःख में भी ईश्वर का कुछ अच्छा ही हेतु है!

लोग अनाज को मलते कूटते हैं सो किस लिये? क्या अनाज से द्वेष होने के कारण? नहीं भाई! अनाज से हमारे साथ कोई बुराई नहीं की और हम अनाज के वैरी नहीं हैं! अनाज के आधार से हम अच्छे लगते हैं और हमारे आधार से अनाज की शोभा है! वैसे ही प्रभु के आधार से हम टिक सकते हैं और हमसे प्रभु की महिमा है। हम प्रभु के वैरी नहीं हैं और प्रभु को हम पर वैर नहीं हैं। परंतु जैसे छिलकों से चावल दूर करने के लिये हम धान को ऊखल में डालकर ऊपर से मूसल की मार मारते हैं वैसे ही हमारे पुराने पाप दूर करने और हमको पवित्र करने के लिये ही प्रभु कभी २ हम पर दुःख डालता है। इसलिये दुःख का उलटा अर्थ करके उदास मत हो, परन्तु उसमें भी ईश्वर का कुछ न कुछ अच्छा ही हेतु समझकर भगवदिच्छा से आये हुए दुःखों को शांति से सहन करो!

दोहा–जितने तारे गगनमें, शत्रू उतने होय ।
कृपा होय रघुनाथकी, बाल न बांका होय ।।

*****

२३९ अधिक सुख देने के लिये ही प्रभु हमको थोड़ा दुःख देता है!

डाक्टर लोग आ बला उठाते हैं और नश्तर मारते हैं सो क्यों तुमने कभी नहीं देखा? वे ऐसा क्यों करते हैं? प्रथम ही मनुष्य बीमार हो और उस पर इस तरह का कष्ट डाला जाय सो क्यों? क्या यह डाक्टरों की निर्दयता नहीं है? इसके उत्तर में तुम ही कहोगे कि "नहीं! यह डाक्टरों की निर्दयता नहीं है बरन् यह तो उनकी होशियारी है, क्योंकि रोगी को कष्ट देने या मार डालने की इच्छा से डाक्टर लोग नश्तर नहीं मारते किंतु उनका दर्द मिटाने के लिये नश्तर मारते हैं।"

इसी तरह प्रभु हम पर दुःख डालता है सो हम पर द्वेशभाव से नहीं किंतु हमको पवित्र करने और हमारा कल्याण करने के ही किये। इसलिये भाइयो! दुःख से उदास मत हो! परंतु प्रभु जिस स्थिति में रखे उसी स्थिति में सुखपूर्वक रहना सीखो! इस तरह रहना सोई ईश्वर की इच्छा के अधीन होना है, और यही सब कर्मों का सार और प्रभु को पाने का उत्तम मार्ग है।

*****

२४० याद रखो! दुःख का सामना करने से कुछ लाभ नहीं होगा, परंतु उसको भगवदिच्छा समझकर शांति से भोग लेने में ही मजा है

कोई मनुष्य घर में बंदकर रखा हो और वह बाहर निकलने के लिये दीवार पर शिर दे मारे तो उसके शिर दे मारने से दीवार नहीं टूटेगी किंतु उसका शिर ही फूटेगा, इसी तरह ईश्वर जो दुःख डाले वे हमको सहन कर लेने चाहिये उनको सहन करने सिवाय दूसरा कोई उपाय ही नहीं है। उनका सामना करने से अर्थात् उदास होने से दुःख छूट नहीं जाते बरन् और बढ़ते हैं। दुःख से दुःखित होना और हिम्मत हार जाना दीवार पर शिर दे मारने के और कांटों की बाड़ पर हाथ पैर पछाड़ने के समान है, ऐसी मूर्खता मत करो! अपने हाथ से अपने ही पैर पर कुल्हाड़ी मत मारो! परंतु प्रभु की इच्छा से आये हुए दुःखों को परमेश्वर का स्मरण करते २ शांति के साथ सहन कर लो! अंतःकरण के पाप छूटने और बाहर के पाप से बचने ही के लिये हम पर दुःख डाले जाते हैं। इसलिये दुःखों को चुपचाप सहन कर लेना चाहिये। दुःख से दुःखित होना घाव पर

नमक डालने के समान है। भाइयो! अपने ही हाथ से अपने घाव पर नमक मत डालो! मत डालो!

राग काफी

दयानिधि! तेरी गति लखि ना परै ।। टेक । अधरम धर्म, धर्मसे अधरम, अकरम कर्म करै ।। दयानि० ।।१।। एक गऊ जिन दानहि दीनी, सो सुर लोक तरै । कोटि गऊ राजा नृग दीनी, गिरगिट ह्वै कूप परै । दया० ।।२।। पिता वचन टारै सो पापी, सो प्रहलाद करै । ताको कष्ट निवारनको प्रभु, नरसिंह रूप धरै ।।दया० ।।३।। वेदविदित मुनिवर यश गावै, सोइ बलि यज्ञ करै । ताको बाँधि पताल पठायो, किस विधि सूर तरै ।। दया० ।।४।।

*****

२४१ सिपाहियों को जैसे कपतान की आज्ञा मानना पड़ता है, वैसे ही हम भी ईश्वर के सिपाही हैं, इसलिये ईश्वर की इच्छानुसार हमको चलना चाहिये,

सिपाहियों का कर्तव्य क्या है सो तुम जानते हो? कपतान कहे सो ही करना सिपाहियों का कर्तव्य है, कपतान दौड़ने की आज्ञा दे तब दौड़ना, खड़े रहने की आज्ञा दे तब खड़े होना, बंदूक रखने की आज्ञा दे तब बंदूक रख देना, बंदूक चलाने की आज्ञा दे तब बंदूक चलाना मारने की आज्ञा दे तब मारना, मरने की आज्ञा दे तब मरना, पीछे फिरने की आज्ञा दे तब पीछे फिरना, लड़ने की आज्ञा दे तब लड़ना, किसी अपराध के लिये मित्र को मारने की आज्ञा दे तब मित्रको भी मार डालना और शत्रु को बचाने की आज्ञा दे तब शत्रु को भी बचाना आदि जैसे सिपाही का कर्तव्य है और जो अपना कर्तव्य पूरा न करे उसको जैसे कड़ी सजा भुगतना पड़ता है, वैसे ही हम भी प्रभु के सिपाही हैं इससे जैसे वह रखे वैसे ही हमको रहना चाहिये। हमको वह सुख दें तो सुख सहना चाहिये, दुःख दे दुःख सहना चाहिये, बीमारी दे तो बीमारी सहनी चाहिये, बुरा कटुंब दे तो वह जंजाल भी भुगतना चाहिये, बच्चे न दे तो उसमें भी संतोष रखना चाहिये, गरीबी दे तो उसमें भी चलाना चाहिये और मौत दे तो उसके भी शांति पूर्वक अधीन होना चाहिये, क्योंकि हम सिपाही ठहरे, कपतान तो वही है, इसलिये जैसे जैसे प्रभु रखे तैसे ही आनंद में रहना चाहिये। याद रखो कि जो सिपाही अच्छी नौकरी बजाता है उसका दरजा बढ़ता

है और उसको अधिक रोजगार मिलता है, इसी तरह हम भी प्रभु की इच्छा के जितने अधीन होकर रहेंगे उतना ही सुख पावेंगे इसलिये जैसे बने वैसे प्रभु की इच्छा के अधीन होने का यत्न करो!

*****

२४२ पानी जैसे बर्तन में भरा जाता है वैसे ही आकार का हो जाता है वैसे ही हमको भी ईश्वर जिस स्थिति में रखे उसी स्थिति के अनुसार हो जाना चाहिये

कितने ही काम तो ऐसे होते हैं जो उनका समय आने पर ही होते हैं और कितने ही काम ऐसे होते हैं जिनमें हमारा कुछ भी चल नहीं सकता, ऐसे कामों में नाहक चिंता करना प्रभु के सामने होने समान है। काम मिले विना बढ़ई कितने ही हथोड़े पीटा करे परन्तु उससे कुछ काम नहीं चलता। मरे के पीछे मनुष्य चाहे जितना रोवे पीटे परन्तु वह जीवित हो नहीं सकता। वैसे ही विना काम चिंता करते रहने से ऊपर से धन आकर नहीं गिरता लाख यत्न क्यों न किये जायँ परन्तु बैल से दूध नहीं निकल सकता। माली चाहे जितना पानी क्यों न सींचें परन्तु ऋतु आये विना फल नहीं लगते। वैसे ही दुःख भी उनके कारण दूर हुए विना, अवधि पूरी हुए विना और परमेश्वर की शरण लिये विना दूर नहीं हो सकते। दुःख को दूर करने का सुगम उपाय यही है कि, जैसे पानी जिस बरतन में भरा जाय उसी आकार का हो जाता है अर्थात् नली में भरने से नल जैसा, थाली में भरने से थाली जैसा, झारी में भरने से झारी जैसा और घड़े में भरने से घड़े जैसा हो जाता है वैसे ही हमको भी जैसे प्रभु रखे वैसे ही रहना चाहिये। वैसे रहने ही में हम सुख से रह सकते हैं जब तक हम भगवदिच्छा के अधीन नहीं होंगे तब तक याद रखो कि, दुःख दूर ही नहीं होंगे इसलिये भाइयो! दुःख दूर करने के लिये जैसे बने वैसे भगवदिच्छा के अधीन हो! अधीन हो! ! अधीन हो! ! !

*****

२४३ जो ऐसा करना हो कि तुमको स्वर्ग में न जाना पड़े परन्तु स्वर्ग ही तुम्हारे पास आ जाय तो भगवदिच्छा के अधीन हो!

भाइयो! हंड़िया को कुम्हार के सामने यह कहने का अधिकार नहीं है कि, तूने मुझको हंड़िया क्यों बनाया घड़ा क्यों न बनाया? वैसे ही हमको

भी हमारे बनाने वाले परमेश्वर के आगे यह कहने का अधिकार नहीं है कि तूने हमको अमुक देश में अमुक काल में अमुक गांव में या अमुक जाति में क्यों न उत्पन्न किया? अथवा अमुक काम हमको क्यों दिया? हमारा तो ईश्वर की इच्छा के अधीन होना ही धर्म है। भगवदिच्छा का आदर करने ही में हमारा सच्चा सुख है। प्रभु की इच्छाविरुद्ध होने में हमारा कल्याण नहीं है। भाइयो! अपनी इच्छा का विचार मतकरो! अपनी इच्छा में से होने वाले सुख दुःख का विचार मत करो! परन्तु जिसकी ओर से वे सुख दुःख मिले हैं उसकी इच्छा का विचार करो! उसकी इच्छा के अधीन होने से तुम्हारे दुःख घटेंगे और अंत में बिलकुल जायँगें और मरने पर तुमको स्वर्ग में नहीं जाना पड़ेगा परन्तु जीते हुए ही तुम्हारे घर ही में अंतःकरण में ही स्वर्ग स्वयं चला आवेगा, परन्तु शर्त इतनी ही है कि, सुख दुःख की कुछ परवाह न कर ईश्वर की इच्छा के अधीन हो जाओ!

कुंडलिया

बंदा बधबड क्या करे, ले साहब का नाम ।
यह तमाशा दो घड़ी, आखर धूल तमाम ।।
आखर धूल तमाम, राव रंकादिक जावै ।
कर संतनकी सेव, राह तोहि अगम बतावै ।।
कहता रमताराम, भजन कर छांडके धंधा ।
ले साहब का नाम, करै क्यों बडबड बंदा ।।

*****

२४४ दुःख को आनंद के रूप में बदल डालने का उपाय क्या है? भगवदिच्छा के अधीन होना!

सब लोग अपनी अपनी घड़ियों की सुई अपनी अपनी इच्छा के अनुसार रखें तो समय जानने में गड़बड़ पड़े बिना नहीं रह सकती, इससे उचित यही है कि नगर में जो सबसे बड़ी और सबसे उत्तम घड़ी हो, उसी के अनुसार सबको अपनी अपनी घड़ियां रखनी चाहिये। वैसे ही हम सब लोग जो अपनी अपनी इच्छा के अनुसार चलें तो संसार में अनर्थों का पार न रहे। जो हमारी इच्छा के अनुसार काम होता हो तो हम थोड़ी देर में सब मटियामैदान कर डालें और फिर न तो इतने जी सकें और न थोड़ा बहुत भी सुख भोग सकें। जो हमारे ही हाथ में सारा कारोबार हो

तो घड़ी भर में ही बारह बज जायँ अर्थात् सर्वस्व नष्ट हो जाय। हमको अपने कल्याण के लिये संसार के लाभ के लिये प्रभु की इच्छा में ही हमारी इच्छा रखनी चाहिये। प्रभु की इच्चा से अपनी इच्छा जुदी रखकर हम सुखी नहीं हो सकते। इसलिये जैसे बने वैसे अपनी इच्छाओं को प्रभु की इच्छा में मिला दो! बस फिर तुम्हारे दुःख भी सुखरूप में और प्रभुकृपा के रूप में बदल जायँगे!

*****

२४५ हम जो एंजिन हैं और प्रभु एंजिनियर है, इसलिये वह जैसे कल दबावे वैसे ही हमको चलना चाहिये

दोहा–हंसा ज्यों सरवर चहै, घन को चहै ज्यों मोर ।
हम तुमको ऐसे चहैं, जैसे चन्द्र चकोर ।।
मेरे तो तुम एक हो, तुमको और अनेक ।
सरवर को हंसा बहुत, हंसहि सरवर एक ।।

हम एंजिन है परन्तु एंजिनियर भगवान् है, एंजिनियर जैसे कल दबावे वैसे ही एंजिन को चलना चाहिये। वह आगे चलावे तो आगे, पीछे चलावे तो पीछे, धीरे चलावे तो धीरे, और दौड़ावे तो दौड़ना चाहिये। अधिक गाड़ियां जोड़ दे तो उनको भी खींचना चाहिये, खाली दौड़ावे तो खाली दौड़ना चाहिये और सड़क पर उतार दे तो उतर भी जाना चाहिये। एंजिन को तो किसी भी बात में उजर नहीं करना किन्तु जैसे एंजिनियर चलावे वैसे ही चलना चाहिये। जो वह एंजिनियर की इच्छा के अनुसार न चले तो एंजिन काहे का? तो वह अच्छा एंजिन नहीं कहला सकता! वैसे ही हमको भी ईश्वर की आज्ञा के अधीन हो जाना चाहिये। जो हम पूर्ण प्रेम से और सर्वात्मभाव से अधीन न होयँ तो हमारा नालायकी है और विमुख होने समान है। भगवान् ने गीता में कहा है:–

"ईश्वरः सर्वभूतानां हृद्देशेऽर्जुन तिष्ठति ।
भ्रामयन्सर्वभूतानि यंत्रारूढानि मायया ।।"

अ० १८, श्लोक ६१

अर्थ–हे अर्जुन! सब प्राणियों को कल से फिरनेवाली पुतली की तरह सबके हृदय में स्थित ईश्वर चलाता है।

भाइयो! हम तो कल में लगी हुई पुतली के समान हैं हमको

चलानेवाला तो अनंत ब्रह्मांड का नायक स्वयं विश्वंभर ही है। तब फिर अपने सुखदुःख की हमको चिंता क्या रही? इसलिये भाइयो! पूरा विश्वास और पूरा प्रेम लाकर प्रभु की इच्छा के अधीन हो!

*****

२४६ नाटकपात्रों को उनका मालिक जो वेष बनावे वही वेष उनको अच्छी तरह कर दिखाना चाहिये। वैसे ही प्रभु हमको जिस स्थिति में रखे उसी में हमको आनंद से रहना चाहिये

दुःख से डरे कैसे काम चल सकता है? हमारे डरने से क्या दुःख हमको छोड़ देगा? कभी नहीं! हम जाड़े से डरे तो क्या जाड़े की मौसिम आये बिना रह सकती है? हम आग से डरें तो क्या आग संसार में नष्ट हो सकती है? हम रोगों से डरें तो क्या ईश्वरीय नियम पाले बिना रोग मिट सकते हैं? हम गरीबी से डरें तो क्या उद्योग किये बिना सोने की खान हमको मिल जायेगी? हम मौत से डरें तो क्या हमको अमरपट्टा मिल जायगा? हमको जन्म मरण के चक्कर में पड़ना नहीं पसंद तो क्या प्रभु को जाने बिना प्रभु की इच्छा के अधीन हुए विना हमको मोक्षपद मिल जायगा? कभी नहीं, ऐसे ऐसे अनेक दुःख संसार में सब लोगों को हैं। इन सब दुःखों का सुगम उपाय यही है कि, भगवदिच्छा के अधीन हो जाना और जैसे ईश्वर रखे वैसे ही आनंद से रहना।

जैसे नाटक के पात्रों को जो वेष मिले उसी को अच्छी तरह कर दिखाना पड़ता है, वैसे ही प्रभु हमको जिस तरह रखे उसी तरह हमको आनंद से रहना चाहिये, जो सब ही नाटकपात्र कहें कि हमको तो राजा का वेष चाहिये, वेश्या, साधु आदि का वेष नहीं चाहिये, तो नाटक का काम चल नहीं सकता। पात्रों को वेष देना मालिक की इच्छा पर निर्भर है, नाटकपात्र की खूबी कुछ बढ़िया पोशाक पहनने में नहीं है, परंतु अपना पार्ट अच्छी तरह कर दिखाने में है, घटिया या बढ़िया वेष का विचार करना एक्टर का काम नहीं है क्योंकि उसकी योग्यता का विचार करके ही मालिक ने उसको वेष दिया है। ऐक्टर का काम यह है कि अपना वेष अच्छी तरह कर दिखावे और उसी में उसकी योग्यता है। इसी तरह हमको भी ईश्वर जिस स्थिति में रखे उसी के अनुसार हो जाना चाहिये और उसी में आनंद मानना चाहिये। इसी का नाम ईश्वर की इच्छा के

अधीन होना है और यही प्रभु को प्रिय है इसलिये हमको ऐसे ही बन जाना चाहिये कि:–

४४ छंद

प्रभू दियो सुख दुःख शिर धारि लेनो ।
सदा हर्षसों हृदये मध्ये रहेनो ।।
कभों धैर्य को हृदयसों मत विसारो ।
पडै कष्ट ज्योंही त्योंही धैर्य धारो ।।१।।

*****

२४७ इससे मनुष्य कहते हैं उतना करते नहीं है परन्तु अच्छी अच्छी बातें सुनना छोड़ देने की जरूरत नहीं है

एक स्त्री नित्य मंदिर जाती थी। और बड़े प्रेम तथा भक्ति से प्रभु की महिमा सुनती थी। एक दिन उसके पति ने कहा "कथा कहनेवाला जैसा कहता है वैसा करता नहीं है इससे वहां जाने में क्या लाभ है? पुस्तक तो पढ़े बड़ी बड़ी और करे कुछ भी नहीं तब लाभ क्या? नित्य नित्य वहां जाकर धक्के क्यों खाती है?"

स्त्री ने उत्तर दिया "करना और मरना तो बराबर होता है। जब जब तुमको क्रोध आता है तब तब तुम मुझको 'रांड! रांड!' कहकर पुकारते हो परंतु मुझको रांड करके दिखाओ तो खबर पड़े कि रांड कैसे होती है। रांड कह देना तो सुगम है परंतु रांड कर दिखाना सुगम नहीं है। वैसे ही मनुष्य कहते हैं उतना करते नहीं सो सत्य है परंतु इस पर से अच्छी अच्छी बातें सुनना छोड़ देने की जरूरत नहीं है। नित्य नित्य अच्छी बातें सुनते रहने से किसी न किसी दिन तो अवश्य ही उसका अच्छा असर हुए बिना नहीं रहता। इसलिये हरिकथा सुनने में प्रभु के यश सुनने में और धर्म की महिमा सुनने में तो लाभ ही है! लाभ ही है!! लाभ ही है!!!

*****

२४८ बच्चे को दूध पिलानेवाली माता के लिये अच्छे अच्छे खाने की जरूरत है। इसी तरह गुरु लोगों को बहुत उत्तम ज्ञान की जरूरत है

जो माता बच्चे को दूध पिलाती हो उसको अच्छे अच्छे खाने की जरूरत है, क्योंकि जो उसको अच्छा खाना न मिले तो वह निर्बल हो जाय

और उसका बच्चा भी निर्बल होकर बीमार पड़ जाय, ऐसा न होने के लिये दूध पिलानेवाली माता को अच्छा अच्छा खाना मिलने की आवश्यकता है। गुरुलोग भी दूध पिलानेवाली माता के समान हैं, शिष्य हैं सो उनके बच्चे हैं और उपदेश हैं सो दूध है। गुरुओं को अच्छा खाना न मिले तो वे निर्बल हो जाय और शिष्य भी उनके निर्बल हो जायँ। दूध पिलानेवाली माता को जैसे घी, दूध आदि पौष्टिक खाने की जरूरत है वैसे गुरुलोगों के लिये सत्संग, ज्ञान, भक्ति, वैराग्य की आवश्यकता है। गुरुलोगों के लिये यही अच्छा खाना है इस प्रकार का खाना जो नित्यप्रति उनको न मिले तो उनके बच्चे उनके शिष्य निर्बल पड़ जायँ, इसमें संदेह नहीं, इसलिये गुरुओं को इस प्रकार का उत्तम खाना अपने लिये पसंद करने की पूरी सावधानी रखनी चाहिये। तब ही वे शिष्यो का कल्याण कर सकते हैं।

जो माता स्वयं ही उपवास किये है वह बच्चे को दूध पिलाकर उसका पेट कहां से भर सकेगी? वैसे ही जो गुरु आप ही ज्ञान भक्ति में न्यून हैं वे अपने शिष्यों में धर्म का ईश्वरीय ज्ञान कहां से भर सकेंगे? ईश्वरीय ज्ञान विना कल्याण नहीं हो सकता। इससे लोगों को अच्छे से अच्छे गुरु ढूँढ़ने चाहिये और गुरुओं को महान् ईश्वर का अलौकिक ज्ञान प्राप्त करने के लिये अपने आचरणों को सुधारकर पवित्र अंतःकरण से ईश्वरीय मार्ग में चलना चाहिये।

*****

२४९ गुरु की आवश्यकता

बहुत से लड़के एक नाव में बैठकर किसी बड़ी नदी में सैरकर रहे थे अकस्मात् वह नाव डूबने लगी तब तो बहुत से लड़के नदी में कूद पड़े और किनारे लगने का यत्न करने लगे। यह देखकर सामने के किनारे पर से एक भले आदमी ने नदी में एक रस्सी फेंकी और चिल्लाकर कहा कि इसको पकड़ो लो। जिन लड़कों ने उस रस्सी को पकड़ लिया वे बच गये और जिन्होंने अपने तैर जाने के अभिमान में आकर उसे नहीं पकड़ा वे डूब गये।

हम भी अज्ञानी हैं अर्थात् उन लड़कों जैसे ही हैं। हमारी नाव है सो संसार है नदी है सो काल का प्रवाह है, किनारे से रस्सी फेंकने वाला सो गुरु है और रस्सी सो धर्म है। नदी में रस्सी न पकड़ने वाले जैसे डूब गये

वैसे ही हम भी सद्गुरु का बताया हुआ धर्म न पालें तो जन्म मरण के चक्कर में पड़ जायँ इसलिये डूबते को बचाने योग्य सद्गुरु की आवश्यकता है। ऐसे बड़े ब्रह्मज्ञानी गुरु की महिमा में सूरदासजी ने कहा है:–

दोहा–गुरु गोविंद दोनों खड़े, किनके लागों पाय ।
बलिहारी गुरुदेवकी, जिन गोविंद दीन्ह बताय ।।

कवित्त

गोविंद के किये जीव जात है रसातल को,
गुरु उपदेशे सो तो छूटे यमफंदते ।
गोविंद के किये जीव वश परे कर्मन के,
गुरु के निवारे सो फिरत स्वच्छंदते ।।
गोविंद के किये जीव डूबत भवसागर में,
सुंदर कहत गुरु काढ़े दुख द्वंद्वते ।
और हूं कहालों कुछ मुखते बनाय कहूं,
गुरु की महिमा तो अधिक है गोविंद ते ।।

*****

२५० सड़क पर पानी छिड़कने वाले भिश्ती को पहले ही जलाशय ढूँढ़ रखना चाहिये, वैसे ही संसार में धर्म फैलाने की इच्छा वाले गुरुओं को ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त कर लेना चाहिये

औरों को ठंढ़क पहुँचाने के लिये सड़क पर छिड़काव करने वाले और औरों को पानी पिलाने वाले पखालिये भिश्ती तथा पानी पांड़े लोगों को पानी पास करने के लिये पानी का अच्छा तालाब। नदी, कुआं या कोई भी जलाशय पहले से ढूँढ़कर अपने अधिकार में कर रखना चाहिये जो कोई अच्छा जलाशय उनके हाथ में न होगा वे तो अच्छी तरह से पानी पिलाने या सड़क पर छिड़काव करने का काम नहीं कर सकेंगे। वैसे ही जो गुरु लोग भी भक्ति तथा परमार्थ का अखूट खजाना अपने हृदय में न रखें तो दूसरों को लाभ नहीं पहुँचा सकते। गुरु बन दूसरों को सुधारने का विचार करने से पहले उनको स्वयं ही सुधारना चाहिये। तब ही उपदेश का सच्चा असर हो सकता है और तब ही गुरु पद की सार्थकता है। जो खुद तो खाली है और दूसरे को भरना चाहता है वह 'आप ही मियां

मांगते और बाहर खड़ा दरवेंश वाली कहावत को सिद्ध करता है, इसलिये शिष्यों को सुधारने से पहले गुरु लोगों को स्वयं सुधर जाना चाहिये। तब हीं उनका गुरुपन शोभा देता है और तब ही उनको मान मिलता है। बाकी भक्तिज्ञान रहित गुरुपन तो संसार में हँसी, नरक की फांसी और ईश्वर के यहां अपराध है।

*****

२५१ धोबी आप मैले रहते हों तब भी ओरों के कपड़े तो साफ कर देते हैं, वैसे ही निर्बल गुरु आप मलीनता में पड़े रहते हों तब भी औरों का तो कुछ न कुछ लाभ कर ही देते हैं

दोहा–परजन को उपदेश दे, निज में कोटि कुफैल ।
धोबि धोय पट और के, निज पट में मन मैल ।।

हमारे कपड़े धोबी साफ कर देता है और उन साफ कपड़ों से हम संसार में अनेक काम निकाल सकते हैं। धोबी हमारे कपड़े अच्छी तरह साफ कर देता है परन्तु वह अपने कपड़े कभी ठीक साफ नहीं रखता। हमको उसके कपड़ों से कोई काम नहीं है, हमको अपने कपड़ों से काम है। हमको केवल इतना ही देखना है कि, वह हमारे कपड़े ठीक धोता है या नहीं, इसी तरह जो गुरु औरों को उपदेश देते हैं परन्तु वे स्वयं उसके अनुसार नहीं चलते वे भी मैले कपड़ों को साफ कर देने वाले परंतु स्वयं मैले रहने वाले धोबी जैसे हैं। वे धोबी जैसे तो हैं परन्तु हमारे काम के हैं। दुनियां गुण और दोष से भरी हुई है, और हम भी उस गुण दोष वाली दुनियां में भी रहने वाले हैं इसलिये हममें भी गुण दोष तो आवेंगे ही। हमारे गुरु हैं वे भी हमारे जैसे मनुष्य ही हैं, वे भी कुछ गुणातीत तो हैं ही नहीं। वे भी मनुष्य स्वभाव के अधीन होने वाले और मनुष्य के स्वाभाविक दोष वाले ही होते हैं। इतना अवश्य है कि, उनमें मनोनिग्रह और धर्म का ज्ञान हमसे अधिक होना चाहिये। परंतु समय अनुसार ये दोनों गुण होने पर भी इतना तो हमको अवश्य समझ रखना चाहिये कि, वे कुछ देवता तो हैं ही नहीं वे भी मनुष्य ही हैं और भूल के पात्र हैं इसलिये जो हम उनके दोष ही ढूँढ़ा करें तो काम नहीं चलने का। दोष रहित गुरु हमको इस समय में इस दुनियां में मिल भी सकता है या नहीं इसी में सन्देह है। इसलिये महात्माओं ने कहा है कि, बुद्धिमान् मनुष्यों का

यह काम है कि, दूध और पानी मिला हुआ हो उनमें से हंस दूध दूध पी लेता है और पानी पानी छोड़ देता है वैसे ही सज्जनों को दोष दृष्टि छोड़कर निर्बल गुरुओं में से सार सार निकाल लेना चाहिये।

*****

२५२ कुएं में हो तो घड़े में आवे

अज्ञानी भिखारियों की यही इच्छा रहती है कि, हमको कहीं से धेला पाई मिले तो अच्छा! उनको दूसरों को देने की तो इच्छा ही नहीं होती और थोड़ी देर के लिये जो मान भी लें कि, किसी भिखारी की इच्छा हुई कि मैं अमुक मनुष्य को एक लाख रुपया दूं तो वह दे भी कहां से सकता है? क्योंकि 'मूलं नास्ति कुतः शाखा'' अर्थात् जब जड़ ही नहीं है तब शाखा कहां से हो? इसी तरह जो खुद गुरु ही ज्ञान, भक्ति, शक्ति, परमार्थ और इंद्रिय निग्रह में भिखारी हो तो वह शिष्यों को गुण कहां से दे सकता है? कहावत है कि, कुएं में हो वैसा घड़े में आवें परंतु जो खुद कुआं ही खाली खड़ंग पड़ा हो तो घड़े में क्या आवे? वैसे ही जो गुरु खुद ही सूखे हों और भिखारियों के पाई धेला मिलने की आशा रखने की तरह मान, पान, सुविधा और धन पाने की इच्छा रखते हो वे अपने शिष्यों को ईश्वरी धन धर्म का धन कहां से दे सकते हैं? इसलिये गुरुओं को भिखारी न रहना चाहिये परंतु धर्म का धन अपने हृदय में भर लेना चाहिये। खुद वे भरे होंगे तब ही दूसरों को दे सकेंगे, परंतु वे ही जब खाली खीसे होंगे तो शिष्यों को देने का कहां ठिकाना? प्रभु! हमारे गुरुओं को सद्‌बुद्धि दें! धर्म का धन दें!

*****

२५३ ईश्वर ने हमको जीभ छोटी और हाथ लंबे दिये इसका कारण क्या?

एक कवि ने कहा है कि, ईश्वर ने हमको हाथ दो दिये और वे भी बहुत लंबे, पैर दो दिये और वे भी बहुत लंबे लंबे, कान दो दिये, आंख दो दीं, नथने दो दिये, परंतु जीभ एक ही दी और वह भी बहुत छोटी बनाई इसका सबब क्या? यह एक बड़ा रहस्य भरा हुआ प्रश्न है। मनुष्य के कामों पर से उसकी इच्छा का अनुमान कर लिया जाता है, वैसे ही ईश्वर के कामों से ईश्वर की इच्छा बताने की कवि ने यह युक्ति निकाली है। वह कहता है कि मनुष्य लाभ उठाने या कमाई करने के लिये जहां जाना चाहे

वहां भी जा सकें इसी विचार से परमेश्वर ने दो लंबे २ पैर दिये हैं, अपनी इच्छा के अनुसार अच्छी २ वस्तु प्राप्त कर सकते और दूसरों के दे सकने के लिये दो मजबूत हाथ दिये हैं और दो बार देखकर तथा दो ही बार सुनकर एक बार बोल सकने के लिये दो आँख और दो कान तथा एक जीभ दी है। परंतु हम इससे बिलकुल उलटे चलते हैं। हम पूरा सुने विना और पूरा देखे विना ही अपनी राय जाहिर कर देते हैं सो बुरी बात है। इससे विना कारण हम कितने बड़े पाप में पड़ते हैं और इससे ईश्वर कितना अप्रसन्न होता है सो हम नहीं विचारते।

ईश्वर ने बहुत सोच विचारक ही हमारी जीभ छोटी बनाई है और उसको वैसे रखने ही में लाभ भी है। जीभ को अधिक बढ़ाने में लाभ नहीं है। इसीलिये प्राचीन ऋषि मुनिलोग मौनव्रत धारण करते थे और इसी से पुराणों में मौनव्रत का बड़ा माहात्म्य लिखा है कहावत है कि, 'न बोलने में नौ गुण' यद्यपि बोले विना काम नहीं चल सकता परन्तु जीभ को वश में रखने से जीभ द्वारा होने वाले अनेक पाप बच सकते हैं। इसलिये भाइयो! प्रभु की इच्छा के अनुसार प्रभु ने हमको प्रत्यक्ष में दिया है उसी के अनुसार जीभ को छोटा रखो और हाथ को लंबा रखो अर्थात् अधिक बकबक मत करो! जरूरत लायक बोलो! निश्चय करके बोलो! और परमार्थ करो! यही ईश्वर की इच्छा है और यही हमारा कर्तव्य है।

*****

२५४ हमारा मन भटके तो प्रभु रुष्ट हो

हमारा प्रिय मित्र भी, जो उससे हम बेपरवाही करें तो, थोड़े ही दिन में हमसे मित्रता छोड़ देता है। वैसे ही ईश्वर के साथ भी जो हम बेपरवाही रखें और हमारे मन को दूसरें जगह भटकने दें तो प्रभु भी हमसे रूठ जाता है। गाय को दुहते २ जो हम बीच में छोड़कर दूसरे काम में लग जायँ तो गाय भड़क जाती है और फिर पूरा दूध नहीं देती इसी तरह ईश्वर से हम लाभ उठाने की–स्वर्ग पाने की मोक्ष पाने की इच्छा करें और उसी समय दूसरी हलकी २ बातों में भी मन लगावें तो प्रभु कैसे हमसे रुष्ट न हो? यह विचारने की बात है।

आशक माशूक अर्थात् प्रिय प्रियतमा जो एक दूसरे पर मरे जाते हों और जो जमीन आसमान को एक किये डालते हों वे भी जो अपने पात्र का मन किसी दूसरे की ओर लगा देख लें तो पलभर में प्रेम तोड़ डालते

हैं, वैसे ही प्रभु के लिये भी समझना चाहिये क्योंकि हम प्रेम लक्षणा भक्ति करना चाहते हैं। हमारा मन हमारे आशक एक प्रभु में ही लगा रहना चाहिये। जो दूसरी जगह मन गया तो वह आशक माशूक भी किस काम के? वह प्रेम भी किस कामका? और उसका फल भी क्या अच्छा हो सकता है? इसलिये हमारा मन एक प्रभु में ही लगा रहना चाहिये तब हीं स्वर्ग के अलौकिक आनंद मिल सकते हैं।

घुड़दौड़ के मैदान में दौड़ते हुए पवन वेग घोड़े पर सवारी करने वाला मनुष्य जो अपना मन दूसरी जगह लगावे तो तुरंत ही घोड़े पर से नीचे गिर जाय। जो वह बहुत ही होशियार हो और गिरने से बच जाय तब भी बाजी तो हार ही जाय। वैसे ही भक्ति करते २ जो हमारा मन किसी दूसरी जगह चला जाय तो हम नीचे अर्थात् दुनियांदारी के मोह में जन्म मरण के चक्कर में गिर जाते हैं और मोक्ष पाने को बाजी हार जाते हैं। इससे प्रभु को छोड़कर अन्यत्र कहीं भी मन को नहीं जाने देना चाहिये। परीक्षा देते समय जो विद्यार्थी अपना मन कहीं दूसरी जगह लगा दे तो वह अवश्य फेल हो जाता है, वैसे ईश्वर भजन के समय जो हमारा मन दूसरी जगग जाय तो हम भी भक्ति की परीक्षा में फेल हो जाते हैं। परीक्षा के समय में भी जो हम मन को इधर उधर भटकने दें तो कितनी नालायकी की बात है? इससे इस बात की सँभाल रखो कि, इस तरह की बेपरवाही मन में जमने न पावे।

भाइयो! अधिक भीड़ वाली सड़क पर बाइसिकल चलाने में कितनी सावधानी और कितना ध्यान रखना पड़ता है? और जो जरा ध्यान में चूके तो कैसे धम से गिर पड़ते हैं सो तुमने देखा ही है! ऐसी स्थूल बात ही में जब इतना ध्यान देना पड़ता है तब भक्ति जैसे अद्‌भुत रहस्य वाले विषय में ध्यान जैसे सूक्ष्म विषय में और मन वाणी से परे ऐसे अगम्य ईश्वर को पहँचानने में कितना ध्यान रखना और मन को कितना एकाग्र करना चाहिये सो तो विचारो! इतनी एकाग्रता विना ईश्वर कैसे प्रसन्न हो सकता है? और जब तक ईश्वर प्रसन्न न हो तब तक हमारी भक्ति किस काम की? तब तक हमारा कल्याण कैसे हो? इसलिये जैसे बने वैसे एकाग्रता करके मन को प्रभु ही में पिरो रखने का यत्न करो! तो शनैः २ प्रभु तुमको सफलता देगा।

दोहा—परमेश्वरसों प्रीति अरु, परनारिनसों हँसना ।
तुलसी दोनों ना बनै, चून खाय अरु भसना ॥

*****

२५५ काँच के टुकड़े को सच्चा हीरा मानने वाले और सच्चे हीरे को गधे के पैर में बांधने वाले का उदाहरण

एक कुम्हार मट्टी खोदने गया। वहां पर उसे मट्टी के खान में से एक सच्चा हीरा मिला परन्तु वह उसकी कीमत नहीं समझता था इससे उसने उसे गधे के पैर में बांध दिया। दूसरे एक आदमी को काँच का टुकड़ा मिला। उसने उसे सच्चा और कीमती हीरा समझकर घर में ला रखा और उसके भरोसे पर खूब खर्च करना शुरू किया। यहां तक कि वह कर्जदार हो गया और चारों ओर से रुपयों का तकाजा होने लगा तब तो उसने एक दिन वह काँच का टुकड़ा अपने एक बोहरे को दिखलाया और पूछा "इस सच्चे हीरे का क्या मोल है?"

बोहरे ने कहा "भाई! यह तो हीरा नहीं है केवल काँच का टुकड़ा है।"

इतना सुनते ही वह चौंक उठा और बोला "हाय हाय! यह तुम क्या कहते हो? यह हीरा नहीं है? मैं तो इसको बढ़िया हीरा समझता था और इसी के भरोसे पर अनापशनाप खर्च करता था! हाय हाय! मैं तो कर्जदार बन गया! अब क्या करूं?"

बोहरे ने कहा "तू इसे हीरा समझ चाहे हीरे से भी कोई दूसरी कीमती चीज समझ परन्तु यह तो काँच है! तेरे समझने से यह हीरा थोड़ा ही हो जायेगा?"

इसके बाद बोहरे ने उस पर नालिश की और डिगरी कराकर जेल खाने में कैद करा दिया।

हमको भी यह बात ठीक ही जँचती है। कांच के टुकड़े को हीरा समझकर उसके भरोसे इतना खर्च करने वाले को और गधे के पैर में हीरा बांधने वाले दोनों ही को हम मूर्ख बताते हैं तब हमको भी तो यह सोचना चाहिये कि, हम क्या करते हैं? ईश्वर जो हमारे मुकुट पर रखने योग्य है, सहस्त्रदलकमल में ब्रह्मरंध ध्यान करने योग्य है, और सर्वभाव से सर्वकाल में हृदय में धारण करने योग्य है उसको भूलकर हम झूंठे व्यवहार को शिर पर धारण करते हैं और हृदय में गहरे भाव से मर रखते हैं इसका

अर्थ गधे के पैर में हीरा बांधना नहीं तो और क्या है? जहां ईश्वर को रखना चाहिये वहां हम व्यवहार को रखते हैं सो क्या मूर्खता नहीं है? और व्यवहार, जो कांच के टुकड़े समान है, हम सच्चा मानते हैं और उसके भरोसे पर माल मारते हैं अर्थात् मौज उड़ाते हैं सो क्या इसका उत्तर नहीं देना पड़ेगा? कांच के टुकड़े को हीरा मानने वाले का तो कभी न कभी जेल से छुटकारा भी हुआ परंतु हम जो झूँठी माया को सच्ची समझ रहे हैं और उसी के भरोसे पर कूदते फांदते हैं। नरक में गये विना कभी छूट ही नहीं सकेंगे!

भाइयो! माया को त्यागना कुछ सुगम काम नहीं है! उसमें तो बड़े २ महात्मा भी चक्कर खा चुके हैं! माया त्यागने के झगड़े में न लगो परंतु ईश्वर के पवित्र नाम को पकड़ रखो, इस नाम की महिमा ऐसी है और इस नाम में ऐसा बल है कि, जैसे २ नामस्मरण बढ़ता जायेगा वैसे २ माया आप ही आप घटती चली जायेगी। इसलिये संसार को थोड़ी देर का सपना समझो और सुख दुःख में ईश्वर की इच्छा के अधीन हो नाम स्मरण करो! नामस्मरण करो!

कवित्त

नाम लिये पूतको पुनीत किये पातकीश, आरति निवारी प्रभु पाहि कहे फीलकी । छलिनकी छोड़ीसी निगोड़ी छोटी जाति पांति, कीनी लीन आपमें भामिनी भोड़े भीलकी ।। तुलसी औतारिबो न अन्त, मोहुँ नीके है प्रतीति रावरे सुझाव शीलकी । देव तो दयानिकेत देत दाद दीननकी, मेरी बार मेरेही अभाग नाथ ढ़ील की ।।१।।

*****

२५६ शास्त्रों का पार नहीं पाया जा सकता, इसलिये उनमें से तुम ले सको उतना तत्व ले लो!

मिठाई की दूकान में सैकड़ों प्रकार की मनों मिठाई होती है, जैसे लड्डू, जलेबी, खाजा, खुरमा, मोहनभोग, बरफी, पेड़ा, गुलाबजामुन आदि परंतु उन सबको हम खरीद नहीं सकते, खरीद लें तो खा नहीं सकते और जो खा भी लें तो पचा नहीं सकते। हां! इतना हम कर सकते हैं कि उसमें से जिस प्रकार की मिठाई हमको अधिक प्रिय लगती हो उस प्रकार की मिठाई आवश्यकता के अनुसार खरीदकर खालें और वह विना किसी प्रकार के व्याधि सहे पाचन भी हो सकती है, इसी तरह हमारे शास्त्र हैं।

सो भी मिठाई की दूकान ही के समान हैं जुदी २ प्रकार की मिठाई की तरह शास्त्र में भी ज्ञान, भक्ति, कर्म, योग, अतिथि सत्कार, व्रत, दान, तप, यज्ञ, तीर्थ, देशसेवा, दीनसेवा, नामस्मरण, कुटुम्बपालन, संन्यास आदि सैकड़ों प्रकार के धर्म वर्णित हैं। यद्यपि ये सारे ही धर्म हमको खच्छे लगते हैं परन्तु एक मनुष्य इन सबको पाल नहीं सकता और न सबका रहस्य ही समझ में आ सकता, इसलिये देश, काल, संयोग, साधन और अपनी रूचि के अनुसार तुम जिसको सुगमता से कर सको उसी मार्ग को ग्रहण कर लो। तात्पर्य यह कि मिठाई की सारी दूकान खरीद लेने की झंझट में न पड़ो परंतु उसमें से जो तुम अच्छी से अच्छी समझो वही अपनी आवश्यकता के अनुसार खरीद लो तो तुम्हारा काम बन जायेगा क्योंकि उसमें से सब ही में स्वादिष्ठ होने, भूख मिटाने और जीवन को टिका रखने का गुण है वैसे ही धर्म की कोई भी मिठाई खाने से आनंद तृप्ति और अनंत जीवन मिलता है इसलिये भाइयो! जो लंबे झगड़े में न पड़कर थोड़े ही में काम बनाना हो तो अपने स्वभाव और संयोग तथा साधन के अनुसार तुमको रुचे और तुम जिसे ले सको वही मिठाई पसंद करो तो तुम्हारी भूख भी मिट जायेगी और काम भी बन जायेगा।

शास्त्रों के समुद्र में गोता मारने का काम चाहे जिस मनुष्य से नहीं हो सकता। यह तो किसी भाग्यशाली साधु संन्यासी का और पंड़ित का काम है! हम तो गृहस्थ हैं और कुटुंबजाल और दुनियांदारी में फँसे हुए हैं इससे उस समुद्र के किनारे पर खड़े रहकर अच्छी २ सीपें चुन ले तब हीं बहुत है। हम दूकान भर की मिठाई खरीद नहीं सकते और शास्त्र के समुद्र में गोता नहीं मार सकते! हमको तो अपने काम लायक मिठाई मिल जाने से संतोष कर लेना चाहिये जो धीरज के साथ भक्ति और सत्संग में लगे रहोगे तो प्रभु कृपा से इतना पा लेना कुछ कठिन नहीं है–

दोहा–रामनाम मणि दीप धर, जीह देहरी द्वार ।
तुलसी भीतर बाहरे, जो चाहत उजियार ॥

*****

२५७ पाप से बचने के लिये सदा परमेश्वर को याद करते रहो!

एक युवा पुरुष अपने पिता का चित्र जेब में सदा साथ लिये फिरता

और जब तक उसे देखा करता था। एक दिन उसके एक मित्र ने पूछा "भाई! यह चित्र किसका है और इसे तू बारबार क्यों देखा करता है?"

उसने उत्तर दिया "मित्र! यह मेरे पिता का चित्र है मेरे पिता बहुत ही भले और प्रतिष्ठा वाले हैं और मुझ पर बड़ा प्रेम रखते हैं मैं बारबार चित्र को इसीलिये देखता हूं कि जिसमें उनकी याद बनी रहने से मेरे हाथ से कोई ऐसा काम न हो जो उनको बुरा लगे।"

इसी तरह हमको भी हमारे महान् पवित्र पिता दयालु ईश्वर का प्रतिपल स्मरण रखना चाहिये, जिसमें उसके नाम के बल से बुरे कामों और बुरे विचारों से बच सकें। भाइयो! पाप से बचने के लिये पवित्र ईश्वर के नाम को अपने हृदय में पूर्ण प्रेम से भर रखो! पूर्ण विश्वासपूर्वक भर रखो!

*****

२५८ कमल के पत्ते पानी में रहते हैं तब भी उन पर पानी का असर नहीं होता, वैसे ही भक्त लोग जगत् में रहते हैं तब भी उन पर जगत् का मोह असर नहीं करता

साधारण लोगों में और भक्तों में क्या अंतर है? जैसे और लोगों को खाना पीना पड़ता है, बातचीत करनी पड़ती है, चलना फिरना पड़ता है और दुनियांदारी का काम धंधा करना पड़ता है वैसे ही भक्तों को भी वे सारे काम करने पड़ते हैं। तब भक्त में और जगत् में अंतर क्या? अंतर इतना ही है कि, व्यवहारी लोग जो काम करते हैं वह अपने अहंकार से और अपने स्वार्थ से करते हैं, परंतु भक्तजन जो कुछ भी करते हैं वह ईश्वर के अर्पण करके ईश्वर के ही लिये करते हैं। इससे भक्तजन तो निर्लेप आसक्ति रहित रहते हैं और व्यवहारी लोग आसक्त होकर काम करने से बंधन में पड़ते हैं। भक्त में और जगत् में इतना अंतर है कि, जीभ जैसे नाना प्रकार के चिकने पदार्थ खाती तब भी उस पर चिकनापन असर नहीं करता, मगर पानी में रहने पर भी सदा सूखा ही रहता है, कमल पानी में होता है तब भी उस पर पानी का असर नहीं होता, सूर्य भगवान् अच्छी और बुरी सब ही वस्तुओं पर प्रकाश करता है तब भी उस पर उनका गुणदोष नहीं लगता और आग सर्वभक्षी होने पर भी पुण्य पाप से अलग है वैसे ही भक्तजन जगत् में रहते हैं तब भी वे जगत् के मोह से दूर

रहते हैं, क्योंकि वे अपनी आसक्ति से काम नहीं करते हैं और जो करते हैं वह भी ईश्वर के निमित्त करते हैं अर्थात् देखने में वे हमारे जैसे ही हैं और रहते भी हमारे ही पास हैं परंतु तब भी वे आचरण में हमसे श्रेष्ठ हैं और हमसे न्यारे हैं। भाइयो! ऐसे उत्तम भक्तों को प्रभु के प्यारे जनों को अपनी और उनकी योग्गता के अनुसार मान दो और वैसे उत्तम बनने का यत्न करो वैसी उत्तमता धर्म से, भक्ति से और प्रभु की आज्ञा पालने से ही आ सकती है। इसलिये जैसे वैसे ईश्वर की आज्ञा पालने का पूरा २ ध्यान रखो! तुम ज्यों २ ईश्वर की आज्ञा अधिक २ पालते जाओगे त्यों २ दुनियांदारी का मोह तुमको कम होता जायेगा और काल पाकर जगत् में रहते हुए भी भक्तजनों की तरह दुनियां से न्यारे रह सकोगे!

*****

२५९ भक्ति में लगे रहो! फल की उतावली मत करो!

भक्ति का जबाब मिलने में देर लगे तब समझो कि अभी हमारी भक्ति बालक अवस्था में है जैसे पिता का वारसा पुत्र को योग्य उम्र का हुए विना नहीं मिलता वैसे प्रभु की ओर से मिलने वाला शांतिरूपी इनाम पाने के लिये हमारी भक्ति भी बड़ी उम्र की होनी चाहिये जैसे पुत्र पिता को वारसा पाने का हकदार है वैसे ही हम भी जब से ईश्वर की भक्ति करने लगें तब से ईश्वरी आनंद पाने के हकदार हो चुके परंतु मिलेगा तब हीं जब हम योग्य उम्र के हो जायँगे। इनाम पाने की हड़बड़ी मत करो, परंतु भगवत्सेवा करके साबित कर दिखाओ कि हम ईश्वरीय कृपा, ईश्वरीय आनंद के हकदार हैं जो हमारा सेवा करना बराबर जारी रहेगा, जो हमारी आंतरिक प्रार्थना निरंतर जारी रहेगी तो समय आने पर हमको उसका बदला मिले विना नहीं रहेगा। इसलिये भाइयो! धीरज से सत्संग में, परमार्थ में, मनोनिग्रह में, भक्ति में लगे रहो! इसका फल बहुत बड़ा है। तुम अनुभव कर सकते हो मान सकते हो और कल्पना कर सकते हो उससे भी भक्ति का आनंद अधिक है। इसलिये धीरज से भक्ति में लगे रहो! भक्ति में रंगे रहो!! फल पाने की हड़बड़ी मत करो!!!

*****

२६० मैं ज्ञानी का गुरु हूं परंतु अज्ञानी का दास हूं

किसी गांव में एक भला आदमी रहता था वह प्रसंगोपात्त सब लोगों

को अच्छे उपदेश दिया करता था और इसी से बहुत आदमी उसका बड़ा मान करते थे। एक मूर्ख मनुष्य को यह बात अच्छी न लगी। वह मन में कहने लगा कि "ये लोग इसका इतना मान क्यों करते हैं ऐसे तो संसार में सैकड़ों आदमी पड़े हैं मुझे तो कोई पूछता ही नहीं है और यह सबका गुरु बन बैठा यह क्या बात है? इसका गुरुपन भुला दूं तब ही मैं सच्चा, एक ही ऐसी तजवीज निकालूं कि बच्चाराम अपने आप ही रास्ता पकड़ें?"

बस! एक दिन वह रास्ते में जा बैठा ज्यों ही वह भला आदमी उस मार्ग से निकला कि उस मूर्ख ने लाठी उठाकर उससे पूछा "क्या सब लोगों का गुरु तू ही है?

उसने उत्तर दिया "क्यों भाई! तुझको क्या काम है?"

उस मूर्ख ने कहा "काम क्या है? मुझे उसकी खबर लेनी है! मुझे उसकी पूजा करनी है!"

गुरुजी चेत गये और बोले 'भाई मैं तो ज्ञानी का गुरु हूं और अज्ञानी का दास हूं! तेरा तो मैं दास हूं। गुरु नहीं हूं। मुझे तू क्यों मारता है?'

जब इस तरह की अनेक बातें नम्रता की कहीं तब गुरुजी उस मूर्ख के हाथ से छूटने पाये।

इसी तरह अच्छे गुरु हैं सो उन्हीं के लिये हैं जो नया जानने की इच्छा रखते हैं, धर्म पर प्रेम रखते हैं और जिनको प्रभु के नाम से नेह है, आसुरी वृत्ति के लोगों के लिये वे गुरु नहीं हैं, ऐसे अदेखे, नास्तिक लुच्चे और आधे भ्रष्ट लोग गुरुओं पर पत्थर फेंकें तो क्या उनका गुरुपन मिट सकता है? कदापि नहीं वरन् ऐसा होने से तो लोगों का उन पर और भी अधिक प्रेम बढ़ता जाता है, क्योंकि वे ऐसे लुच्चों को कुछ भी परवाह नहीं करते, वरन् दिन २ सुधरते जाते हैं, दिन २ अपना अभ्यास बढ़ाते जाते हैं और दिन रात अपना औरों को सुधारते तथा प्रभु के मार्ग पर लाने ही में लगाते हैं, इससे समर्थ प्रभु उनकी सहायता करता है इसलिये याद रखोकि, अज्ञानियों के लाभ न उठा सकने से गुरुओं का गुरुपन कम नहीं हो सकता, क्योंकि उनको गुरुपन महत्व का आधार ऐसे आसुरी वृत्तिवालों के कहने पर नहीं है परन्तु उस महत्व का संबंध तो ईश्वर के नाम के साथ जुड़ा हुआ है, इस लिये जब तक गुरुजन ईश्वर के पवित्र नाम

को पकड़े रहें और ईश्वर की आज्ञा के अनुसार देशकाल का विचार करके चलें तब तक ईश्वर उनकी सहायता करता है, और जब तक उनका चलन बरताव ठीक रहे तब तक उनको गुरु मानने को और उनको उचित सहायता देने को हम हमारे धर्म से बँधें हुए हैं।

*****

२६१ हमारा बडप्पन वैभव भोगने में नहीं है, परन्तु धर्म पालने में है

अपने सुख और अपने स्वार्थ को तो पशु भी समझते हैं। पक्षी हमसे अधिक विषय भोगते हैं। कीड़े अच्छा अच्छा खाना पाते हैं। कुत्ते बढ़िया गाड़ी में बैठकर सैर करते हैं। मक्खियाँ सेंट और पोमेटम से भी बढ़िया सुगन्ध सूंघती है। चिऊंटियां नित्यप्रति शक्कर खाती हैं, कबूतर हमसे अधिक विषय भोग सकता है। गाय को सब लोग पूजते हैं और सिंह से सब डरते हैं जो इस तरह पर स्वार्थ साधने से और वैभव भोगने से ही सच्चा महत्त्व हो तो हमारी अपेक्षा वह और प्राणियों में अधिक हैं, परंतु नहीं! इसका नाम सच्चा महत्त्व नहीं है। सच्चा महत्त्व परमार्थ में है! हमारा बड़प्पन तो धर्म में है! अपने स्वार्थ तो हलके प्रकार के पशु पक्षी भी समझते हैं और जो हम भी वैसे स्वार्थ में फँसे रहें तो फिर हममें और पशुओं में अन्तर ही क्या? कवि कहते हैं:-

४६ दोहा

काम क्रोध निद्रा क्षुधा, भय पशूनकेहु होय ।
धर्म अधिक मानुषविषै, ताबिन पशुसम जोय ।।

*****

२६२ दुःख के समय में भी प्रभु को नहीं भूलते वे ही सच्चे भक्त हैं

जब पत्ते गिर जाते हैं तब हीं वृक्षों पर रहनेवाले पक्षियों के घोंसले दिखाई देने लगते हैं, परन्तु जब तक पत्ते सघन रहते हैं तब तक घोंसले स्पष्ट दिखाई नहीं देते वैसे ही जब दुःख पड़ता है तब ही मनुष्य की परीक्षा होती है। आस पास के वैभवरूपी पत्ते गिर जाने से दुःख के समय हमारे हृदय के भाव अधिक स्पष्टरूप पर दिखाई देने लगते हैं अर्थात् धर्म की उस समय सच्ची परीक्षा सुगमता से हो सकती है। जब तक सब प्रकार की सुविधा हो, एक को बुलाने में तीन नौकर दौड़ते हों और एक वस्तु मँगाने में ग्यारह वस्तु आपके पास पहुँचती हों, तब तक धर्म की सच्ची

परीक्षा नहीं हो सकती किन्तु दुःख में सच्ची परीक्षा हो सकती है। इसलिये दुःख के समय में भी जो भक्ति न छोड़े परन्तु अधिक अधिक प्रभु में लीन हों वे ही सच्चे भक्त हैं। सुविधा के समय अथवा किसी लोभ लालच में आकर मंदिर में हर एक मनुष्य दौड़कर जा सकता है परन्तु दुनियादारी के तथा शरीर के दुःख के समय भी जो प्रभु को न भूले और अपने धर्म में चूकें वे ही सच्चे भक्त हैं।

भक्ति में भी धन का महत्त्व तो लगा ही रहता है। जैसे व्यापार में अच्छा नफा मिला हो तब तो चांदी के पलने, फूल के हिंडोले, नई नई पिछवाइयें अर्थात् पीठ पर के परदे और उत्सवों पर न्योते बुलावों की बड़ी धूमधाम चलती है और बहुत से सेवक हों तथा सब प्रकार की सुविधा हो तब तो यह छू गया और वह मिट गया आदि बातें होती हैं, परंतु जब तंगी हो, आपत्ति हो अथवा दुःख हो तब भी ईश्वर का स्मरण बना रहे तो मनुष्य की बलिहारी है परंतु ऐसा बनता उन्हीं लोगों से है जो सच्चे भाग्यशाली हों, प्रभु के कृपापात्र हों और पूर्ण प्रेमी भक्त हों। नहीं तो बड़े बड़े सेठ साहूकार जब बीमार पड़ते हैं तब जितनी बार डाक्टरों को याद करते हैं उतनी बार प्रभु को याद नहीं करते। इसी से महात्माओं ने कहा है कि धर्म की परीक्षा दुःख ही के समय में होती है और उस परीक्षा में जो ठहरता है वही प्रभु को प्रिय है।

*****

२६३ प्रभु का नाम लिखकर गले में बांधने से कुछ लाभ नहीं होता, परन्तु हृदय में धारण करने से लाभ होता है

हमारे बहुत से भाई श्रीराम का नाम और श्रीनाथ जी नाम लिखकर गले में लटकाया करते हैं परंतु यह केवल जेवर की तरह बाहरी शोभा ही के लिये पहनते हैं परंतु उस पवित्र रामनाम का असर न तो वे न तो अनुभव कर सकते हैं और न कुछ अच्छे काम करके लोगों पर ही उसका अच्छा असर कर सकते हैं। इस तरह अपने तईं अच्छा बताने के लिये अथवा औरों को अच्छा दिखाने के लिये प्रभु के नाम के ताबीज गले में लटकाना परन्तु उसके अनुसार चलना बिल्कुल नहीं, बड़ी लज्जा की बात हैं। यह तो लोगों को और प्रभु को भी धोखा देना है, क्योंकि इस तरह पर ताबीज गले में लटकाने का अर्थ यही दिखाना है कि हम प्रभु के सच्चे भक्त हैं और प्रत्येक काम में प्रभु को याद करते हैं, तथा जिस तरह हमारे

गले में प्रभु का नाम लटकता है वैसे ही प्रभु का पवित्र नाम हमारे हृदय में भी अंकित हो रहा है अर्थात् उस नाम के बल से हम कभी पापकर्म नहीं करेंगे। अपनी भक्ति के लिये लोगों को ऐसा विश्वासपात्र दिखाना और प्रभु के आगे इस प्रकार का स्वीकारपत्र पेश करना ही प्रभु के नाम को गले में लटकाना का अर्थ है। जो इस अर्थ के अनुसार आचरण न हों तो ऐसे ऐसे सैंकड़ों ताबीज लटकाने से भी कुछ लाभ नहीं। इसलिये रामनामी जैसे सोने और हीरे में जड़वाकर गले में लटकाई जाती है वैसे ही प्रभु का नाम परमार्थ और मनोनिग्रह में जड़कर हृदय में धारण करना चाहिये। तब ही प्रभु प्रसन्न हो सकता है और बाहरी बुरे असर रुक सकते हैं। केवल सुंदर सुंदर कंठियाँ और अच्छे अच्छे ताबीज लटकाने से प्रभु प्रसन्न नहीं होता और बाहरी बुरे असर नहीं रुक सकते। परंतु सर्व शक्तिमान् एकमात्र परमेश्वर के महान् नाम को सर्वभाव से हृदय में धारण करने से ही वैसा हो सकता है। इसलिये दयालु प्रभु के नाम के ताबीज और अनंत ब्रह्मांड के नायक के नाम की कंठियां लोगों को ठगने के लिये और अपने आपको ठगकर ईश्वर के अपराधी बनने के लिये मत बांधो! किंतु उसके हेतु के अनुसार आचरण करो! तात्पर्य यह कि, ताबीज कंठी भले ही बांधो परंतु सचमुच भक्त बनो। मन में कपट रखकर बांधोगे तो उसका कुछ फल नहीं। वह तो उलटा पाप है, क्योंकि ऐसा करना धोखा देना नहीं है। इस प्रकार की धोखादेही न हो सकने का उपाय यही है कि सर्वात्मभाव से प्रभु की शरण जाना और जितनी बन सके उतनी दुनियां में भलाई करना।

४७ पद

नाना रूप नाना जाके रंग । नानाभेष करहि इक रंगरंग ।।
नानाविध कीनो विस्तार । प्रभु अविनाशी एकंकार ।।
नाना चरित करे छिनमाहीं । पूरिरह्यो पूरन सबठाहीं ।।
नानाविधि कर बनत बनाई । अपनी कीमत आपै पाई ।।
सबघट जिसके सबतिके ठाउं । जपजप जीवै नानकहरिनाउं ।।

*****

हम पर ईश्वर की अनंत दया है उसका पहले उपकार मानकर तब दूसरी अधिक कृपा मांगो !

एक स्त्री जब तब कहा करती "मैंने पुरुषोत्तम मास में एक बार

भोजन किया, श्रावण महीने में सोमवार किये, चार महीने चौमास की एकादशी की, डाकोरजी को मनौती मानी। महादेव पर रुद्र कराई, अंबाजी पर घाट (चूनरी) चढ़ाई, सत्यनारायण का व्रत किया, ताजियों पर नारियल चढ़ाया। पीपल में पानी डाला, ब्राह्मण भोजन कराया और नित्यप्रति माला फेरी परंतु तब भी ईश्वर ने मुझ पर कृपा नहीं की।"

उसकी यह बात सुनकर एक भक्त ने पूछा "बाई! तुम ईश्वर से क्या मांगती हो!"

बुढ़िया ने कहा "महाराज! मेरे एक ही पुत्र है। उसका विवाह हुए आज दस बरस हो गये और बहू की उमर भी पूरे उन्नीस बरस की हो गई तब भी महाराज! उसके कोई लड़का बाला नहीं हुआ, मैं बूढ़ी हो गयी और चाहती हूं कि पोते को गोद में खिला लूं तो कलेजा ठंडा हो जाय परंतु प्रभु कृपा नहीं करता।"

बुढ़िया की यह बात सुनकर भक्त को कुछ हँसी आई और साथ ही में ईश्वर के लिये लोगों के विचार जानकर उसको कुछ दुःख भी लगा उसने कहा माजी! बगल में बच्चा और गांव में ढिंढ़ोरावाली बात क्यों करती हो? ईश्वर की कृपा बिना एक पल भर भी तो रहा नहीं जा सकता। तुम कहती हो कि ईश्वर की कृपा नहीं है क्या यह सच है? ईश्वर की कृपा बिना ही क्या तुम इतनी उमर भोग रही हो? ईश्वर की कृपा बिना ही क्या तुम भली चंगी बनी हुई हो? ईश्वर की कृपा बिना ही क्या तुम्हारे पुत्र का विवाह हो गया? ईश्वर की कृपा बिना ही क्या बहू बेटे तुम्हारी सेवा करते हैं? ईश्वर की कृपा बिना ही क्या तुम मंदिर में भक्ति करने जा सकती हो? और ईश्वर की कृपा बिना ही क्या तुम सब जीते जागते हो? ईश्वर की इतनी बड़ी कृपा है सो तो तुम्हारे किसी गिनती में ही नहीं है? तुम्हारे पुत्र के पुत्र हो तब ही क्या ईश्वर की कृपा समझी जावे? किसी की मन बिचारी बात क्या कभी हुई है? प्रभु ने इतनी बड़ी कृपा रखी है उसको तो क्या कुछ भी नहीं? वह तो क्या मुफ्त ही? इसमें तो क्या तुम्हारा हक ही होगा? जिसने तुम पर इतनी बड़ी कृपा की है उस दयालु ईश्वर को तुमने क्या कभी धन्यवाद दिया है? जो ईश्वर का उपकार माने वह क्या कभी ईश्वर की शिकायत करता है? बाई! तुप पर ईश्वर ने जो पहले कृपा की और अब भी कृपा कर रखी है प्रथम उसके लिये ईश्वर का उपकार मानो और फिर दूसरी कृपा माँगो तो ईश्वर अवश्य तुम्हारी

प्रार्थना स्वीकार करेगा!"

जरा इस बात को तो विचारो कि, ईश्वर ने हम पर जितनी कृपा पहिले ही से कर रखी है वह कितनी बड़ी है! हमको ऐसे उत्तम वर्ण में जन्म देने के बदले जो ईश्वर ने नीच वर्ण में अथवा पशुपक्षी में जन्म दिया होता तो हम क्या कर लेते? इस पुण्यभूमि में जन्म देने के बदले भगवान् हमको अरबस्थान के रेतीले मैदान में, अफ्रिका के मनुष्यभक्षी जंगलो में या यूरोप के उत्तरीय बर्फवाले देश में जन्म दे देता तो हम कैसी बुरी दशा में जा पड़ते? कितने मनुष्य अंगहीन होते हैं? कोई अंधे होते हैं, कोई लंगड़े होते हैं, कोई बहरे होते हैं और कोई टूटे होते हैं परंतु हम वैसे नहीं है सो तो देखो? कितने आदमी कोढ़ी क्षय रोगवाले और अन्य रोगों से पीड़ित होते हैं परंतु हम वैसे नहीं है सो भी तो देखो! प्लेग से, हैजे से, ज्वर से और दूसरे रोगों से हजारों लाखों आदमी हमारे देखते देखते फुँक गये और हम वैसे के वैसे जीते जागते बैठे हैं, इस उपकार को तो देखो, हजारों मूर्ख मनुष्यों की अपेक्षा हमको परमेश्वर ने अच्छी समझ शक्ति दी है इसका तो विचार करो! दुनियां में कितने आदमी अन्न बिना मरते हैं और हम कैसे माल उड़ाते हैं। क्या यह ईश्वर की कृपा नहीं है? बहुत से मनुष्य पुत्र को तरसते हैं परन्तु हम हमारे मां बाप के पुत्र हैं। हमारे मां बाप को पुत्र के लिये नहीं तरसना पड़ा सो क्या ईश्वर की कम कृपा है? हमारे कुटुंब में संप है सो क्या ईश्वर की कृपा नहीं है। हमको जल, वायु, अग्नि आदि सब पदार्थ हमारी आवश्यकता के अनुसार मिलते हैं सो क्या थोड़ी बात है? भाई ईश्वर की कृपा बिना हम एक श्वास भी नहीं ले सकते! एक मिनिट भी नहीं जी सकते! जरा विचार तो करो कि, घर में बैठे हो और ऊपर से छत टूट पड़े तो हम क्या कर सकते हैं? मार्ग में चलने चलने ऊपर से बिजली टूट पड़े तो हमारा क्या जोर है? रेलगाड़ी में बैठकर कहीं जाते हों और अकस्मात् रेल लड़ जायं तो हमार कुछ वश चल सकता है? कहीं भोजन करने जायं और खाने से हैजा हो जाय तो क्या वश है? कहीं नाच तमाशे देखने जायँ और आग लग उठे तो हम उसका क्या कर सकते हैं? रात को बिछौने में सोते सोते ही सांप काट खाय तो हमारा क्या वश चल सकता है? हवा खाने जाते समय रास्तें मे घोड़े भड़क उठें और गाड़ी टूटकर हमारी हड्डियां चूरचूर हो जायँ तो क्या जोर है? ऐसी ऐसी अनेक आपत्तियों में से ईश्वर ने हमको आज तक

बचाया है सो क्या कम कृपा है? इस तरह ईश्वर की कृपा हमें भरी हुई है और हमारे सन्मुख छाई हुई है उसको भूलकर दूसरी कृपा की खोज करना तो 'बगल में बच्चा और गांव में ढिंढ़ोरा' करना है इसलिये भाइयो! ईश्वर की विशेष कृपा मांगने की इच्छा रखने से अखंड वर्तमान कृपा के लिये सच्चे मन से उपकार मानो! केवल मुँह से थोड़े शब्द कह डालने में ही ईश्वर का उपकार नहीं माना जाता, परन्तु उस उपकार को क्षण में अपने जीवन में अनुभव करना ही सच्चे भक्त का लक्षण है।

*****

२६५ धर्म का सार जीव में दया और नाम में भक्ति

धर्म के लिये शास्त्रों में इतनी बातें लिखी है, इतने नियम बांधे है और इतनी बारीकियां की हैं कि जिसका किसी भी दिन पार नहीं आ सकता। नीतिशास्त्र इतना लंबा है और कर्मकांड इतना बड़ा है कि, जमाने निकल जायँ तब भी पूरा नहीं हो सकता, परन्तु महात्माओं ने विश्वासू जीवन व्यतीत करनेवालों के लिये बहुत ही सूक्ष्ममार्ग बताये हैं महात्मा बुद्धदेव ने कहा है कि जीव में दया और नाम में भक्ति ही धर्म का सार है। प्राणीमात्र में दया रखना और प्रभु का स्मरण करते करते प्रभुमय बन जाना ही सब धर्मो का तत्त्व है। वेदांती भी इसी तरह बहुत थोड़े में से सारा तत्त्व बदल देते हैं। महात्मा शंकराचार्य ने कहा है कि–

'ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या

ईश्वर सत्य है और जगत् मिथ्या है इसलिये सत्य को साधो और मिथ्या को मिथ्या मानो! तात्पर्य यह कि संसार की आसक्ति छोड़कर ईश्वर पर प्रेम बढ़ाओ, ऐसा करना ही धर्म है। सब पुराणों का सब शास्त्रों का, सब स्मृतियों का औ सब वेदों का सार यही है कि, भक्ति और परमार्थ करना। हजारों विषयों और लाखों पुस्तकों का यही तत्त्व है इन दोनों विषयों को पकड़ अपने जीवन में जो इनका अनुभव करता है उसी को यह दुस्तर संसारसागर पार करना सुगम होता है, इसलिये भाइयो! प्रभु के नाम में भक्ति और दुनियां के साथ भलाई इन दोनों बातों को पकड़े रखो! पकड़े रखो!

*****

२६६ अपनी हलकी इच्छाओं को पार पाड़ने के लिये अपनी अमूल्य भक्ति को मत बेचो

अपनी हलकी इच्छाओं को पूरा करने के लिये और तुच्छ वस्तुओं को पाने के लिये अपनी अमूल्य भक्ति को ईश्वर के नाम को बेच देना क्या लज्जा की बात नहीं है? बहुत से साधुओं को हमने ऐसे कहते सुना है कि, 'हे रामजी! थोड़ा गांजा तम्बाकू भेज दे! वैसे ही बहुत से ब्राह्मण कहते सुनाई पड़ते हैं कि 'प्रभु इस समय लड्डू नहीं भेजता।' क्या यह दुःख की बात नहीं है? गाँजा फूँकने और लड्डू खाने के लिये भक्ति करना और प्रभु का नाम बेचना कितना बुरा है? सो विचार करो! पड़ोसियों के साथ अथवा किसी दूसरे के साथ लड़ाई हो जाय तब बहुत सी स्त्रियां कहा करती हैं कि 'रांड डाइन को प्रभु लेता भी नहीं है! हे नाथ! इस रांड का तो सत्यानाश ही करेगा।'

हमारी प्रार्थनाएँ ऐसी होनी चाहिये क्या? तब राक्षसों में और हममें अन्तर ही क्या? हमारे बहुत से भाई कहते हैं कि 'हे प्रभु! हमारी तनख्वाह बढ़ाना!" क्या प्रभु को हमारी चिंता नहीं है?

ऐसी हलकी हलकी और खराब वस्तुएँ मांगनेवालो की हलकाई है और ईश्वर पर अविश्वास है, क्योंकि ऐसा करने से हमारे ही मुँह से हमारा प्रभु पर अविश्वास प्रगट होता है। ऐसी ऐसी तुच्छ और बुरी वस्तुएँ मांगना एक प्रकार से प्रभु का अपमान करना है। किसी बड़े राजा के पास जाकर यदि कहा जाय कि 'आप कृपा करके मुझे कोई फटा पुराना कुरता दीजिये' तो क्या यह ठीक है? इससे राजा का अपमान होता है मांगनेवाले की मूर्खता प्रगट होती है! क्योंकि फटा टूटा कुरता तो किसी गरीब मनुष्य के पास से भी मिल सकता है! राजा से तो कोई अच्छी और बड़ी वस्तु मांगनी चाहिये। वैसे ही सर्वशक्तिमान् प्रभु से हमको निष्काम भक्ति ही मांगनी चाहिये। थोड़ी तनख्वाह बढ़ाने के लिये अथवा थोड़े गांजे तम्बाकू के लिये अपनी अमूल्य भक्ति को नहीं बेच देना चाहिये और ऐसी हलकी वस्तु मांगकर ईश्वर का अपमान नहीं करना चाहिये।

४८ दोहा

माँग चाहे मत माँग प्रभु, देइ हैं समय विचार ।
चतुर्मास आये जलद, बरसै वारि अपार ।।

२६७ अच्छे उपदेश का प्रभाव कभी खाली नहीं जाता

साधुलोग कहते हैं कि उपदेश है सो बीजसमान है। जो अच्छी जमीन में गिर जायं तो समय आने पर उसमें से अंकुर फूटे बिना नहीं रहता, वैसे ही गुरु के उपदेश भी सदा खाली नहीं जाते। कहते हैं कि:–

कहीं पर एक व्यास पंडित कथा कहता था, कथा में उसने दूसरों के अपराध क्षमा करने के लिये अच्छा उपदेश किया। उस उपदेश से प्रसन्न होकर कथा समाप्त होने पर लोग उसके पास बहुत कुछ भेंट रखने लगे उनमें से एक ने लाकर पंडित के पैरों के पास दो पत्थर धरे। तब किसी ने पूछा "भाई! और लोग तो पंडितजी की कथा से प्रसन्न होकर पैसे चढ़ाते हैं और तू पत्थर रखता है इसका कारण क्या?"

उसने उत्तर दिया 'पंडितजी ने आज मेरा एक अपराध किया है, इससे उनके शिर पर मारने को मैंनें दो पत्थर रखे थे परंतु अपराध को क्षमा करने का उनका उपदेश सुनने से मेरा क्रोध शांत हो गया। इससे मैंने भी उनका अपराध क्षमा करने का विचार कर लिया और जो पत्थर उनके शिर पर मारने को इकट्ठे किये थे वे उनके पैरों में धर दिये।"

भाइयो! उपदेश का प्रभाव ऐसा प्रबल है। इससे योग्य गुरुओं के मुख से सदा अथवा जब बने तब जरूर धर्म का उपदेश सुनना चाहिये, ऐसा करने से प्रथम तो हमारे दोष हमारे ही समझने में आते जाते हैं। फिर वे छूटते जाते हैं, फिर धर्म में प्रवृत्ति होती है और अंत में सद्गुरु के उपदेश के प्रभाव से प्रभुमय होना बन सकता है। इसलिये अच्छा उपदेश सुनने का अवसर जहाँ तक बन सके वहाँ तक कभी हाथ से नहीं जाने देना चाहिये।

*****

२६८ हमारी विजय कैसे हो? धर्म की तलवार और परमार्थ की देग चलाने से

सिख लोगों के धर्मगुरु गुरु गोविंदसिंहजी से उनके एक शिष्य ने पूछा "गुरु महाराज! हमारी विजय कैसे हो?"

तब उन ज्ञानी, भक्त और अनुभवी गुरु ने कहा "तेग और देग चलाते रहो तो तुम्हारी विजय हो सकती है।"

तात्पर्य यह है कि तेग अर्थात् तलवार और देग अर्थात् खाना पकाने की देग भी जन जारी रखना चाहिये। कोई भी मनुष्य किसी भी समय

आवे तो उसको खाना खिलाना इसका नाम देग है। तेग और देग से सिखों की तथा औरों की विजय हुई है। इतिहास जाननेवाले इस बात को स्वीकार करते हैं परंतु हमको अपनी आत्मा की विजय के लिये लोहे की तलवार चलाने की जरूरत नहीं है। हमको तो धर्म की तेग और परमार्थ की देग चलाना चाहिये। जो यह तेग और यह देग चले तो हमारी भी विजय हो सकती है इसमें कुछ भी संदेह नहीं है। हमारी लड़ाई पाप के साथ है, हमारी लड़ाई आसुरी वृत्ति के साथ है। हमारी लड़ाई हमारे अंतःकरण में स्थित अहंकार तथा नीचता की ओर ढुलकते हुए मन के साथ है। यह लड़ाई धर्म की तलवार प्रभु के नाम स्मरणरूप तलवार और परमार्थरूप देग चलती रखने से जीतने में आ सकती है। इसलिये पापरूप शत्रु के साथ अधर्मरूप शैतान के साथ विजय प्राप्त करने के लिये और प्रभु से इस विजय का फलरूप मोक्ष प्राप्त करने के लिये धर्म की तेग और परमार्थ की देग सदा चलाते रहो! विजय प्राप्त करने का यही उत्तम से उत्तम और छोटे से छोटा मार्ग है।

*****

२६९ जिसके हृदय में भगवदावेश भर जाता है उसको घर खो देना भी खटकता नहीं है

भक्तजन प्रभु के लिये गाते हैं:–

घर खोया नहीं खटकै, साधो! घर खोया नहीं खटकै।

धन्य है! ऐसा अनुभव लेनेवालों को धन्य है! जिसको प्रभु के नाम की लगन लग गई है, जिसने भगवद्रस चख लिया है, जिसने भक्ति के सुखों का स्वाद पा लिया है उसको तो:–

घर खोया नहीं खटकै, साधो! घर खोया नहीं खटकै।

इतना ही नहीं परंतु त्रिभुवन खोया भी नहीं खटकता इसीलिये वैष्णव गाते हैं:–

४९ पद

व्रज प्यारो वैकुंठ नहीं जाऊं नहीं जाऊं नहीं जाऊं नही जाऊं व्रज प्यारो रे वैकुंठ नहीं जाऊं ।।टेक।। कालिंदीजल स्नान करूं नित, नंदनदंन जूंठन खाऊं ।।१।। रासविलास लखूं निशिवासर, गोविंद के गुन गाऊं ।।२।। रामजीवन जीवन इमि बीतै, तो पुनि जग नहीं आऊं ।।३।।

तात्पर्य यह कि हमको जो प्रभुसेवा करने को मिलती हो तो स्वर्ग का

भी काम नहीं है और मोक्ष का भी काम नहीं है भाइयो! यह केवल मुँह से कह डालने की बात नहीं। भर्तृहरि गोपीचंद बुद्ध आदि सैंकड़ों महात्मा प्रभु के नाम पर अपना राजपाट छोड़कर चले गये हैं। केवल हमारे ही देश में यह बात हुई हो सो नहीं है परंतु भिन्न भिन्न देशों में और भिन्न भिन्न धर्मों में भी ऐसा होता आया है। यूरोप में बहुत से राजाओं के और सैंकड़ों राजकुमारियों ने प्रभु के नाम पर अपना अपना वैभव छोड़कर साधु बन मठों में अपना जीवन व्यतीत किया है और राज्य की सुख की अपेक्षा अलख जगाने का सुख में उनको अधिक आनंद मिला है।

प्रभु के नाम पर घर छोड़ देना नहीं खटकता सो बिलकुल सत्य है क्योंकि प्रभुप्रेम सब प्रेम से बढ़कर है। छोटी २ वस्तु के प्रेम से ही हम कैसे मत्त हो जाते हैं? देखो तो सही एक बालक को खिलाने में ही माता को कितना आनंद आता है? वह आनंद बच्चे पर उत्पन्न होने वाले अपने हृदय के प्रेम से होता है। एक स्त्री को अच्छी साड़ी और अच्छे गहने पहनने में कैसा आनंद होता है? सुंदर स्त्री को अपना रूप देखने से कैसा आनंद होता है और वह कैसी बारबार अपना मुँह कांच में देखती है और जो कोई उसकी सुंदरता की प्रशंसा कर देता है वह अपने मन में कैसी पागल सी बन जाती है? स्त्री को औरों को हाव भाव कटाक्ष दिखाने में कैसा मजा आता है? अपने प्रिय पति को मिलने जाते समय स्त्री के पैरों में कितनी ताकत आती है और मन में कैसा आह्लाद होता है सो तुम जानते हो? प्रशंसा पाने से स्त्री तथा पुरुष को कैसी खुशी होती है सो तुमको खबर है?

ऐसी छोटी २ बातों का प्रेम मन में भर जाने से जब मनुष्य को इतना आनंद होता है और मनुष्य इतना बदल जाता है तब जिसके हृदय में पूरा २ भगवदावेश भर जाय उसकी कैसी उत्तम स्थिति हो जाती होगी सो तो विचारो! जिसने ऐसे भक्तिरस का आनंद लूटा हो जिसने ऐसे हरिरस का रस चाखा हो उसको घर खोना कैसे खटके? वैसों को तो त्रिभुवन खोना भी नहीं खटकता इसलिये जिस आनंद में सब आनंदों का समावेश हो जाता है उस प्रभु के आनंद को उस प्रेम को प्राप्त करने का यत्न करो तो संसार के दुःख नहीं उठाने पड़ेंगे और घर खोना नहीं खटकेगा, इतना ही नहीं परंतु अंत में प्रभु प्रेम के कारण माया अपने आप ही छूटती जायेगी और प्रभु के आनंद से व्यवहार में रहने पर भी और घर में रहते हुए भी

जीवन्मुक्त हो जाता है इसलिये भाइयो! अहर्निश प्रभु प्रेम और प्रभु आनंद पाने की ही भावना रखो!

राग कानड़ा

मैं तो हरिगुण गावत नाचूंगी ।। टेक ।। नाचूंगी मैं तो नाचूंगी, मैं तो हरिगुण गावत नाचूंगी । अपने महल में बैठ बैठकर, गीता भागवत बाचूंगी ।। मैं तो ।।१।। ज्ञान ध्यान की गठरी बांधकर, हृदयकमल में राखूंगी ।। मैं तो० ।।२।। मीरा के प्रभु गिरिधर नागर, सदा प्रेमरस चाखूंगी ।। मैं तो० ।।३।।

*****

२७० माया को जीते विना प्रभु पहँचाना नहीं जाता और भक्ति विना माया जीती नहीं जाती इसलिये भक्ति करो

प्रभु को पहँचानने के लिये माया को जीतना चाहिये, परंतु माया को जीतना कुछ सुगम बात नहीं हैं, क्योंकि माया स्त्री जाति है इससे स्वभाव से ही स्त्रियों की तरह मोहिनी रूप है ऐसी दैवी मोहिनी और आकर्षण करने वाली शक्तिरूप माया को हम ज्ञान वैराग्य से जीतना चाहते हैं परंतु ज्ञान और वैराग्य पुरुषरूप हैं और पुरुषरूप होने से स्त्री जाति माया के आगे विजय प्राप्त नहीं कर सकते, क्योंकि समय आने पर वे माया में अवश्य फँस जाते हैं। यद्यपि ज्ञान और वैराग्य बहुत जबरदस्त हैं परंतु माया के आगे बहुत समय तक ठहर नहीं सकते, माया के शत्रु हैं और ऋषि मुनियों के इनका आश्रय लिया है तब भी ज्ञान और वैराग्य दोनों माया के स्त्री चरित्र से कई बार हार गये हैं, हार जाते हैं और हार जायँगे। इसलिये हमारा सूखा ज्ञान और थोड़ा बहुत वैराग्य माया को जीत लेगा ऐसा विश्वास रखकर चुपचाप बैठे रहना हानि करता है। अकेले ज्ञान और वैराग्य से माया जीतने में नहीं आ सकती क्योंकि माया स्त्री जाति है। इससे इसके सामने तो कोई दूसरी स्त्री ही होनी चाहिये, क्योंकिं स्त्री पुरुष तो एक दूसरे की मोहिनी में दब जाते हैं परंतु स्त्री के तेज से स्त्री नहीं दब सकती। इसलिये माया को जीतने के लिये भक्ति चाहिये। भक्ति स्त्री जाति है इससे उस पर माया का असर नहीं चल सकता इसलिये तुमको जो प्रभु पहँचानना हो और मोक्ष का सुख पाना हो तो माया को जीते विना काम नहीं चल सकता और भक्ति विना माया जीतने में नहीं आ सकती इसलिये ज्ञान वैराग्य को एक एक ओर रखकर

भक्ति करो! भक्ति करो!! भक्ति करो!!!

५० पद

प्रभु म्हारो माया ना छोडै लार, मैं कस उतरूँ भवपार ।। टेक ।। धन दौलत सुत कामिनी जी, राजपाट सरदार । जा दिन कूंच नगारा बजि है, कोऊ नहीं चालै लार ।।१।। ना कुछ ल्यायो लेय जाय ना, ना कुछ पायो सार । शमशाना डेरा हुयांजी, उडि जावै ह्वै छार ।।२।। रामजीवनकी बीनती, जी सुनिये अबकी बार । नेक निहारो कृपा करि तो बहुरि न आऊँ संसार ।।३।।

*****

२७१ ज्ञान और वैराग्य भक्ति के पुत्र हैं, इसलिये जो तुममें सच्ची भक्ति होगी तो उसके पुत्र तुम्हारे पास आये विना न रहेंगे

हमारे शास्त्र में लिखा है कि, ज्ञान और वैराग्य दोनों भक्ति माता के पुत्र हैं, और इन दोनों पुत्रों को अपनी माता पर इतना बड़ा प्रेम है कि ये अपनी माता के पीछे २ ही फिरा करते हैं तात्पर्य यह कि, जहां सच्ची भक्ति होती है जहां पूरी भक्ति होती है वहां ज्ञान और वैराग्य अवश्य होते हैं। ज्ञान वैराग्य जैसे योग्य पुत्रों के विना जहां केवल भक्ति ही हो, रूखी सूखी भक्ति ही हो वहां व बांझ स्त्री की तरह विना पुत्र शोभा नहीं देती क्योंकि योग्य पुत्र से ही स्त्री की शोभा है योग्य पुत्र से ही स्त्री का सन्मान है, योग्य पुत्र से ही स्त्री की रक्षा है और योग्य पुत्र से ही स्त्री की सार्थकता है, वैसे ही भक्ति माता भी अपने भाग्यशाली पुत्र ज्ञान वैराग्य से शोभा पाती है, ज्ञान वैराग्य से ही मान पाती है ज्ञान वैराग्य से ही रक्षित रह सकती है, और ज्ञान वैराग्य से ही भक्ति की सार्थकता हो सकती है, अर्थात् ज्ञान वैराग्य वाली भक्ति ही ईश्वर को बता सकती है और मोक्ष का सुख दिला सकती है, रूखी भक्ति कुछ भी कर नहीं सकती। जो भक्ति के साथ उसके पुत्र ज्ञान वैराग्य न हों तो भक्ति में अंधश्रद्धा मिथ्याचार और स्वार्थीपन आ जाता है ऐसा न होने के लिये भाइयो! भक्ति के साथ उसके पुत्र ज्ञान वैराग्य को मिलाने का यत्न करो! सच्ची भक्ति में तो ये स्वाभाविक रीति पर ही अपने आप ही होते हैं परंतु जो वे तुमको अपने में न मालूम हों तो अपनी भक्ति को फीकी समझो और उसमें इनको मिलाने का यत्न करो!

२७२ ज्ञान और वैराग्य भक्ति की आँखें हैं इनके बिना भक्ति अंधी है

साधु कहते हैं कि, भक्ति माता की दहनी आँख का नाम ज्ञान है और बायीं आँख का नाम वैराग्य है। ये दोनों आँखें बराबर काम करती हों तब हीं भक्ति की खूबी है। जो उसमें से एक आंख खराब हो जाय तो भक्ति कानी हो जाती है और दोनों आँखें फूट जायँ तो भक्ति अंधी हो जाती है। ज्ञान और वैराग्यरूपी आंखों के बिना भक्ति जी तो सकती है परंतु आंख बिना सारा जीवन जाता वृथा ही है। हम देखते हैं कि, बहुत से साधुओं में भक्ति और वैराग्य होता है परंतु ज्ञानरूपी आँख बिना वे होते हैं काने ही। इससे वे संसार में किसी के भी काम के नहीं होते और न अपनी ही सार्थकता कर सकते हैं, परंतु उलटे हवाई खयालातों और जंगलीपने में ही रह जाते हैं, हमारे कितने ही संन्यासियों में ज्ञान और थोड़ा सा वैराग्य भी होता है परंतु इतने पर भी वे अंतःकरण से रंगे हुए नहीं होते, क्योंकि उनमें भक्ति नहीं होती। अर्थात् भक्ति बिना का कर्म बिना किया केवल मुँह से कहने का ही ज्ञान उनको शांति नहीं दे सकता। इतना ही नहीं किंतु भक्ति बिना के रूखे ज्ञान से उलटी खराबी होती है। इससे ऐसा होता है कि जैसे होली में लड़के अश्लील शब्द बकते हैं परंतु उनका अर्थ नहीं समझते, वैसे ही कलियुगी वेदांती मुँह से तो 'अहं ब्रह्मास्मि' कहते हैं परंतु वैसे आचरण नहीं रखते और उसका आनंद नहीं पा सकते, क्योंकि भक्ति से उनका हृदय भीगा हुआ नहीं होता अर्थात् उनका आचरण अच्छा नहीं होता इससे 'अहं ब्रह्मास्मि' कहने पर भी आत्मिक शांति नहीं मिलती।

हमारे वैष्णव भाई भक्ति बहुत करते हैं परंतु ज्ञान वैराग्य से तो उनको द्वेष रहता है जिससे उनकी भक्ति बिचारी अंधी हो जाती है और अंधी भक्ति सच्चा समय आने पर उनको शांति नहीं दे सकती। इस तरह ज्ञान बिना की भक्ति और भक्ति बिना का ज्ञान वैराग्य है सो अधूरा साधन है और अधूरे साधन से फूटे हुए तुंबों से तैरना बन नहीं सकता इसलिये भाइयो! बातो के ज्ञान में और अंधी भक्ति में पड़े मत रहो परंतु ईश्वर को पहँचानने के लिये धर्म का ज्ञान प्राप्त करके दुनियांदारी के सुख दुःख को बादल की छाया की तरह क्षणिक और किसी के रोकने से न रुक सकने वाले समझकर और अपने आचरण को सुधारकर ईश्वर भक्ति में

लग जाओ तब हीं बेड़ा पार हो सकता है। बाकी अंधी भक्ति से अथवा रूखे ज्ञान से कुछ भी नहीं हो सकता! इसे पक्का समझो।

*****

२७३ भगवदावेश जबतक हृदय में न भरे, तबतक ही बहरी क्रियाओं की आवश्यकता है; वह हृदय में जम जाने बाद क्रियाओं की आवश्यकता नहीं रहती

एक पतिव्रता स्त्री का पति कहीं गाँव गया था। स्त्री बड़ी प्रेम वाली और धर्म वाली थी। पति बिना उसका समय बड़ी कठिनाई से निकलता था। पानी बिना जैसे मछली तड़पती है वैसे ही वह पति बिना तड़पती थी। उसके मन में यही भावना थी कि, पति जैसे जल्दी घर आवे वैसे ही अच्छा। पति की खबर सुनने के लिये वह जहां तहां जाती थी। पति उसकी परीक्षा लेना चाहता था इससे वह कुछ दिन कहीं छिप रहा और अपनी खबर नहीं जाने देता। खबर न पाकर वह बिचारी बड़ी दुःखित हुई। अंत में उसने बहुत कुछ यत्न किया तब पति के मित्र द्वारा उसको एक दिन पति का पता मिला। उस पते पर उस स्त्री ने पति को पत्र लिखा और उत्तर पाने की आशा में वह नित्यप्रति डाकखाने जाने लगी। उत्तर में पति ने लिखा कि, अब मैं जल्दी ही आता हूं। इसपर से तो वह और भी अधिक २ राह देखने लगी और अगुवानी के लिये नित्य गाड़ी आने के समय पर रेल के स्टेशन पर जाने लगी। अंत में पति आया वह सुखी हुई और अपने घर में रहने लगी।

इसके बहुत दिन पीछे एक बार उसको उसकी एक सखी मिली उसने पूछा "सखी! पहले तो मैं तुझको डाकखाने और रेल्वे स्टेशन की ओर जाते आते देखा करती थी परन्तु अब तो तू घर से बाहर ही नहीं निकलती इसका क्या कारण है?"

उसने उत्तर दिया "मैं अपने प्रिय पति की खबर पाने के लिये पोस्ट ऑफिस जाया करती थी और उनकी अगवानी करने के लिये स्टेशन पर जाया करती थी परंतु अब वे घर आ गये तब मैं वहां जाकर क्या करूं?"

भाइयो! उस स्त्री की तरह परमेश्वर हमारा पति है। वह हमारे घर में अर्थात् हमारे अंतःकरण में नहीं है इसी से सारी दौड़धूप करनी पड़ती है। उस स्त्री जैसे पति के खबर पति के मित्र से मिली थी, वैसे ही हमको

अपने समर्थ पति ईश्वर की खबर ईश्वर के मित्र संतजनों से मिल सकती है। उस खबर को पाने के लिये हमें संतजनों में घूमना फिरना चाहिये। उनका सत्संग करना चाहिये और उनकी सेवा करना चाहिये। ऐसा करने से हमको पति का पता लग सकेगा और पता मिल जाने पर ऊपरी प्रार्थना करके पति को घर में बुलाते बन सकेगा। उसके घर में अंतःकरण में आ जाने बाद बाहर भटकते फिरने की आवश्यकता नहीं होगी। हमारे अंतःकरण में ईश्वर अच्छी तरह न भर जाय तबतक ही कितनी ही प्रकार की बाहरी क्रिया करने की जरूरत है, परंतु जब वह हृदय में भर गया, जब स्थित अज्ञानता नष्ट हो गयी, जब विदेहपन हो गया तब कोई भी जाति की बाहरी क्रिया करने की जरूरत नहीं रहती। जबतक हम ऐसे न हों, उस दरजे तक न पहुँचें तबतक तो हमको अपने समर्थ प्रिय पति को घर में लाने के लिये अपने पवित्र धर्म की सारी अच्छी क्रियाएँ करनी चाहिये क्योंकि क्रियाओं के निमित्त क्रियाएँ करने की जरूरत नहीं है ईश्वर के निमित्त क्रियाएँ करने की जरूरत है। इसलिये पूर्ण विश्वास और पूर्ण प्रेम के धर्म के पवित्र कार्य प्रभु अंतःकरण में न आवे तबतक खुशी और उत्साह के साथ करना चाहिये। यही सब धर्मों का सिद्धांत है, यही महात्माओं का उपदेश है और इसी में कल्याण है। इसलिये जैसे बने वैसे शुद्ध मन से धर्म के पवित्र कर्तव्य अच्छी से भी अच्छी रीति से पूरे करने चाहिये।

*****

२७४ तुंबा जैसे पानी में नहीं डूबता, वैसे ही भक्त और भक्ति भी संसार में छिपी नहीं रहती

संसार में बहुत सी चीजें छिप सकती हैं परंतु भक्ति नहीं छिप सकती और वैसे ही सच्चे भक्त भी कभी अँधेरे में रह नहीं सकते। हम जानते हैं कि, अनुकूल साधन न मिलने से बहुत से गुणीजन अँधेरे में रह जाते हैं और उनकी विद्या, उनकी सत्ता, उनकी वीरता और उनका मानसिक तथा व्यावहारिक धन उनके ही साथ नष्ट हो जाता है, परंतु भक्ति के विषय में न कभी ऐसा हुआ है न होगा। दूसरे गुणों को तो साधनों की जरूरत पड़ती है इससे जब तक अनुकूल साधन न मिले तब तक उनका प्रकाश नहीं होता, इतना ही नहीं परंतु प्रतिकूलता से वे डर जाते हैं, परंतु भक्तजनों में इससे उलटा होता है। उनको अच्छें साधनों की जरूरत नहीं

है और बुरे संयोगों का कभी भय नहीं है। इतना ही नहीं परंतु वे चाहे जितने लजीले हों, और चाहे जितने विरक्त हों तब भी प्रकट हुए बिना और मान पाये बिना नहीं रहते। वे मान और नाम का तिरस्कार करते हैं तब भी ये तो उनको आप ही मिल जाते हैं। वे करते हैं कि, "नाम तो प्रभु का चाहिये और मान भी जगत् के कर्त्ता स्वामी परमेश्वर को ही देना चाहिये। हमारा नाम कैसा? और हमारा मान कैसा? हम तो प्रभु के कुत्ते हैं।" इतना होने पर भी प्रभु के नाम के साथ उनके भी नाम जमाने तक प्रसिद्ध रहते हैं। नानक, रामदास, तुकाराम, तुलसीदास, कबीर, सुंदरदास, नरसीमेहता, मीराबाई आदि प्रभु के कृपापात्र भगवज्जनों को नाम की अथवा मान की परवाह कब थी तब भी उनका नाम आज तक पृथ्वी पर प्रसिद्ध हो रहा है सो तो देखे याद रखो कि, जैसे खांसी के रोग में खों खों हुआ ही करता है और रोग छिप नहीं सकता, जैसे अत्यन्त अँधरे में भी दीपक छिपा नहीं रहता, जैसे तुंबा अपने आप पानी में कभी डूब ही नहीं सकता और जैसे तेलपानी के ऊपर के ऊपर ही बना रहता है, वैसे ही हरिभक्त कभी छिपे नहीं रहते, वे तो सबसे ऊपर मुकुट बने रहते हैं, और इसी दुनियां नहीं परलोक में भी उनकी महिमा गाई जाती है, ये सब और इनसे भी बढ़कर प्राप्ति भक्ति से अर्थात् धर्म के नियम पालने से, परमार्थ करने से और प्रभु के पवित्र नाम की लगन लगने से होती है, परन्तु जान बूझकर यत्न करके खड़े किये हुए झूंठे मान पत्रों से, पैसा खर्च करके अथवा खुशामद करके पाये हुए खिताबों से और समाचार पत्रों में नाम छपाने से दुनियां में नाम नहीं रहता। इसलिये जो दुनियां में और प्रभु के दरबार में सच्चा नाम रखना हो और सच्चा मान पाना हो तो जैसे बने वैसे भक्त बनने का यत्न करो! भक्त बनने का यत्न करो!!

*****

२७५ भाई में तकरार हो जाने से कुछ पिता छोड़ा नहीं जाता वैसे ही धर्म के बाहरी झगड़ों के कारण प्रभु छोड़ा नहीं जा सकता

जुदे धर्म के झगड़े तो सृष्टि के आरम्भ से ही चले आते हैं और जब तक सृष्टि रहेगी तब तक मिटने वाले भी नहीं हैं, क्योंकि झगड़ा करने वाले शब्द की लड़ाई करने और बाहरी क्रियाओं पर लड़ने वाले हैं परन्तु भीतर से जांच करने वाले नहीं हैं। इससे वह लड़ाई मिट नहीं सकती।

एक कहता है कि हमारा धर्म सच्चा है और सब धर्म झूंठे हैं दूसरा कहता है कि, हमारा धर्म सबसे पुराना और उसी में से दूसरे सब धर्म निकले हैं इससे हमारा मूलधर्म मानने योग्य है। तीसरा कहता है कि, पहले के सब धर्मों को रद्द करके ईश्वर ने हमारे ही गुरु को सच्चा धर्म बताया है। चौथा कहता है कि और सब धर्म आसुरी हैं केवल हमारा ही धर्म दैवी है। पांचवां कहता है कि, हमारा धर्म जैसा ईश्वर का शुद्ध और स्पष्ट स्वरूप सिख लाता है वैसा और कोई भी धर्म नहीं सिखाता। छठा कहता है कि, हमारा धर्म पालना जैसा सुगम है वैसा दूसरा कोई भी धर्म सुगम नहीं है। सातवां कहता है कि, हमारा धर्म पालने वाले संसार में सबसे अधिक हैं इससे हमारा ही धर्म सच्चा है। आठवां कहता है कि, हमारे गुरु ने जैसे चमत्कार दिखाये हैं वैसे दुनियां में और किसी भी नहीं दिखाये। नववां कहता है कि, कुदरत के नियमों को फिलासफी को और लोगों को जैसे हमारे शास्त्र अनुकूल हैं वैसे संसार में दूसरे कोई भी शास्त्र अनुकूल नहीं है और दशवां कहता है कि, चाहे जैसा हो परन्तु एक ही धर्म सच्चा हो सकता है, सारे धर्म तो सच्चे हो ही नहीं सकते।

इस तरह पर ऊपरी बातों के लिये सगे भाई भाई भी बिना कारण आपस में लड़ते हैं, भाई भाई दोनों चाहे जितने लड़ें परन्तु आपस में यह तो नहीं कह सकते कि मेरा बाप है सो तेरा नहीं है। पिता तो दोनों का एक ही है। हम अपनी मूर्खता से भीतर २ चाहे जितने लड़ें और धर्म के नाम पर एक दूसरे से बैर रखकर प्रभु से दूर भागें परन्तु तब भी पिता तो हमारा है सो बदल सकता ही नहीं और हमारा पिता जो हमारे दूसरे भाइयों का पिता हैं सो तो उनका भी पिता रहेगा ही। हमको अपने मन की निर्बलता से अपने दूसरे भाइयों अर्थात् दूसरे देश और दूसरे धर्म वालों पर वैर है परन्तु प्रभु को तो उन पर वैर नहीं है। हम जैसे पवित्र प्रभु के पुत्र है वैसे ही वे भी प्रभु के पुत्र हैं। इसलिये हमारे धर्म के बाहरी झगड़ों के लिये हम अपने पिता को थोड़े ही छोड़ सकते हैं? अथवा अपने सगे भाई से थोड़ा ही कह सकते हैं कि मेरा बाप है सो तेरा नहीं है? इसलिये भाइयो! हम सब एक ही पवित्र पिता के पुत्र हैं और अलग २ मार्ग से एक ही प्रभु को भजते हैं ऐसा समझकर जैसे वैसे परस्पर के धर्म की दुश्मनी से दूर रहो!

जैसे जुदी २ छोटी मोटी नदियां जुदे २ मार्ग से चलकर अंत में एक ही

समुद्र में पहुँचती हैं वैसे ही सब धर्म जुदे २ देश काल और लोक स्थिति के अनुसार बने हैं और सब ही धर्मों का हेतु एक प्रभु को पहँचानना और प्राप्त करना है। प्रभु ने भी कहा है किः—

"ये यथा मां प्रपद्यंते तांस्तथैव भजाम्यहम् ।
मम वर्त्मानुवर्त्तंते मनुष्याः पार्थ सर्वशः ।।"

अ० ४ श्लो० ११

अर्थ—जो मनुष्य जिस तरह से मुझे भजते हैं उनको मैं उसी प्रकार से भजता हूं, अर्थात् जैसी जिनकी भावना है वैसा ही रूप मेरा उनको दीखता है और वैसा ही फल मैं उनको देता हूं। हे अर्जुन! मनुष्य सब तरह से मेरे ही मार्ग के अनुसार चलता है।

भाइयो! इसमें यह बात कहाँ आई कि, मेरा धर्म सच्चा और तेरा धर्म झूँठा है? प्रभु की ऐसी स्पष्ट आज्ञा होते हुए भी हम बिना कारण आपस में लड़कर क्यों वैर बांधे? और क्यों प्रभु से विमुख हों? इसलिये आज ही से पक्का ठहराव कर लो कि, अपने धर्म से चिपटे रहना और दूसरे सब धर्मों को उदार दृष्टि से देखना। इसी से संसार में शांति रहती है। यह प्रभु को प्रिय है और यही प्रभु की आज्ञा है इससे अपना धर्म अच्छी तरह से पालो और दूसरों के धर्म को उदार दृष्टि से देखो!

५१ भुजंगप्रयात

विरंची महादेव भैरो भवानी, सबै पूर्ण ब्रह्मेशकी जोति जानी । पुजाई भई काहुकी ब्रह्म मानी, न जाने भला क्यों वृथा बाद ठानी ।।१।। अहो मित्र कोऊ चढो है अँबारी, चढो है कोऊ जाय ऊंची अटारी । नहीं भूमिसो बाहिरी कोऊ भयो है, तऊ बाद काहे वृथाहू ठयो है ।।२।।

*****

२७६ जो डुबकी मारे और लगा रहे उसको मोती मिलता है वैसे ही भक्ति में जातपांत नहीं देखी जाती जो लगे रहते हैं वे प्रभु को पाते हैं

भक्ति में जातपांत कुछ भी देखी नहीं जाती जिसके हृदय में भक्ति लग गयी और जो उसमें लीन हो गया वही पार लग गया। क्योंकि प्रभु दयालु है। उसके यहां जातपांत नहीं है, काली गोरी चमड़ी का भेद नहीं है। वहां तो समानता है, वहां तो अभेद है। प्रभु के लिये अपने सब बालक समान हैं। उसको कोई प्रिय नहीं है, कोई अप्रिय नहीं है, परंतु जो भेद है सो

भक्ति का ही है। जैसे जो अग्नि के पास बैठते हैं उनका जाड़ा मिट जाता है और जो अग्नि के पास नहीं जाते उनको जाड़ा लगा करता है। वैसे ही जो प्रभु भक्ति में लग जाते हैं वे तर जाते हैं और जो भक्ति में नहीं लगते वे चौरासी लाख के चक्कर में फिरा करते हैं। उसमें जातपांत का, देश का या कुल का कुछ भी काम नहीं है। प्रभु ने भी कहा है कि, जो मुझको भजता है सो मुझमें है और मैं उसमें हूं। इसी से वैष्णव गाते हैं कि:–

"हरि को भजै सो हरि का होय"

हम गुरु हैं इससे ऊंचे हैं, हम ब्राह्मण है, इसलिये ऊंचे है, अमुक राजा ने हमारा सन्मान किया इसलिये ऊंचे हैं, अमुक कुल में उत्पन्न हुए हैं इससे हम ऊंचे हैं, हमारी जातवालों ने अमुक अमुक काम अच्छे किये हैं इससे हम ऊंचे है, हम पुरानों में भी पुराने हैं, इससे ऊंचे है, हमारे कुल में अमुक भक्त हो गया है इससे हम ऊंचे है, हम दान नहीं लेते इससे ऊंचे है, हम अमुक देश में उत्पन्न हुए हैं इससे ऊंचे हैं और हम अमुक धर्म पालते हैं अथवा अमुक गुरु के शिष्य है इससे ऊंचे हैं। ये सब बातें पोल की हैं। ऐसी पोल यहां पर भले ही थोड़े दिन चला लो परंतु प्रभु के दरबार में वह चलने की नहीं है। वैसी पोल चलाने का समय अब नहीं रहा। अब तो बहुत स्पष्ट रीति पर प्रभु की आज्ञा लोग अच्छी तरह समझते जाते हैं कि जो समुद्र में डुबकी मारेंगे और उसी में लगे रहेंगे वे मोती पावेंगे। जो मार्ग में खड़े खड़े इस तरह बातें किया करते हैं कि हमारा दादा को बहुत अच्छी तरह डुबकी मारना आता था, अमुक राजा के समय में डुबकी मारने का स्वत्व केवल हमारी जातवालों ही को था और मेरे मामा के मामा के मामा को अब भी अच्छी डुबकी मारना आता है। वे डुबकी मारे बिना केवल ऐसीं बाते कहने से ही मोती नहीं पा सकते। वैसे ही प्रभु के निमित्त दान पुण्य किये बिना, मन को रोके बिना, शुभेच्छा रखे बिना और धर्म के ज्ञान बिना केवल जांत पांत से या काली गोरी चमड़ी से ही काम नहीं चल सकता, किंतु आचरण सुधारने से और प्रभु के मार्ग में लगे रहने से ही स्वर्ग के मोती मिल सकते हैं और तब ही इंद्र की अप्सराएँ हम पर अलौकिक मोती न्योछावर कर सकती है इसलिये भाइयो! जो ऐसे स्वर्ग के मोती लेने हों तो सब प्रकार के अभिमान छोड़कर सर्वात्मभाव से प्रभु की शरण लो! प्रभु की शरण लो! प्रभु की आज्ञा पालो!!

राग ठुमरी

राम न जाने सो जाने तो क्या हो ।।टेक।।
राम अमीरस है जिन माहीं ।
और दूजा रस पीने से क्या हो ।। राम न जाने०।।१।।
भक्त वही जो हरिगुण गावत ।
और दूजा गुण गाने से क्या हो ।।राम न जाने०।।२।।
जापक वही गुरुमंत्र जपै नित ।
और को जाप जपे से क्या हो ।।राम न जाने०।।३।।
देखे सोहि गुरु मूर्ति अखंडित ।
और ठाठ ठगबाजी से क्या हो ।।राम न जाने०।।४।।
जन्म लियो हरि के गुण गावत ।
और गपाष्टक गाने से क्या हो ।।राम न जाने०।।५।।
कहत कबीर सुनो भाई साधो ।
वृथा बहुत दिन जीने से क्या हो ।।राम न जाने०।।६।।

*****

२७७ माया चाहे जितनी बढ़ जाय परंतु भक्ति बिना संतोष नहीं होता, इसलिये पवित्र प्रभु के नाम को पकड़ लो तो तुमको थोड़े ही में बहुत हो जायगा

इतिहास पढ़नेवाले बादशाह सिकंदर के नाम से नावाकिफ नहीं होंगे। सिकंदर बड़ा पराक्रमी था, उसने अपनी सेना के बल से पृथ्वी का बहुत सा भाग जीत लिया था, जब वह मरने लगा तो शोकातुर होकर बोला "अभी थोड़ा भाग पृथ्वी की जीतना और बाकी है। मैं उसे भी जीत लेता तब संतुष्ट होता।"

यह सुनकर उसके एक योग्य दीवान ने कहा "गरीब परवर! अब यह तृष्णा छोड़ दो! इतनी पृथ्वी जीत लेने से ही जब संतोष नहीं हुआ तब थोड़ा सा भाग और जीतने में संतोष कैसे होता? सारी पृथ्वी जीत लेने पर भी आपको संतोष नहीं होता। इसलिये इस तृष्णा को छोड़कर अब प्रभु को याद कीजिये!"

भाइयो! जिसने आधी पृथ्वी जीत ली उसको ही जब मरने तक संतोष न हुआ तब हमको माया से संतोष क्योंकर हो सकता है? माया से आज तक किसी को संतोष नहीं हुआ न कभी होगा। ज्यों ज्यों माया

बढ़ती जाती है त्यों त्यों आशा तृष्णा भी बढ़ती जाती है। ज्यों ज्यों अग्नि में घी पड़ता जाता है त्यों त्यों उसकी ज्वाला बढ़ती जाती है, वैसे ही ज्यों ज्यों माया बढ़ती जाती है त्यों त्यों विकार भी बढ़ते जाते हैं, इससे कभी तृप्ति नहीं होती इसलिये 'ऐसा हो तो मैं ऐसा करूं और वैसा हो तो वैसा न करूं' इस तरह के वादे और विश्वास पर तुम्हारे मन को तुम मत ठगो! मत ठगो! परंतु प्रेमपूर्वक प्रभु की शरण में जाओ तो शांति आप ही तुम्हारे पास चली आवेगी और थोड़े ही में बहुत हो जायगा तथा उस थोड़े ही में से तुमको प्रभु के नाम से आत्मिक शांति मिल जायगी। भाइयो! शांति पाने के लिये माया को नहीं किंतु सर्वशक्तिमान् प्रभु के नाम को पकड़ो! प्रभु के नाम को पकड़ो! !

*****

२७८ माया के छोड़ने का वृथा हठ मत करो! परंतु उसको प्रभु की ओर झुकाने का यत्न करो!

शास्त्रों में लिखा है और महात्मा लोग भी बारंबार यही कहते हैं कि, माया से कभी शांति नहीं मिलने की! इतने पर भी हम माया का छोड़ नहीं सकते, क्योंकि वह छूट सकनेवाली वस्तु नहीं है और उसे छोड़ने की जरूरत भी नहीं है, परन्तु जरूरत इस बात की है कि माया हमको अपनी ओर खींचे जाती है जिसके स्थान में हम माया को ईश्वर की ओर खींच ले जांय। माया का नाश करना हमारा काम नहीं है परन्तु माया को प्रभु में लगाना हमारा काम है। माया के प्रवाह के रोकने की हमको शक्ति नहीं है और वैसा करने की हमारे लिये जरूरत भी नहीं है परंतु उसका प्रवाह बदल देना हमारा काम है और वह हमारी सामर्थ्य में भी है।

नदी का प्रवाह वृथा समुद्र में जाता है परंतु जो उस प्रवाह को बांध बाँधकर रोक दिया जाय तो बड़ी खेती हो सकती है और लाखों फल लग सकते हैं। अभी तो माया का प्रवाह माया ही में चला जाता है और वह भी निकम्मा तथा खराब करनेवाला होता है। परंतु जो उसमें भक्ति का बंद बांध दिया जाय तो वह प्रवाह प्रभु की ओर झुक जाता है और उसका पानी हमारे भाई बन्धुओं के खेत में फैल जाता है जिससे इस लोक और परलोक दोनों में काम आने योग्य उत्तम फल लगते हैं। इसलिये भाइयो! माया को छोड़ने का झूंठा हठ छोड़कर माया को प्रभु में लगाने का यत्न करो।

२७९ दयालु परमेश्वर से की हुई हमारी प्रार्थनाएँ कभी खाली नहीं जाती, परंतु उसकी ओर से मिले हुए अलौकिक लाभ की खूबी हम नहीं समझते इससे बड़बड़ाया करते हैं

किसी तीर्थस्थान में बैठा हुआ एक सूरदास भजन गाता और भीख माँगता था। कोई उसे फल दे जाता, कोई पाई दे जाता और कोई पैसा दे जाता था जिससे उसको बड़ी खुशी होती थी। इतने ही में वहाँ पर एक धनवान् आ पहुँचा, सूरदास के भजन से बहुत प्रसन्न होकर उसने एक पांच रुपये का नोट निकालकर उसके हाथ में दिया। सूरदास ने कभी नोट नहीं देखा था। वह गांव का रहनेवाला विचारा यह नहीं जानता था कि कागज के टुकड़े से भी रुपये मिलते हैं। वह यह भी नहीं देख सकता कि, इस कागज में क्या लिखा है, इससे एक धनवान् के हाथ से कागज का टुकड़ा पाकर वह बड़ा उदास हुआ। उस धनवान् ने सूरदास से दो चार भजन गवाये और उसके गाने की बहुत कुछ प्रशंसा की थी इस पर से उसे उससे दो चार पैसे पाने की आशा थी और जब वह जाते समय बोला कि 'लो सूरदास' उस समय सूरदास ने मन में प्रसन्न होकर खुशी के साथ हाथ फैलाया परंतु जब हाथ में नोट पड़ा तो उसे कागज का टुकड़ा समझकर उसके चित्त को उदासी आ गयी। वह बड़बड़ाने लगा "वाह! मैं तो समझता था कि दो चार पैसे मिलेंगे परन्तु वह तो बड़ा सूखा निकला। दो चार भजन भी सुन गया और गांठ की मेरी दिल्लगी कर गया।"

इसी तरह बड़बड़ करता हुआ वह उस कागज को फेंकने लगा तब एक पासवाले भले आदमी ने कहा "सूरदास! यह खाली कागज का टुकड़ा नहीं है! यह तो पांच रुपये का नोट है नोट!"

रुपये का नाम सुनकर वह बोला "क्या है नोट! भाई तुम भी मेरी हँसी करते हो क्या?"

भला आदमी कहने लगा "नहीं नहीं! तुम्हारी कोई हँसी करता है क्या? तुम जैसे की हँसी तो कोई अभागा हो सो करे! यह तो नोट है! इसे सहेजकर रखो तो पांच रुपये मिलेंगे।"

सूरदास ने पूछा "बाबा! मैं नोट नहीं समझता! नोट क्या होता है?" तब भला आदमी बोला "यह सरकारी कागज है! सरकारी राज्य में जहाँ जाओ वहाँ तुम इसके पांच रुपये पा सकते हो!"

तब तो सूरदास बड़ा प्रसन्न हुआ और उस नोट को अपनी धोती में बांधकर बोला "मैं तो दो चार पैसे पाने की आशा करता था परंतु वह सेठ तो बड़ा ही भला आदमी निकला कि मुझ अंधे को पांच रुपये दे गया, अहो! अभी संसार में ऐसे भले भी मौजूद है, बाबा! तुमने भी मुझ पर बड़ी दया की नहीं तो मैं इसे अभी फेंक ही देता।"

भाइयो! हमारी प्रार्थना से प्रसन्न होकर प्रभु हमको बहुत कुछ देता है परंतु हम उस सूरदास की तरह अंधे है, अज्ञानी हैं, इससे प्रभु जो अलौकिक वस्तु देता है उसकी हम कीमत नहीं समझते। प्रभु हमको और कुछ न दे परंतु पाप से बचावे और अंतःकरण से शुद्ध रखे कि क्या यह थोड़ा है? पैसे के तीन चार मिलनेवाले अमरूद या केला आदि फल न दे और उसके बदले में अंतःकरण को शुद्ध रखे तो जिससे ज्ञान उत्पन्न हो सकता है तो क्या कम है? अथवा पाप की क्षमारूप नोट दे कि जिसे नरक से बचाव हो तो क्या कम है। इसलिये याद रखो कि हमारी प्रार्थना एक भी खाली नहीं जाती वरन् उन प्रार्थनाओं से भी प्रभु हमको अधिक देता है। परंतु हम दुनियादारी के स्वार्थ में पड़कर इतने अंधे हो गये हैं कि प्रभु की उस अलौकिक बख्शीश की कीमत नहीं समझ सकते। इसलिये भाइयो! बिना कारण प्रभु को दोष मत दो, परंतु अपना ही दोष समझना सीखो!

*****

२८० याद रखो कि, यहां का हमारा बड़प्पन स्वर्ग में काम नहीं आवेगा

हम सबको बड़प्पन अच्छा लगता है, और उसके लिये हम रात दिन दौड़ धूप मचाया करते हैं। किसी को धन का बड़प्पन अच्छा लगता है, किसी को नौकरी का बड़प्पन अच्छा लगता है, किसी को पटैलाई का बड़प्पन अच्छा लगता है, किसी को रूप का बड़प्पन अच्छा लगता है, किसी को कुल का बड़प्पन अच्छा लगता है, किसी को विद्वत्ता का बड़प्पन अच्छा लगता है, किसी को बल का बड़प्पन अच्छा लगता है, किसी को व्यापार का बड़प्पन अच्छा लगता है, किसी को शिल्प और कारीगरी का बड़प्पन अच्छा लगता है, और किसी को किसी भी गुण बिना तथा किसी भी कारण बिना 'हम भी नवाबजादे हैं' कहना अच्छा लगता है। इस तरह सबही को किसी न किसी प्रकार का बड़प्पन अच्छा लगता है इसमें कुछ

भी संदेह नहीं है परंतु इस बात का विचार कोई भी नहीं करता कि, यह बड़प्पन सच्चा है या झूंठा और यह बड़प्पन कब तक काम देगा? हमको समझना चाहिये कि हम तो इस संसार में दो चार दिन के मुसाफिर हैं फिर तो हमको अवश्य ही दूसरे देश में जाना पड़ेगा। जिस जगह हमको जाना है उस जगह यह बड़प्पन काम देगा या नहीं सो तो विचार करना चाहिये जो वहां पर यह बड़प्पन काम न आया तो हमारी सारी मेहनत वृथा ही है और हमारी सारी समझदारी मट्टी में मिल गयी। इसके लिये पंड़ित लोग एक उदाहरण दिया करते हैं:–

एक सेठ बड़ा धनवान् था। वह यात्रा करने निकला फिरते २ वह एक दिन रात को एक गाँव में जाकर ठहरा रहा उसने अपने नौकरों से कहा "गाँव में जाकर सीधा सामान ले आओ।"

आदमी सीधा सामान लेने गाँव में गया। दूकानदार ने पैसे मांगे, आदमी ने निकालकर नोट दिये। दूकानदार ने कहा 'हम नोट का क्या करें? हमारे राज्य में तुम्हारे नोट-वोट नहीं चलते। यहाँ तो नकद रुपयों से काम चलेगा।"

आदमी ने कहा "अरे भाई! तू दूकानदार होकर ऐसी बात करता है! यह नकद रुपया नहीं तो और क्या है? देख तो सही इसमें गवर्नर के दस्तखत हो रहे हैं।"

दूकानदार ने कहा "तुम कहते हो सब ठीक! परंतु हमारे यहां तो इस राज्य में चले वैसा रुपया होना चाहिये।"

भाइयो! पास पैसा होते हुए नोटों के ढ़ेर होते हुए भी उस देश में चलने वाला पैसा पास न होने से उस सेठ को उस दिन रात को भूखे ही पड़ना पड़ा। इसी तरह हमारा बड़प्पन, हमारे खिताब और हमारे खजाने मरने पर स्वर्ग में कुछ भी काम नहीं आते। वहां तो सब देशों में चलने वाला प्रभुनाम का नकद पैसा चाहिये। इसलिये भाइयो! झूँठी बड़ाई में मत पड़े रहो परन्तु धर्म का धन संग्रह करो! प्रभु का नाम स्मरणरूप नकद दाम इकट्ठे करो!

*****

२८१ हम सबको पंड़िताई बहुत अच्छी लगती है, इसलिये इस बात की पूरी सँभाल रखो कि, पंड़िताई के झूंठे झगड़ों में फँसकर अंतःकरण खाली न रह जाय

खाली बरतन में दूसरी वस्तु जल्दी भरी जा सकती है परन्तु भरे हुए बर्तन में दूसरी वस्तु नहीं भरी जा सकती। मूर्ख मनुष्य हैं सो खाली बर्तन के समान हैं इससे कोई भी अच्छी या बुरी बात उनके मन में जल्दी बैठ जाती है परन्तु जो पंड़ित हैं उनके हृदय में दुनियांदारी खटपट की टेढ़ी सीधी अनेक बातें भरी रहती हैं इससे वे ईश्वरीय सत्य ज्ञान को जल्दी ग्रहण नहीं कर सकते वे तो अमुक पंड़ित ने ऐसा कहा है। न्यायशास्त्र में ऐसा कहा है, योगशास्त्र में ऐसा लिखा है, कर्मकांड़ में ऐसी आज्ञा है और मनुस्मृति में ऐसा लिखा है परन्तु ऐसा करें तो यों होता है और वैसा करें तो वैसा होता है आदि कल्पना के जाल में फँसे रहते हैं। गाँव के भोले भाले लोग श्रद्धा से और सरलता से जैसे प्रभु के मार्ग में सुगमता से चल सकते हैं वैसे पंड़ित नहीं चल सकते। वे तो अपनी अकल के अजीर्ण और शब्दों की लड़ाई में ही पड़े रह जाते हैं।

भाइयो! हम सबको पंड़िताई बहुत अच्छी लगती है इससे पंड़िताई के झगड़े में न फँस जाय और अंतःकरण खाली न रह जाय इसकी पूरी, संभाल रखना हमने देखा है कि, बहुत से शास्त्री केवल बातें करने ही में कुशल होते हैं परन्तु उनके अंतःकरण प्रभु की ओर से ऐसे शुष्क होते हैं कि, जो हम उनके भीतरी आचरणों को जान लें तो हमको उन पर घृणा हुए विना न रहे। जो विद्या हमको तारने वाली है वही विद्या हमको नरक में न ले जाय इसकी सँभाल रखना है। प्रभु! जिस पंड़िताई से हम तुझसे विमुख हो जायँ उस पंड़िताई से तो हमको वैसी मूर्खता ही देना जिसमें हृदय की सरलता हो और आत्मिक विश्वास हो!

*****

२८२ याद रखो कि धर्मसंबंधी विचार सहज में सुधरते नहीं है, इसलिये पूरी सँभाल रखो कि कोई भी बुरा विचार चित्त में न जमने पावे!

कोई एक अंग्रेज मुसाफिर और लोगों का धर्म सीखने पराये देश में गया। वहां के एक धूर्त धर्मगुरु ने उसको अपने धर्म के नाम से कितनी ही झूँठी बातें सिखला दीं। उस मुसाफिर को यह नहीं मालूम था कि, यह

झूँठी बातें सिखलाता है। वह तो बड़ी श्रद्धा के साथ सीखता था इससे उसने वे सब बातें सच्ची ही समझी और मन में विचारा कि, इन लोगों का धर्म ऐसा है। थोड़े समय पीछे उसकी एक भले आदमी से भेंट हुई जब धर्मसंबंधी चर्चा चली तो उस भले आदमी ने उस मुसाफिर से कहा कि तुम जो कुछ कहते हो सो सब झूँठा है, हमारा सच्चा धर्म तो यह है, इतना कहकर उसने अपना सच्चा धर्म बताया परंतु उस मुसाफिर के मन में जो पहले झूँठे संस्कार जम गये थे वे मुद्दत तक न गये वैसे ही हमारे मन में भी जो धर्मसंबंधी अच्छे या बुरे संस्कार एक बार जम जाते हैं वे सहसा निकल नहीं सकते हैं, इससे इस बात की पूरी संभाल रखना चाहिये कि, धर्मसंबंधी वैसी कोई मिथ्या बात मन में न जमने पावे।

विद्या हुनर के, धंधे रोजगार के, कला कौशल के या सुधारे बिगाड़े के जो २ विचार हमारे मन में आंते हैं उनमें शीघ्र ही सुधार तथा लौट फेर हो सकता है। क्योंकि उस विषय में हमारा कोई खास आग्रह नहीं होता अथवा उसको मानने का हम पर कोई खास दबाब नहीं होता, परंतु धर्म के विचारों को मानना तो हमारा मुख्य कर्तव्य है और इस विषय में हमारा हठ भी जबरदस्त होता है इससे हमारे मन में जो धर्मसंबंधी संस्कार एक बार जम जाते हैं वे सहसा निकल नहीं सकते। इसलिये जैसे बनै वैसे धर्मसंबंधी ईश्वर संबंधी कोई भी बुरे विचार हमारे या हमारे बच्चों के मन में न जमने पावें इसकी पूरी सावधानी रखो!

विद्या हुनर में या धंधे रोजगार में हम औरों के विचार भी ले सकते हैं परंतु धर्म के संबंध में विधर्मियों के विचार चाहे जैसे अच्छे हों तब भी हम उनको कदापि स्वीकार नहीं करते। इस तरह धर्म के विषय में हम सबके ही मन में थोड़ा बहुत पक्षपात होता है। इसलिये धर्मसंबंधी कोई भी बुरे विचार मन में न ठस जाने की पूरी सँभाल रखना! जो ऐसा कोई भी बुरा विचार मन में जम गया तो वह जन्म तो बिगड़ेहीगा परंतु दूसरा जन्म भी उस विचार को निकाल डालने ही में खो देना पड़ेगा ऐसा न होने पावे इसका ख्याल रखो और अभी हाथ में समय है तब तक चेतो! चेतो!! भूले भरे हुए विचारों में पड़े मत रहो किंतु पवित्र परमेश्वर के सत्य वचनों में मस्त रहो!!!

*****

२८३ धोबी के पास धोने को आये हुए कपड़े धोबी के नहीं हो सकते, वैसे ही पंड़ितों के अपनी पंड़िताई दिखाने के लिये इकट्ठे किये हुए लोगों के विचार उनको स्वर्ग में नहीं पहुँचा सकते

सोनार को लोग जेवर बनाने के लिये सोना दे जाते हैं परंतु वह सोना सोनार का नहीं कहला सकता और धोबी के यहाँ जो कपड़े धोने को आते हैं वे धोबी के नहीं हो सकते, वैसे ही पंड़ित दूसरे लोगों के और शास्त्रों के विचार इकट्ठे करते हैं वे उनके नहीं हो सकते अर्थात् जैसे धोबी के यहां धोने को आये हुए कपड़े धोबी के उपयोग में नहीं आ सकते तैसे ही भक्ति रहित पंड़ितों के मन में आये हुए शास्त्रों के अच्छे विचार भी बिचारे उन बोझा उठाने वालों के काम में नहीं आते, क्योंकि जिनको प्रभु के नाम की लगन नहीं लगी है और ऊपर से ही जो पंड़िताई दिखाते हैं वे केवल शास्त्रों का बोझा ही उठाने वाले हैं। ऐसे लोग तो केवल विवाद करने में, शब्दों की लड़ाई में, मानमर्तबे की हौंस में और चेला चेली करने ही में रह जाते हैं। वैसे लोग केवल गधे की तरह दूसरों के विचारों का नाहक बोझा ही उठाते हैं, परंतु कुछ सार्थकता नहीं कर सकते। जो प्रभु में प्रेम लगावे, अपने आचरण सुधारे और अपने भाई बंधुओं को किसी न किसी तरह से सहायता करे उसी की पंड़िताई की सार्थकता है। जो ऐसा कुछ भी न हो और केवल पाखंड़ ही पाखंड़ हो तो ऐसी पंड़िताई से तो दिहाती लोगों का जगलीपन ही अच्छा है कि जो भूखे को खाना देते हैं और रात में इकट्ठे होकर सारंगी तँबूरे और झाँझ पखावज बजाते प्रभु का भजन करते हैं।

भाइयो! याद रखो कि, पंड़िताई कुछ फेंक देने की वस्तु नहीं है, पंड़िताई एक बड़ा गुण है, पंड़िताई प्रभु की कृपा का फल है, परंतु है तब हीं जब वह प्रभु को साथ रख के की जाय। प्रभु प्रेम बिना की पंड़िताई पंड़िताई नहीं परंतु लुच्चाई है, राक्षसीपन है। हम सबको पंड़िताई बहुत अच्छी लगती है परंतु इस बात की पूरी सावधानी रखना कि, कहीं ऐसे राक्षसीपन में फँस न जाओ!

*****

२८४ मौज उड़ाते समय तो बड़ा मजा आता है परंतु हिसाब चुकाते समय खबर पड़ेगी

चार मित्र सैर करने को निकले। उनमें से एक मित्र किसी बड़े नगर में जाकर सराय में ठहरे और भठियारी से कहने लगे हमारे लिये खीर पूड़ी बना!'

थोड़ी देर में आप बोले 'चा लाओ' थोड़ी देर में कहा 'पकोड़ी ला!' फिर थोड़ी देर में कहा कि, 'फल लाओ!' थोड़ी देर में कहा कि, 'आइसक्रीम ला!" और फिर थोड़ी देर में कहा कि, 'काफी बनाओ!' इस तरह वह एक पर एक नई वस्तु माँगते गये और भठियारी देती गयी। बात की बात में तीन दिन निकल गये। जब वह चलने लगा तो भठियारी ने पचीस रुपये का हिसाब बनाकर पेश किया। पचीस का हिसाब देखते ही वह घबराया। साथ वाले एक आदमी ने पूछा "तीन दिन के पचीस कैसे जुड़ते हैं?"

भठियारी ने उत्तर दिया "कैसे क्या जुड़ते हैं हिसाब से ही जुड़ते हैं! मनचाहा माल उड़ाते समय तो इसका कुछ विचार न किया और अब पूछते हो कि, इतने रुपये कैसे जुड़ गये? क्या मेरा माल मुफ्त का था?"

उनके पास इतने रुपये निकले नहीं भठियारी ने अदालत में नालिश की अंत में उसको जेल की हवा खानी पड़ी।

भाइयो! हम भी परमेश्वर को भूल जाते हैं और दुनियांदारी की झूंठी मौज मारने में कुछ भी कसर नहीं रखते। इस समय तो हम यह सोचते कि, हमारी हैसियत कितनी है। परंतु याद रखो कि, प्रभु के आगे जब हिसाब चुकाया जायेगा तब रकम बहुत बड़ी मालूम पड़ेगी, और हम हिसाब चुकता न कर सके तो अवश्य ही जेल में जाना पड़ेगा। ऐसा न होने पावे इसका थोड़ा २ विचार पहले ही से रखना! क्योंकि यहाँ के दयालु अँग्रेज सरकार कासा हवा, प्रकाश और बाग बगीचा वाला यमराज का जेल नहीं है, वहां तो ब्रह्मांडों को पिघला देने वाली अग्नि और सहन न हो सकने योग्य तथा वर्णन करने ही में त्रासदायक और भयंकर दुःख हैं। इसलिये इस दुनियां की क्षणिक और रूखी मौज के लिये लाखों बरस तक नरक में न पड़ना पड़े। इसकी सँभाल रखना।

५२ घनाक्षरी

पूर्व बोह पुण्य कीयो अरु हरिनाम लीयो,
ताहीके प्रतापसों प्रताप खरो पायो है ।
जीते जीय भोग भोग जौलों नाहीं व्यापै रोग,
ऐसो तो न कोई जोई काल नाहीं खायो है ।।
रामजीवन यों भाखै जौन विषै रस चाखै,
सो न बुद्धिवंत ताहि तंत बिसरायो है ।
नरकनमध्य पीड़ा भोगे ताहि काटैं कीड़ा,
त्यौंही कर मीजि मीजि बोह पिछतायो है ।।१।।

*****

२८५ कपड़े और जेवर बचाने के लिये अपनी आत्मा को मत डुबाओ! आत्मा को मत डुबाओ!

एक सेठ ने नौकर के साथ अपने पुत्र को तालाब में नहाने भेजा। भेजते समय उसने नौकर से कहा "देख! कपड़े लड़के के कीमती हैं। ऐसा न हो कि, कोई उन्हें उठा ले जांय।"

जब दोनों तालाब पर पहुँचे तो नौकर कपड़ों की रखवाली करने लगा और लड़का तालाब में नहाने लगा। नहाते २ लड़के का पैर फिसला और वह डूबने लगा। नौकर खड़ा २ यह सब बात देखता रहा परन्तु सेठ ने उसको कपड़ों की रखवाली करने की आज्ञा दी थी। तब वह कपड़ों को छोड़ जाता? परिणाम यह हुआ कि नौकर खड़ा २ कपड़ों ही की रखवाली करता रहा और उधर लड़का डूबकर मर गया। राम! राम!!

यह बात सुनकर हमको दुःख होता है और हम उस नौकर की मूर्खता पर धिक्कार डालते हैं परंतु भाइयो! यह तो देखो कि, हम स्वयं क्या करते हैं? यह बात तो हुई हो या न भी हुई हो अथवा न जाने कब हुई हो, परंतु हम तो अब भी वैसा ही करते हैं। अपने गहने कपड़ों को हम सँभालते हैं, चाबी के गुच्छे और कागजों की बहियों को हम सँभालते हैं, और अपने आत्मा को हम डुबाते हैं। ऊपर लिखी बात पर हम शोक प्रगट करते हैं परंतु खास हम ही वैसा काम कर रहे हैं सो कैसा?

भाइयो! शुद्ध अंतःकरण से प्रार्थना करो कि, हे प्रभु! दुनियांदारी के हमारे मोह को कम कर! और हमको ऐसी बुद्धि दे जिससे हमारे पवित्र

कल्याण के लिये तेरा यथार्थ स्वरूप समझ में आ सके। नित्यप्रति सच्चे दिल से जो परमेश्वर से इस तरह प्रार्थना की जाय तो वह अवश्य सहायक होगा। उसकी सहायता विना उसकी कृपा बिना यह मोह, माया छूट नहीं सकती और पुरुषार्थ विना अर्थात् लगे रहे विना प्रभुकृपा प्राप्त नहीं हो सकती। इसलिये कपड़े गहने के लिये अपनी आत्मा को मत डुबाओ! मत डुबाओ! ! किंतु आत्मा के कल्याण के लिये प्रभु में लगे रहो! प्रभु में लगे रहो! !

*****

२८६ भले आदमियों में जैसे लुच्चे मिल जाते हैं, वैसे ही भक्तों में ढ़ोंगी भी मिलेंगे तो सही, परंतु वे पहँचान में आये बिना नहीं रहते!

बंबई के पालवाबंदर पर, बेंड़स्टेंड़ पर अथवा चौपाटी पर कभी सैर करने, हवा खाने गये हो? वहां बहुत से इज्जतदार गृहस्थ स्त्री और पुरुष सुबह शांम सैर करने जाया करते हैं वहां केवल इज्जतदार लोग ही सैर करने नहीं जाते परंतु बहुत से लुच्चे लफंगे और रंड़ियां तक जाती हैं। उनमें कितने ही तो जेब कतरने वाले होते हैं। कितने ही बुरी नजर से आने वाला होते हैं और कितने ही खास सोनेरी टोली वाले होते हैं। वे लोग प्राय: ऊपरी भबका बनाकर वहाँ जाते हैं, उस भबके को देखकर कितने ही अजाने लोग धोखा खा सकते हैं, कि ये धनवान् और सुखी लोग हैं तथा आबरूदार हैं परंतु अनुभवी लोग धोखा नहीं खाते। वे तो जानते होते हैं कि, इनमें से किसी पर तो मकान का किराया वसूल करने को कुरकी आने वाली है, किसी ने अपने पहनने के कपड़ों के दाम ही नहीं चुकाये हैं, किसी से सिलाई के दाम वसूल करने को दरजी पुकारते हैं, किसी के बूट चोर बाजार से खरीदे हुए है, किसी ने घड़ी गिरवी रखकर रुपये उधार निकलाये हैं और कितने ही के घरों में चूहे तक भूखे मरते चाकियों को चाटते हैं तब भी किसी कारण से या लोभ लालच से वे फिरने सैर करने आये हैं। ऊपरी भी भबका कैसा ही हो परंतु वैसे लोग रीतिभांति में, चालचलन में, बोलीचाली में, और सूरत शक्ल में भले आदमियों से भिन्न ही होते हैं। वैसे ही जो सच्चे भक्त हैं उनमें ऊपर से लंबी २ मालाएँ पहनने वाले, चौड़े २ तिलक छापे लगाने वाला और बड़े २ जयगोपाल परन्तु अंत:करण में बिना रँगें भगवद्रसमें बिना डूबे हुए

ढ़ोंगी भक्त मिले बिना नहीं रहते, परन्तु वे उन लुच्चे लफंगों की तरह जल्दी ही पहँचान में आ जाते हैं। ऐसा झूंठा वेष बनाना सदा काम नहीं आ सकता बरन् इससे तो और कीमत कम हो जाती है। इसलिये भाइयो! इसकी पूरी सँभाल रखो कि, व्यवहार और भक्ति में तुममें झूंठा ढ़ोंग न आ घुसे! क्योंकि प्रथम तो ढ़ोंग ही बुरा होता है जिसमें भी प्रभु के साथ ढ़ोंग करना तो पाप का भी पाप है इसलिये अपनी भक्ति में ढ़ोंगी पर न आने देने की पूरी सावधानी रखना!

*****

२८७ धर्म का उपदेश करने वालों की अपेक्षा हरिजनों में ज्ञान अधिक होता है

अच्छे चित्रकार अनेक मनुष्य, पशु तथा वस्तुओं के ज्यों के त्यों चित्र उतर सकते हैं परंतु उन मनुष्यों, पशुओं तथा वस्तुओं के गुण दोषों को नहीं जान सकते। इसी तरह जो उपदेश करने वाले हैं। पुस्तक बनाने वाले हैं और सभाओं में बड़े २ व्याख्यान देने वाले हैं वे भी उन चित्रकारों ही जैसे हैं। चित्रकार जैसे चित्र खींचता है वैसे ही वे अपनी बुद्धि के बल से और अभ्यास से सब बातें कह देते हैं। परंतु जो उन्होंने कहा है उसी का रहस्य समझने वाले उनमें से थोड़े ही होते हैं और उन थोड़ों में से उसका अनुभव करने वाले और भी थोड़े होते हैं, परंतु हरिजन भक्त तो उन सब बातों को जानने वाले, और उन सबका ही अनुभव करने वाले होते हैं अर्थात् बाहर से लंबी चौड़ी बात करने वाले परंतु भीतर से कोरे के कोरे उन उपदेशकों की अपेक्षा प्रत्यक्ष में मूर्ख से दीखने वाले भक्तों में ज्ञान अधिक होता है, क्योंकि धर्म का उपदेश करने वाले केवल धर्म और प्रभु की बात कह सकते हैं परंतु भक्तजन तो उन सब बातों का इसी जीवन में अनुभव कर सकते हैं। कहने और भोगने में जितना अंतर है उतना ही अंतर पौराणिकों और भक्तों में हैं। उपदेशक कहते हैं कि, अब भोजन करना चाहिये परंतु अभी तक वे ही भूखे पड़े हैं और भक्तजन तो पेट भर के बैठे हैं। इसलिये भाइयो! बाहर का क्षणिक नाम पाने के लिये बतौनी बनने की अपेक्षा भीतरी आनंद लूटने के लिये भक्त बनना पसंद करो और भक्त की मूर्खता समझो, मत समझो, परंतु अपने ही आप ही को मूर्ख समझो, क्योंकि धर्म के लिये, अपने आत्मा के लिये और प्रभु के लिये जो कुछ करना है सो हमने आज तक किया नहीं है परंतु भक्तजन उसे करते

हैं। इससे अधिक नहीं तब भी एक सीढ़ी तो वे हमसे ऊपर चढ़ चुके हैं। इतने ही वे हमसे श्रेष्ठ हैं इसलिये भाइयो! उनका आदर करो और वैसे बनने का यत्न करो!

*****

२८८ हरिकथा करने वालों और भक्तजनों के ज्ञान में कितना भेद है?

अँग्ररेज और दूसरे यूरोपियन लोग जब हिंदुस्थान में सैर करने आते हैं तब पालवा बंदर पर बढ़िया स्टीम्लांच में उतरकर अव्वल नंबर के होटल में ठहरते हैं। फिर दो तीन दिन बंबई में रहकर एक आधा व्याख्यान दे, थोड़ी भेंट पूजा इकट्ठी करके वे कलकत्ते दो रवाना हो जाते हैं। वहां से मद्रास होकर मैसोर की सोने की खान देख, निजाम सरकार की मेहमानदारी ले, आगरे का ताजमहल देख, गंगा में नाव की सैर करते २ काशी के घाट देख, अमृतसर का सिक्ख लोगों का सोने का मंदिर देख, देशी राजाओं के यहां हाथियों की लड़ाई देख, शिमले का सरकारी महल देख, सीमाप्रांत की पहाड़ी रेल्वे और कराची डाक देख, किसी सरकारी नौकर की मेहबीनी से एक आधा जलसा देखते। लोगों की तालियों और बिना पैसे के हुर्रे की चिल्लाहट में वे महीने दो महीने की सफर करके पीछे घर लौट जाते हैं और वहां पहुँचकर हिंदुस्थान के अनुभव के लंबे २ व्याख्यान देते हैं, बड़े बड़े पुस्तक लिखते हैं और समाचार पत्रों में बड़ी धामधूम मचा देते हैं।

परंतु यह सब ऊपरी बाते हैं। हमारे साधुओं का सा कि जिन्होंने पैरों चलकर अनेक गांव देखे हैं। अनेक देहातियों के भिक्षा के लिये घर देखे हैं और सब जातियों के लोगों के रीति रिवाज और आचार विचार देखे हैं, हमारे देश और लोकसंबधी पूरा पूरा अनुभव उन यूरोपियन मुसाफिरों को कभी नहीं होता। वैसे ही हमारे व्यास और भक्तों के लिये भी समझना चाहिये। कथा कहनेवाले शास्त्रीबाबा लोग धर्म के नियम पालने के संबंध में और ईश्वरीय मानसिक आनंद का अनुभव लेने के विषय में ट्रेन में बैठकर मुसाफिरी करके पूरे दो सप्ताह में सारे हिंदुस्तान का अनुभवी प्रकट करनेवाले यूरोपियन मुसाफिरों के समान हैं और भक्त लोग हिंदुस्तान के अनुभवी साधुओं के समान हैं कि जो प्रभु के मार्ग में रमण करते हैं और अपने हृदय में शुद्धप्रेम से प्रभु को धारण करते हैं। यूरोप

और अमेरिका के लोग जो हिंदुस्तान की सच्ची स्थिति को नहीं जानते, उन मुसाफिरों की बातों को सच्चा मानें तो मान सकते हैं परंतु हिंदुस्तान के घर घर से जानकर तो उन रेल में बैठ कर चार दिन में लौट जानेवाले मुसाफिरों की बात नहीं मान सकते, वैसे ही व्यवहारिक लोगों में वे व्यास चाहे बड़े बन बैठे, परंतु सच्चे भक्तों के आगे उनकी कुछ भी कीमत नहीं है। इसलिये भाइयो! बहुत बतौनी नहीं परंतु प्रभु के सच्चे भक्त बनने की ही भावना रखो! इसी में कल्याण है!

*****

२८९ जिसको रुचि न हो उसको बोध कराना वृथा है, इससे योग्य अधिकारी को ही उपदेश करो!

उत्तर हिन्दुस्तान में से रोजगार धंधा करने को एक भैया बम्बई गया। वह भैया कई प्रकार की मिठाइयां बहुत अच्छी तरह बनाना जानता था। वह बम्बई से अजान था इसने उसने अपने एक परिचित से पूछा "भाई! मुझे मिठाई का खूमचा लगाना है। जहां मिठाई अधिक बिके वह स्थान बताइये तो मैं वहां पर जाकर बैठूँ।"

उसने कहा "भाई! पालवाबंदर और बैंड़स्टेंड़ पर नित्य सायंकाल को बड़े २ सेठ साहूकार जाया करते हैं। तुम अपना खूमचा वहीं जाकर लगाओ तो अच्छी विक्री होगी।"

दूसरे दिन से उस भैया ने वहां जाना जारी कर दिया बहुत रात जाने तक बिचारा वहां खूमचा लिये बैठा रहता परन्तु कोई भी सेठ उससे एक पैसे का माल न खरीदता, इससे खाली हाथ उसे पीछा लौटना पड़ता। दो, चार दश दिन तक जब यही दशा रही तो एक दिन उसने एक दूसरे आदमी से वही बात पूछी उस भले आदमी ने कहा "पहले आदमी ने तुमको सलाह देने में भूल की जिसको खाने की कुछ भी जरूरत न हो उसके पास खाना ले जाने से क्या लाभ? पालवाबंदर पर फिरने वाले जिन सेठ साहूकारों के लिये तुम मिठाई ले जाते हो उनको भूख ही कहां लगती है? जो उनको ठीक २ भूख ही लगती हो तो वहां पर जाने की जरूरत ही उनको क्यों पड़े? उनके पेट में पड़ा हुआ माल हजम नहीं होता तब ही तो वे उसे पचाने के लिये हवा खाने जाते हैं। वे तुम्हारी मिठाई लेकर करे क्या? उनके घर में मिठाई की क्या कमी है सो तुमसे खरीदकर सड़क पर खड़े २ खांय? पालवाबंदर पर मिठाई ले जाने से

तुम्हारा काम नहीं होने का! तुम समझते हो कि, सेठ साहूकार, मेरी मिठाई बहुत खरीदेंगे परंतु उनको मिठाई खाने की भूख ही कब लगती है? इसलिये जो मेरा कहना मानो तो खूमचा लेकर गोदी पर अर्थात् समुद्र के उस घाट पर जहां जहाजों में माल चढ़ता उतरता है और मिलों में अर्थात् कारखाने में जाओ कि जहां पर मजदूर लोग शरीर तोड़कर परिश्रम करते हैं और शिर का पसीना पैर तक उतारते हैं जिससे उनको भूख लगती है और गरीब होने पर भी वे दो चार पैसे खर्च कर देते हैं। अथवा किसी स्कूल के पास अपना खूमचा लगाओ कि जहां पर प्रभु की कृपा से निर्दोष बालकों को भूख लगती है। भाई! जिनको भूख लगती है उनके ही पास तुम्हारी मिठाई बिक सकती है, परन्तु जिनके पेट भरे हैं और जिनको खाया हुआ ही नहीं पचता उनके पास जाकर तुम क्या करोगे?"

दूसरे ही दिन से वह गोदी पर मजदूरों के पास जाने लगा और वहां उसकी मिठाई जोर शोर से बिकने लगी।

भाइयो! इसी तरह धर्म का उपदेश और प्रभु की महिमा की बातें भी जिनको धर्म का रंग कुछ २ लग जाता है उन ही भक्तों हरिजनों के पास शोभा देती हैं। परंतु सुधरने के नाम से उलटे बिगड़े हुए और आधे भ्रष्टों के आगे वह उपदेश किसी कामका नहीं। इसलिये पात्र देखकर उसकी योग्यता देखकर उचित उपदेश करो! सबको एक ही लकड़ी से मत हांको! क्योंकि घोड़ों के लिये तो इशारा ही बस है और गधों की पीठपर लग लगकर कई लकड़ियां टूट जाती हैं तब भी कुछ फल सिद्ध नहीं होता। इसलिये भाइयो! उपदेश करने में सँभाल रखना, धर्म का उपदेश सुनने में और प्रभु की महिमा हृदय में धारण करने में गधे न रह जाओ। पूरी सावधानी रखना, इस विषय में जितना थोड़ा बना जाय उतना ही कल्याणकारक है!

*****

२९० दुःख के समय में भक्तों की परमेश्वर खास सँभाल रखता है

हमने देखा है कि, जहां मार्ग अच्छा होता है वहां पिता अपने बालकों को छुट्टा छोड़ देता है और उनको उनकी इच्छा के अनुसार स्वतन्त्रता से चलने देता है, परन्तु जब खराब रास्ता आता है तब वह बच्चों के बिना

कहे भी उनको सँभाल से अपने पास खींच लेता है। वैसे ही जब हम अच्छी स्थिति में हों और अपनी इच्छा के अनुसार सुगमता से चल सकते हों तब परमेश्वर को हमारी चिंता कम रहती है, परंतु जब हम किसी दुःख में आ पड़ते हैं तब परमेश्वर हमारी विशेषरूप पर सँभाल रखता है। इसलिये हरिजनों को दुःख में दुःखी नहीं होना और हिम्मत नहीं हार जाना चाहिये, परंतु ऐसा विचार रखना चाहिये कि, हमारे माता पिता ही जब हमारे लिये इतनी चिंता करते हैं तब दयालु परमेश्वर कितनी चिंता रखता होगा? इसमें भी हरिजनों के लिये तो उसको और भी अधिक चिंता रहती है।

भक्तजनों के चरित्र पढ़ने वाले और सुनने वाले जानते हैं कि, किसी भी सच्चे भक्त को सच्ची भीड़ के समय प्रभु कभी नहीं भूला है और भूल सकता भी नहीं है। इसलिये अपने धर्म पर विश्वास रखकर ईश्वर की आशाओं को पालते रहो तो प्रभु दुःख में तुम्हारा सहायक बने बिना कभी न रहेगा, क्योंकि प्रभु ने हमसे प्रण कर लिया है कि,–

"न मे भक्तः प्रणश्यति।"

अ० ९ श्लो० ६१

अर्थ–मेरे भक्त का कभी नाश नहीं होता।

इसलिये भाइयो! घड़ी भर के दुःख से हारकर पवित्र धर्म के अच्छे कर्तव्यों को कदापि मत छोड़ देना! जो तुम धर्म के कर्तव्यों को पूरा करने में लगे रहोगे तो प्रभु तुमको अवश्य सहायक होगा! अवश्य सहायक होगा!! इसे निश्चय समझो!!!

ठुमरी

जो जन ऊधव! मोहिं ना बिसारै, ताहि न बिसारूं मैं छिन एक घड़ी रे ।। टेक ।। मोकों मजै जो भजों मैं वाकों, कल न परत छिन एक घड़ी रे । जन्ममरण को मैं संकट काटों, राखों सुख आनंदभरी रे ।। जो जन० ।।१।। सुमिरन कीनो द्रौपदी रानी, चीर बढ़ाये प्रभु आप हरी रे महाभारत भरुई के अंड़ा, राखलिये गजघंट धरी रे ।। जो जन० ।।२।। ध्रुव प्रह्लाद रैनदिन ध्यावैं, गुप्तरूपसों प्रकट करी रे । खंभ फाड़ हिरणकश्यप मारयो, रक्षा भक्त प्रह्लाद करी रे ।। जो जन० ।।३।। अंबरीष घर गये दुर्वासा, चक्र पठाइ प्रभु सार करी रे । भजनहार भजों, तजनहार तजों, ऐसी हमारी परापरी रे ।। जो जन० ।।४।। पाँच पांड़व की रक्षा कीनी,

लाक्षागृह में सहाय करी रे । सूर कहै गजराज उधारचो, दयासिंधु यदुनाथ हरी रे ।। जो जन० ।।५।।

*****

२९१ समय पड़ने पर प्रभु के लिये सारी दुनियाँ भी छोड़ देनी पड़े तो भी उसमें कुछ बड़ी बात नहीं है

मुसलमान बादशाहों के समय में लोगों को धर्म का बड़ा भारी आग्रह था उस समय आग्रह के मारे मुसलमान बादशाहों के सूबे जहाँ तहाँ बड़ा त्रास दिखाते थे। उस समय पंजाब के सूबेने किसी बहाने से एक भक्त को फाँसी देने की आज्ञा दी। फाँसी की आज्ञा सुनकर लोग बहुत घबराये और नम्रतापूर्वक सूबे से कहने लगे 'यह भक्त बड़ा भला आदमी है। इसको फाँसी देने से प्रजा का चित्त बहुत बिगड़ेगा। इससे इसको और चाहे जैसी सजा दीजिये परंतु फाँसी से तो बचाइयें!' लोगों का ऐसा कहना सुनकर सूबे ने काजी की ओर देखा। काजी बोला "इस काफिर के लिये फांसी के सिवाय दूसरी कोई सजा नहीं है! हां एक बात से वह छूट सकता है और वह बात यही है कि, वह मुसलमान बन जाय तो बस फिर उसकी जिंदगी बन जाय।"

सूबे के उस भक्त से यही बात कही। तब भक्त ने उत्तर दिया "आप जो चाहे सो करें! मैं मौत से डरकर अपना धर्म नहीं छोड़ सकता।"

लोगों ने उसे बहुत कुछ समझाया और कहा "नाहक अपना प्राण क्यों खोता है? सूबा अपनी आज्ञा को लौटायेगा नहीं! मुसलमान बन जाने में तेरा जाता ही क्या है? अन्त:करण में तू चाहे जैसा धर्म पालना परन्तु इस समय तो कह दे कि मैंने हिंदू धर्म छोड़ा।"

भक्त ने उत्तर दिया "नहीं साहब! ऐसा कदापि नहीं हो सकता, प्रभु के साथ धोखेबाजी नहीं चल सकती। इस तरह डर जाने से मौत पीछा थोड़ी ही छोड़ देगी? पांच बरस में या दश बरस में कभी तो मरना है ही तब अपने धर्म के लिये इसी समय मरना पड़े तो क्या डर है?"

इसके पीछे उसके बच्चे और स्त्री आदि उसके पास आये और उसका प्राण बचाने के लिये आंखों में आंसू भरकर बड़े प्रेमपूर्वक हाथ जोड़कर बोले "तुम चाहे मुसलमान हो जाओ परन्तु अपना प्राण बचाओ और नहीं तो हमारे ही लिये तुम अपना प्राण तो बचाओ!"

भक्त ने उत्तर दिया "तुम्हारे लिये मैं सारी दुनियां को छोड़ सकता हूं।

सब कुछ तुम्हारे नाम पर मैं त्याग सकता हूं परंतु प्रभु के नाम पर मैं तुमको भी त्याग सकता हूं। मेरे प्रभु को छोड़ देना पड़े, मेरी भक्ति को छोड़ देना पड़े इससे तो मैं अपनी स्त्री और पुत्र परिवार तथा देह तक छोड़ देना पसन्द करता हूं। पहले प्रभु, पहले धर्म, पहले अपनी आत्मा और फिर दूसरा सब कुछ, अन्त में उस अत्याचारी सूबे ने उस भक्त को फांसी पर लटका दिया परंतु उसने तब भी अपना धर्म नहीं छोड़ा * धर्म के सम्बन्ध में प्राचीन लोगों में इतनी दृढ़ता थी तब हीं हजारों आपत्तियों सहने पर भी हमारा धर्म आज तक टिका हुआ है, परन्तु अब वह दृढ़ता टूटती जाती है। अब तो जरा अधिक तनख्वाह मिलने के लिये, मलिन, अपवित्र पदार्थ खाने पीने के लिये, अंग्ररेजों की खुशामद के लिये मौज मजा उड़ाने के लिये गोरी २ बीबियों के लिये और टुकड़ा रोटी के लिये लोग अपना धर्म छोड़ते जाते हैं हमारे पवित्र धर्म पर से हमारी श्रद्धा इतनी घट गयी है और जो यही दशा रही तो अन्त में क्या परिणाम होगा सो विचारते बड़ा भय लगता है। प्रभु! ऐसी अधमं स्थिति में से हमको बचा! हमको बचा!! और हमारे पवित्र धर्म पर उत्तम आर्यधर्म पर हमारा विश्वास दृढ़ करके धर्म के निमित्त, प्रभु के निमित्त कभी हम पर कष्ट आ पड़े तो उनको सहन करने की हमें शक्ति दे कि, जिससे हम तेरे पवित्र नाम पर सारी दुनियां को न्योछावर कर सकें!

५३ पद

मन वच कर्म भजो भगवाना, त्यागहु विघ्न करै जो आना ।। टेक ।। प्रह्लादहि हिरणाकुश त्यागे जिन हरिभक्ति विघ्न बहु ठाना । भयो उधार पुत्र के कारन जब प्रभु नरसिंहरूप दिखाना ।।१।। भरत भक्ति जगजानी सबहीं भजे राम जिन कृपानिधाना । त्यागिदई कैकेयी माता नेक न मोह चित्त निज आना ।।२।। ऋषिपत्नी निजनिज पति तजिने कृष्ण चन्द्रपदजा-यलुभाना । पति अरु पितरन को उद्धारे भईं ज्योतिमहँ ज्योतिसमाना ।।३।। रामजीवन प्रभुकृपा निहारै जासों मिटैं मोह मद माना । करि बनवास आश इक प्रभु की भजो पदारविंद सुखखाना ।।४।।

* प्राचीन समय में धर्म के लिये प्राण देने वाले हमारे देश में हजारों भक्त हो गये हैं परन्तु हमारे यहां इतिहास लिखने की चाल नही है इससे ब्यौरेवार, सालवार और नामवार उदाहरण नहीं मिल सकते। तब भी पंजाब में गुरुमुखी भाषा में लिखे हुए सिक्ख धर्म के पुस्तकों में वैसे बहुत से उदाहरण मिलते हैं।

२९२ अपने हृदय के पुराने पाप और बुरी आदतें छोड़े विना सच्ची भक्ति हो नहीं सकती

हमको अपने पुराने मकान पर नया मकान बनाना होता है तब पहले पुराने मकान का सारा सामान उस जगह से हटा देना पड़ता है। पुराना सामान हटाये विना क्या उसी के ऊपर नया घर बनाया जा सकता है? कभी नहीं! वैसे ही हमारे अंत:करण में जो पहले के पाप घुसे हुए हैं और जो बुरी आदतें पड़ गयी हैं तथा जो बुरी सोहबतें लग गयी हैं उन सबको बदले विना भक्ति का नया मकान बन नहीं सकता। पुराना सामान निकाल डालना ही बस नहीं है। परंतु उसके स्थान में नया सामान भरना जरूरी है। अंत:करण के पापों के बदले अंत:करण की पवित्रता, बुरी आदतों के बदले सद्‌गुण और बुरी सोहबत के बदले सत्संग और हरिजनों की सेवा हृदय और मस्तिष्क में आना चाहिये। जो ये नयी वस्तुएँ आवें तो ही हमारे हृदय में भक्ति माता का नया मंदिर बन सकता है और तोही उसमें प्रभु आ सकते हैं इसलिये भाइयो! जो समर्थ प्रभु को अपने हृदय में लाना चाहो तो पहले के कचरे को दूर करो! और उसके बदले भक्ति के मंदिर में परमार्थ के पत्थर, सत्संग का चूना, दया का दरवाजा और प्रार्थना के शब्दों का घंटा रखो तो प्रभु आप ही उस मंदिर में पधारेगा!

*****

२९३ प्रभु के निमित्त साधुओं का और भक्तों का उनकी योग्यता के अनुसार आदर करो!

सब ही साधु और भक्तजन आदर करने योग्य हैं क्योंकि अपनी शक्ति के अनुसार प्रभु के निमित्त उन्होंने हमारी अपेक्षा अपने व्यवहारी सुख और इच्छाओं का अधिक भोग दिया होता है अर्थात् त्याग किया होता है। इतना ही क्यों? हमारी अपेक्षा वे ईश्वरीय मार्ग में अधिक आगे बढ़े होते हैं इससे वे मान पाने योग्य होते हैं। यों तो सब ही साधु मान पाने योग्य हैं परंतु अपने २ गुणों के अनुसार, भक्ति के अनुसार, त्याग के अनुसार, ज्ञान के अनुसार और उम्र के अनुसार न्यूनाधिक मानने योग्य होते हैं। यद्यपि वे सब ही राजा की छाप वाले सिक्के की तरह हैं, परंतु उस सच्ची और सब पर एक सा छाप होने पर भी प्रत्येक जाति के सिक्कों की कीमत अलग २ होती है, जैसे मोहर की कीमत सबसे अधिक होती है, रुपये की

कीमत उससे कम होती है, पैसे की कीमत उससे भी कम होती है और पाई की कीमत सब ही से कम होती है परंतु तब भी महारानी की महाराजा की छाप तो सब ही पर होती है तैसे ही सब साधुओं के लिये राजाओं के भी महाराजा प्रभु की छाप है और तब भी अपने २ अधिक या न्यून गुणों के अनुसार वे अधिक या न्यून सन्मान के पात्र हैं।

यों तो सच्चे २ मोती सबही मोती हैं परन्तु ज्यों ज्यों उनमें पानी अधिक और आकार बड़ा होता है त्यों त्यों कीमत भी बड़ी होती जाती है और थोड़े पानीदार तथा छोटे मोती की कीमत थोड़ी होती है। तैसे ही साधु सारे साधु ही हैं परन्तु ज्ञान में भक्ति में, अनुभव में और धर्म पालने में जो बड़े होतें हैं वे अधिक मान पाने के योग्य हैं। ऐसे भले साधु और भक्तों को मान देना सो प्रभु को मान देने समान हैं, क्योंकि वे अपने आत्मा का और सारे जगत् का कल्याण करने वाले हैं और प्रभु की आज्ञा पालने वाले हैं इसलिये वे हमारी अपेक्षा और दूसरी किसी भी वस्तु की अपेक्षा प्रभु को अधिक प्रिय हैं वे प्रभु को कितने प्रिय हैं स्वयं भगवान् ने ही गीता में कहा है:–

"परित्राणाय साधूनां विनाशाय च दुष्कृताम् ।
धर्मसंस्थापनार्थाय संभवामि युगे युगे ।।"

अ० ४ श्लो० ८

अर्थ–साधुओं की रक्षा करने को, पापियों का नाश करने को और धर्म को अच्छी तरह बढ़ाने को मैं युगयुग में अवतार लेता हूं।

भाइयो! सुनो! प्रभु के ये वचन खास याद रखने योग्य हैं। साधु भक्तजन, हरिजन तथा सत्पुरुष जैसे भाग्यशाली पुरुषों को जिनके लिये स्वयं भगवान् अवतार लेते हैं, हमको कितना मान देना चाहिये? और उनकी कितनी सेवा करना चाहिये? इसका तो विचार करो! याद रखो कि, जब ऋषि मुनियों और ब्राह्मणों का अर्थात् विद्वानों का मान था और जब उनको खाने पीने की चिंता नहीं करनी पड़ती थी तब ही हिंदुस्थान में सच्चा धर्म था और तब ही हिंदुस्थान ठीक था, और आज यूरोप, अमेरिका के राज्य ठीक हैं इसके मूल कारणों में सत्पुरुषों का समान, उनकी मिलने वाली उत्तेजना और उनके धर्म को फैलाने के लिये राज्यों की ओर से पादरियों को मिलने वाली बड़ी मदद ही मुख्य है। इसलिये भाइयो! साधुओं का तिरस्कार मत करो! उनको भीख मांगने वाले

लँगोटिये बाबाजी मत कहो! उनको मुफ्त खव्वा मत समझो! परंतु उनको हमारे धर्म के थंभ समझो! उनको सुधारने का परिश्रम करो! और उनकी तथा तुम्हारी योग्यता के अनुसार उनको ईश्वर के निमित्त सन्मान करना सीखो!

५४ पद

जे जन ऊधो मोहिं न बिसारैं, ताहि ना बिसारूं छिन एक घरी ।। टेक ।। जो मोहिं भजैं भजूँ मैं वाकों, कल न परत मोहिं एक घरी । काटूं जन्म जन्म में फंदन राखों सुख आनंदकरी ।।१।। चतुर सुजान सभामैं बैठे दुःशासन अनरीत करी । सुमिरन कियौ द्रौपदी जब हीं खैंचत चीर उबार धरी ।।२।। ध्रुव प्रहलाद रैंन दिन ध्यावै प्रगट भये वैकुंठपुरी । भारत मैं भरुही के अंड़ा तापर गजको घंट ढुरी ।।३।। अंबरीष गृहआये दुर्वासा चक्रसुदर्शन छांहकरी । सूरके स्वामी गजराज उबारे कृपा करी जगदीशहरी ।।४।।

*****

२९४ नक्शे में विलायत देख लेने से विलायत का अनुभव नहीं हो सकता वैसे ही केवल शास्त्र पढ़ लेने से धर्म के नियम पाले बिना उद्धार नहीं हो सकता

स्कूल में छोटे लड़के नक्शा देखना सीखते हैं और गुरुजी पूछते हैं "बंबई कहां है? गंगा नदी कहां है? लंदन बताओ! पेरिस बताओ! चीन की दीवार कहां हैं? हिमालय की सबसे ऊंची चोटी कौनसी है?"

तब लड़का अंगुली रख रखकर तुरंत बताता जाता है परंतु जो उससे पूछा जाय कि, तेरा 'घर कहाँ है? तेरे मामा का घर कहाँ है? तो वह कुछ भी नहीं जानता। जो उससे पूछा जाय कि 'सिकंदर बादशाह कहाँ मरा था?' तो वह तुरंत कुछ भी नहीं बता सकता। जो उससे पूछा जाय कि 'अकबर का जन्म कहां हुआ था?' तो वह बता देगा, परन्तु जो उससे पूछा जाय कि तेरे पिता का जन्म कहां हुआ था?' तो वह नहीं बता सकता। जो उससे पूछा जाय कि, 'नूरजहां का विवाह कब हुआ था?' तो वह ठीक साल बता देता है, परन्तु जो उससे पूछा जाय कि 'तेरी माता का विवाह कब हुआ था? तो वह कुछ भी नहीं बता सकता। वैसे ही पेट के लिये शास्त्र पढ़ने वाले भी स्कूल के लड़कों के नक्शे में नगर नदियों के नाम बताने की तरह शास्त्र संबंधी बातें बता देते हैं परंतु रहस्य तो

उसका कोई सा भाग्यशाली ही समझता होगा और उसके अनुसार आचरण रखने वाले महात्मा भी बिरले ही निकलते होंगे।

लड़के नक्शे में जैसे तुरंत ईरान की हद बता देते हैं परन्तु असली ईरान की हद तो उन्होंने कभी स्वप्न में भी नहीं देखी होती, वैसे ही पुस्तक में से शास्त्री लोग जीवन का हेतु कहे देते हैं परंतु स्वयं वे ही जीवन के मूल हेतु को नहीं समझते। जैसे लड़के अपनी होशियारी दिखाने के लिये अंगुली रखकर चट सहारे का भारी जंगल बता देते हैं, वैसे ही पौराणिक बाबा जगत् की उत्पत्ति और नाश की बड़ी २ बातें मारा करते हैं परंतु वे स्वयं ही जगत् की उत्पत्ति और लय के कारण को समझते नहीं। लड़के तुरंत नक्शे में दीवार बता देते हैं परन्तु असली दीवार तो उन्होंने कभी स्वप्न में भी नहीं देखी। वैसे ही भट्टजी हमको माया का मिथ्यापन समझाते हैं परंतु उन्होंने उस मिथ्यापन का कुछ भी अनुभव नहीं किया है तो लड़के नक्शे में जैसे जापान का ज्वालामुखी पर्वत दिखाते हैं परंतु वे पहाड़ देखने का उनको कभी अवसर ही नहीं आया वैसे ही शास्त्र पढ़े हुए पंड़ित जीव का स्वरूप बताते हैं परन्तु जीव के सच्चे स्वरूप को खुद वे ही नहीं समझते और जैसे लड़के एक ही अंगुली से एक ही सेकंड़ में हिमालय का ऊँचे से ऊँचा शिखर दिखा देते हैं परन्तु जैसे आज तक उन शिखरों को किसी ने नहीं देखा, वैसे ही कथा कहने वाले प्रभु के स्वरूप की बातें करते हैं परन्तु उस स्वरूप को उन्होंने कभी समझा नहीं है, क्योंकि कह देना कुछ और वस्तु है और समझ लेना कुछ और वस्तु है। बातें करने और अनुभव लेने में जमीन आसमान का सा अन्तर है। ऐसा अनुभव तो भाग्यशाली भक्तों को ही होता है और प्रभु के नाम की लगन लगे विना के पंड़ित छोटे बालकों की तरह नक्शे देखने ही में रह जाते हैं।

इस पर से यह नहीं समझ लेना चाहिये कि शास्त्र जानना निरर्थक है, परंतु कहने का तात्पर्य यह है कि केवल पेट भरने के लिये, बातें करने के लिये, बड़प्पन पाने के लिये, अथवा विवाद करने के लिये ही शास्त्रा का पाठ करने से लाभ नहीं होता, परंतु पढ़े हुए को हृदय में धारण करना चाहिये और उसका प्रत्यक्ष अनुभव करना चाहिये तब ही वह कामका है, और वह भक्ति से प्रभु सेवा से हो सकता है इसलिये जैसे बने वैसे प्रभु पर का प्रेम बढ़ाओ! प्रभु प्रेम के ही लिये शास्त्र हैं उसी के लिये हमारा जीवन है, उसी के लिये यह संसार है और उसी में प्रभु प्रेम में ही मोक्ष है।

भाइयो! नक्शे में विलायत देखते ही न रह जाओ परंतु धर्म के रहस्य को अनुभव में लाने और प्रभु प्रेम बढ़ाने का यत्न करो! प्रभु प्रेम बढ़ाने का यत्न करो! !

राग कालिंगड़ा

सुमिरन बिन सुख नहीं पावेगा, नहीं पावेगा, नहीं पावेगा ।। टेक ।। भवसागर में भटक मरेगा, जो गुरु वाक्य बिसारेगा ।। सुमिरन० ।।१।। भक्ति ज्ञान बिना शठ तोकू, जमड़ा मुख में चाबेगा ।। सुमिरन० ।।२।। कुंभीपाक आदि नरकनमें यमकिंकर ले जावेगा ।। सुमिरन० ।।३।। अजपा जाप नाव भव जलतें, पलमें पार लगावेगा ।। सुमिरन० ।।४।। भाव धरी भज निर्गुण चेतन, फेर जन्म नहीं आवेगा ।। सुमिरन० ।।५।। विमल विशद नित श्रीसद्‌गुरुका, देव कृष्ण यश गावेगा ।। सुमिरन० ।।

*****

२९५ भक्ति का टीला और माया का बगीचा

एक साधु किसी ऊँचे टीले पर छोटी सी झोपड़ी में बैठा भजन करता था वहां भोग विलास की कोई सामग्री मिलती नहीं थी, जाना आना भी कठिन था, पानी का झरना भी दूर था। थोड़ी २ ठंड पड़ती थी और किसी २ दिन खाने विना उपवास भी करना पड़ता था। टीले के नीचे एक सुंदर नदी बहती थी और नदी के किनारे पर एक सुंदर बाग लगा था। बाग में भोग विलास की सर्व सामग्री थी, बहुत से आदमी उस बाग में भोग विलास करते थे उस साधु का एक चेला टीले पर से सब बातें देखा करता था जिससे कभी २ भोग विलास के लालच में आकर यह गुरु से कहता कि:–

"महाराज! नीचे बाग में चलो ना! आराम तो वहीं है! यहां तो धूनी के लिये पूरी लकड़ी भी नहीं मिलती! मैं तो जाड़े मरता हूं! वहां खाने पीने का कैसा सुख है? आप देखो तो सही! टीले पर से जाते आते जरा चूक जांय तो सब कुछ हो चुके परंतु वहां बाग में किसी बात की चिंता नहीं है। वैसा सुख छोड़कर आप इस उजाड़ में क्यों बैठे हैं?"

गुरु ने उत्तर दिया "बच्चा! यहां ही आनंद है थोड़े दिन में उनके भोग विलास का फल देख लेना।"

गुरुजी की बात सच्ची निकली। थोड़े दिनों में बरसात का मौसम आया खूब पानी बरसा। नदी में बाढ़ आई और उस बाढ़ में भोग विलास

का वह बाग, बाग के भीतर के कमरे और कमरों की सामग्री तथा आदमी सब कुछ बह गया, परंतु गुरुजी की भक्ति की टेकरी तक तथा पानी नहीं पहुँचा। वहां तो गुरु और चेला दोनों ही सकुशल बच गये। तब गुरु ने पूछा "क्यों बच्चा! भोग विलास के लिये नीचे जाना है?" चेले ने दोनों हाथ जोड़कर कहा "नहीं महाराज! ऐसी भूल हुई!"

भाइयो! पापियों का भोग विलास तो नदी किनारे के बाग की तरह घड़ी भर में नाश हो जाने वाला है। इसलिये उसके लालच में पड़कर भक्ति की निर्भय टेकरी प्रभु के प्यारे टीले को छोड़ मत देना! छोड़ मत देना!!

*****

२९६ गाँव में जब राजा आने को होता है तब कितनी सफाई रखनी पड़ती है! तब प्रभु को हृदय में लाने के लिये कितनी पवित्रता रखनी? इसका तो विचार करो!

कलकत्ते का गवर्नर आने वाला था तब बंबई में शहर सफाई की बड़ी धूमधाम मची थी। सड़कें साफ की जाती थीं, मकानों पर रंग और वारनिश होता था, सड़कों पर लोग ध्वजा पताकाएँ लगाते थे, कई कागज के फूल लगाते थे, कोई अपनी दूकानों पर जरी के थान लटकाते थे, कोई सोनेरी रूपेरी बड़े २ अक्षरों में स्वागत लगाते थे, कोई फूल और पत्तों की सुंदर मिहराब कगाते थे, और कितने ही जौहरियों ने अपने मकान और दूकान में मोतियों की झालर लटकाई थी। समुद्र के किनारे बंदर पर लोगों के झुंड़ के झुंड़ इकट्ठे हुए थे; सड़क के दोनों ओर बड़े दबदबे से सेना खड़ी थी और लाटसाब के सत्कार में तोपों की दनादनी होती थी।

बंबई में जब इस तरह की धामधूम मच रही थी तब काठियावाड़ का एक भक्त बंबई आया था और किसी की सिफारिश से एक सेठ के मकान में ठहरा हुआ था। वह सेठ सुधरा हुआ था, आधा भ्रष्ट था, इससे उसको उस भक्त की रीति रिवाज पसंद नहीं आती थी और बात २ में वह भक्त की चेष्टा किया करता था। वह भक्त दिन में तीन बार नहाता, बहुत माला कंठी रखता, तिलक छापे लगाता, बहुत से व्रत उपवास करता, बहुत धर्म की बातें किया करता, दूसरे भक्तों के पास जाया आया करता और सेवा पूजा में बहुत समय लगाता था सो उस सेठ को अच्छा नहीं

लगता था। इससे वह कहता "भक्त! तुम भक्त तो हुए परंतु अभी ढ़ोंग न छोड़ पाये! इन सब ढ़ोंगों में क्या लाभ है? प्रभु तो अंतःकरण में चाहिये इन बाहरी दिखावटों से क्या काम?"

इस तरह की बातें हो रही थीं इतने ही में तोप छूटी। तोप छूटते ही सेठ ने कहा "भक्त! चलो चलो! देर मत करो! आज की धामधूम देखने योग्य है।"

भक्त ने पूछा "आज क्या है?"

सेठ ने कहा "अरे महाराज! इतनी भी खबर नहीं है? आज विलायत से लाटसाहेब आते हैं!"

भक्त ने कहा "लाटसाहेब आते हैं तो क्या हुआ उसमें इतनी धूमधाम क्यों?"

सेठ बोला "वाह महाराज! यह भी क्या प्रश्न है कि, लाट साहब आते हैं तो क्या हुआ? तुम बाबा वैरागी दुनियांदारी के मजे में क्या समझो? इतना बड़ा हाकिम आवे उसका सन्मान नहीं करना? जो उनको इतना सन्मान न करें तो सरकार को हमारी वफादरी कैसे मालूम हो?"

भक्त ने कहा "सेठ साहब! ऐसी वफादरी दिखाने की जरूरत भी क्या है?"

यह सुनकर सेठ जामे से बाहर हो गया। वह बोला "भक्त तुम तो निरे पशु हो! तुम कहते हो कि, सरकार को वफादरी दिखानें की जरूरत क्या है? ऐसा कहने वाले को तो मुश्कें बांधकर कोड़ों से पीटना चाहिये। जिसके राज्य में हम सुख से रहें, जो हमारी अच्छी तरह रक्षा करे, जो हमको नये स्वत्व दे, जो हमको चोरों से, लुटेरों से और विदेशियों के आक्रमण से बचावे, जो हमारे लिये सड़कें, पुल, अस्पताल और मदरसे बनावे, जो हमारे धंधे रोजगार को, खेती बाड़ी को और व्यापार को बढ़ावे, जो अकाल, रेल, आग आदि की आपत्तियों के समय हमारी सहायता करे, और जो हमारे धर्म की रक्षा करे उस सरकार जो वफादार न रहे और उसके भले हाकिमों का सन्मान न करे उसके बराबर निमकहराम दूसरा कौन है?"

भक्त ने कहा "सेठ साहब! तुम्हारा कहना सब सच है परंतु इस पर से तो सबसे अधिक निमकहराम आप ही जान पड़ते हो!"

सेठ ने जबाब दिया "तुम्हारे मगज में गरमी चढ़ गयी दीखती है। यह

तो बताओ कि मैं निमकहराम कैसे हूं?"

भक्त ने कहा "गवर्नर और गवर्नरों के राजा के भी राजा जिसके चरणों में हजारों बार शिर झुकाते हैं, जिसकी आज्ञा से सूरज चमक रहा है, जिसकी आज्ञा से समुद्र सदा चढ़ता उतरता रहता है, जिसकी आज्ञा से तारे फिरा करते हैं, जिसकी आज्ञा से मेह बरसा करता है, जिसकी आज्ञा से वृक्ष फल देते हैं, जिसकी आज्ञा से तुम, सारी दुनियां और अनंत ब्रह्मांड उत्पन्न हुए हैं, उस सर्वशक्तिमान् प्रभु की ओर तुम बेपतुवाही दिखाते हो इससे तुम सब नमकहरामों से भी बढ़कर नमकहराम हो! क्योंकि और नमकहराम तो दुनियां के साथ नमकहरामी करते हैं परंतु तुम तो खास परमेश्वर के साथ नमकहरामी करते हो! अब तुम विचार करो कि एक हाकिम के आने के लिये जब इतनी धामधूप करनी पड़ती है तब अनंत ब्रह्मांड़ के नायक परमेश्वर को हमारे हृदय में लाने के लिये क्या तैयारियां नहीं करनी चाहिये?"

भाइयो! भक्ति के बाहरी चिह्न हैं सो प्रभु की ओर वफादारी के निशान हैं और प्रभु को अंतःकरण में लाने की तैयारियां हैं। इसलिये जो पूर्ण प्रेम से सर्वशक्तिमान् परमेश्वर को अंतःकरण में लाना हो तो आरंभ में भक्ति के बाहरी चिह्नों की भी कितनेक अंश में आवश्यकता है।

*****

२९७ भक्ति के दो अंग, प्रभु की ओर का कर्तव्य और दूसरा दुनियां की ओर का कर्तव्य

ईश्वर ने भक्ति के दो अंग कहे हैं (१) प्रभु की ओर का कर्तव्य और (२) दुनियां की ओर का कर्तव्य। प्रभु की ओर का कर्तव्य पूरा करने में हमारे देश के भक्त बहुत ध्यान देते हैं परन्तु दुनियां की ओर का कर्तव्य पूरा करने में वे बिलकुल भी ध्यान नहीं देते। इससे उनकी भक्ति एक अंग की ओर अधूरी होती है। हमारे देश के लोगों की झोंक निवृत्ति की ओर होती है इससे प्रभु की ओर का कर्तव्य पूरा करना सुगम जान पड़ता है, क्योंकि उसमें अपने स्वार्थ का अहंकार का भोग थोड़ा देना पड़ता है, परंतु दुनियां की ओर का कर्तव्य पूरा करने में अर्थात् भले काम करने में और लोगों के साथ भलाई रखने में बड़ा परिश्रम होता है इसलिये यह अंग तो आजकल हम लोगों ने छोड़ सा दिया है।

प्रभु की ओर का कर्तव्य पूरा करने वाले दुनियां की ओर का कर्तव्य

किस तरह पूरा नहीं करते सो हमने देखा है कि, बहुत से भक्त सारा दिन भगवत्सेवा ही में लगे रहते हैं परंतु अपने पास बड़ी संपत्ति होने पर कभी गरीबों को सहायता नहीं करते। ऐसा देखा है कि, जो हरिकथा कहने ही में अपना जीवन व्यतीत करने वाले हैं वे अपने पास बड़े २ मकान होते हुए भी गरीब मुसाफिरों को घड़ी भर ठहरनें नहीं देते। हम ऐसे बहुत से आदमियों को पहचानते हैं कि, जिन्होंने प्रभु के निमित्त अपने घरबार छोड़ दिये हैं, स्त्री पुत्र छोड़ दिये हैं, अनेक प्रकार के सुख छोड़ दिये हैं, और प्रभु के नाम का जप करने ही में अपना जन्म गँवाना निश्चय कर रखा है, परन्तु वे औरों की जरा सी भूल को भी क्षमा नहीं कर सकते और जरा सी बातों में क्रुद्ध हो जाते हैं। जो योगाभ्यास करने में अपना बहुत समय लगाते हैं उनको भी हमने देखा है कि, मनुष्य जाति के सहायक बनने में वे भी ढ़ीले ही होते हैं और जिनका बाहरी त्याग बहुत बढ़ा हुआ होता है वे भी दुनियां की ओर का कर्तव्य पूरा करने में बेपरवाह होने से अन्तःकरण में पक्षपाती रह जाते हैं। ऐसा होने का कारण यही है कि, हमारे भक्त प्रभु की ओर का कर्तव्य पालन करने का अंग सँभालते हैं परंतु दुनियां की ओर के कर्तव्य का अंग नहीं सँभालते। वे तो यही कहते हैं कि, संसार झूँठा है, संसार से हमको क्या काम है, जनसमाज की सेवा करने को वे लोग दुनियांदारी में पड़ा रहना समझते हैं, मनुष्यों के साथ भलाई करने को खुशामद समझते हैं और फक्कड़ बनके मनमाने वहां फिरने को वे भक्ति समझते हैं, तथा इस प्रकार की भक्ति करने के लिये अर्थात् अपने भाई बन्धुओं को धिक्कार की नजर से देखना सीखने के लिये वे गांजा और चरस की मदद लेते हैं। प्रभु दया कर! दया कर!! दया कर!!!

इस तरह भक्ति के एक अंग को ग्रहण करके दूसरे अंग को त्याग देने से मनुष्य अर्धांग वायु के रोगी की तरह हो जाता है और उसकी गाड़ी एक पहिये वाली तथा उसका विमान एक पंखवाला हो जाता है। इससे वह उस ठौर का उसी ठौर पड़ा रह जाता है और जितना वह परिश्रम करता है उतना फल नहीं पा सकता। हमारे धर्म में जैसे एक अंगी भक्ति बन गयी है वैसे ही व्यवहार में भी समझो! मनुष्य बुद्धिबल में आगे बढ़ते जाते हैं परंतु स्त्री शिक्षा में तो शून्य ही हैं इससे हमारा संसार सुख अधूरा हो गया, क्योंकि जिस रोगी का आधा अंग खराब हो जाय वह सुख थोड़ा ही भोग सकता है? इसलिये हम संसार का सुधार नहीं कर सकते और यह

अर्धांग रोग लग जाने से ही आजकल हमारी भक्ति पूरा फल नहीं दे सकती। प्राचीन भक्तों की भक्ति में बड़े २ अद्‌भुत चमत्कार हो गये हैं इसका कारण यही है कि, उनकी भक्ति दोनों अंगों से पूर्ण थी। इसलिये जहां तक हम भक्ति के साथ परमार्थ को न जोड़े और संसार के साथ प्रेमभाव तथा भलाई से बर्त्ताव करना न सीखें तब तक याद रखो! कि हमारी भक्ति अधूरी है! अधूरी है!! इससे ऐसी अधूरी भक्ति में न रह जाने की सँभाल रखना।

*****

२९८ दोनों पंख बिना पक्षी उड़ नहीं सकता वैसे ही एक अंगी भक्ति से उद्धार नहीं होता

उत्सव के समय हम बारबार और दौड़ २ कर दर्शन करने जाते हैं, क्योंकि उस समय वहां कुछ देखने योग्य रचना होती है, फूल के हिंड़ोरे होते हैं, कांच के पलने होते हैं, कुंज की बहार होती है, रंग उड़ता होता है, महापूजा होती है, तथा हवन आदि की शोभा होती है। ये ही सब बातें देखना हमको अच्छा लगता है। इसके सिवाय वहां पर हमारे यार दोस्त आते हैं। उनसे भी मिलना हो जाता है। इसलिये हम ऐसे अवसर पर दौड़ २ कर दर्शनों को जाते हैं, परंतु हमारा कोई सगासंबंधी मर जाता है तब हम अपने रोने पीटने को रोक नहीं सकते। जैसे दर्शन करना प्रभु की ओर का कर्तव्य है वैसे ही मोह कम रखना और अधिक हर्ष शोच के अधीन न रहना दुनियां की ओर का कर्तव्य है। अब तुम देखो कि, पहले कर्तव्य को हम थोड़ा बहुत पूरा करते हैं परन्तु दूसरे कर्तव्य में तो बिलकुल ही पीछे पड़े हैं।

किसी २ समय हम कथा सुनने जाते हैं, क्योंकि वहां अच्छा २ सुनने को मिलता है और समय बड़े आनन्द में निकल जाता है। गोपियों की रासलीला, रुक्मिणी हरण, राम रावण का युद्ध, शिव और पार्वती का विवाह, द्रौपदी का चीरहरण, हरिश्चंद्र की कथा, पांड़वों का वनवास, सावित्र्युपाख्यान और शबरी के जूँठे बेर खाने की कथा हमको सुनना बहुत अच्छा लगता है। इतना ही नहीं परंतु श्रीकृष्ण की मधुर मुरली के नाद को और गोपी गीत को व्यासजी ऐसी सरस रीति से वर्णन करते हैं कि, उनके मुख की चटकमटक देखने और चटकीली वाणी सुनने ही के लिये वहां जाने का हमारा मन हो जाता है। इसी से हम जब तब कथा

सुनने जाया करते हैं परंतु किसी ने हमारा अपमान किया हो अथवा नुकसान किया हो तो उसको हम शुद्ध अंतःकरण से प्रभु के निमित्त क्षमा नहीं कर सकते। अब देखो कि, धर्म की कथा सुनना ईश्वरीय कर्तव्य है और दूसरों के अपराधों को क्षमा करना संसारी कर्तव्य है, परंतु इन दोनों कर्तव्यों को समान रूप पर हम पूरा नहीं करते इससे हमारी भक्ति अधूरी रह जाती है।

हवन, संध्या, गायत्री तथा माला फेरना हममें से कोई २ थोड़ा बहुत करता है, परंतु पड़ोसी के साथ हलकी बात में झगड़ा हो जाय तब अथवा नौकरों से या लड़कों से कोई सहज की भूल हो जाय तब वे अपने मन को वश में नहीं रख सकते। संध्या गायत्री और माला फेरना ईश्वरीय कर्तव्य है और मनुष्य मात्र की भूलों पर क्षमा की दृष्टि से देखना संसारी कर्तव्य है, पहला कर्तव्य पूरा करना तो किसी २ से बन सकता है परंतु दूसरा कर्तव्य पूरा करना अच्छे २ साधुओं से भी नहीं बनता। हमारी भक्ति इतनी एक अंगी हो गयी है।

रेल्वे, जहाज आदि की सुविधा से, मुसाफिरी के शौक से, देखा देखी से, पैसे की उल्लाई से और कुछ २ भीतर की रुचि से हम तीर्थयात्रा कर सकते हैं परंतु समधिनों के टेढ़े बोलने की ओर बिना कारण दूसरों की निंदा करने की आदत हम छोड़ नहीं सकते। जब तक ऐसा है तब तक हमारी भक्ति फलीभूत कैसे हो सकती है? यात्रा करना ईश्वरीय कर्तव्य है और किसी का द्वेष न करना संसारी कर्तव्य है। ईश्वरीय कर्तव्य पूरा करने में हम कुछ २ उमंग दिखाते हैं परंतु संसारी कर्तव्य में तो बिलकुल शून्य ही है। जरा विचार तो करो कि इस तरह एक पंख से हमारा आत्मारूपी पक्षी मोक्षमार्ग में कैसे उड़ सकेगा? प्राचीन भक्त इन बातों को अच्छी तरह समझते थे इसी से उनकी भक्ति फलीभूत हुई थी और वे प्रभु के कृपा पात्र बने थे। इसके लिये महान् भक्त तुकाराम का चरित्र जानने योग्य है।

तुकाराम एक बार पंढ़रपुर बिठोबा की यात्रा करने जाते थे। मार्ग में एक खेत आया उसमें पक्षी चुग रहे थे। ज्यों ही तुकाराम उधर से निकले कि पक्षी उड़ गये। हम जानते हैं कि पक्षी डरपोक होते हैं और मनुष्य के पास आने से डरकर उड़ जाया करते हैं इसमें कोई नई बात नहीं है। परंतु तुकाराम को उनका उड़ जाना एक नई बात मालूम हुई। उन्होंने मन में

विचार किया "अभी मुझ में पाप शेष रह गये हैं। अभी मेरी भक्ति अधूरी है। अभी मुझमें समदृष्टि नहीं आई। जो मुझमें समदृष्टि आ गई हो पक्षी मुझसे डरते क्यों? जब पक्षी ही मेरा विश्वास नहीं करते तब परमेश्वर मेरा विश्वास कैसे करेगा? इससे अब तो इन पक्षियों का विश्वास संपादन करके ही यहां से चलना चाहिये।"

बस! तुकाराम उसी ठौर पर विठ्ठल! विठ्ठल!! करते खड़े हो गये। तीन दिन और तीन रात बिना अन्न और बिना जल के उसी जगह विठ्ठल! विठ्ठल! करते निकल गये। चौथे दिन आप ही आप पक्षी आये और जैसे निर्भय होकर वृक्षपर बैठते हैं वैसे ही निर्भय होकर तुकाराम के शिर पर कंधों पर और हाथों पर सुखपूर्वक बैठ गये। तब तुकाराम ने अन्न जल लिया और अपनी यात्रा प्रारंभ की।

जब तब संसारी कर्तव्य पूरा करने में इतनी दृढ़ता न हो अपने से किसी भी प्राणी को हानि न पहुँचने देने का पक्का ठहराव न कर लिया जाय। और अंतःकरण में इतनी भलाई न हो तब तक भक्ति अधूरी ही है और ऐसी अधूरी भक्ति से बेड़ा पार नहीं हो सकता। इसलिये ईश्वर के निमित्त औरों के दोष न देखने की आदत डालो! परस्पर क्षमा करना सीखो! और परस्पर सहायता करने का ठहराव करो! तो दयालु प्रभु तुम्हारी भक्ति को स्वीकार करेगा।

*****

२९९ हमारी सामग्री प्रभु कब स्वीकार करेगा?

राग बिहागरा

तजी मसूर की दाल, कथा सुनि, तजी मूसर की दाल। काम न बिसरचो, क्रोध न बिसरचो, न मोहजंजाल ॥ कथा० ॥१॥ अभ्यागत कोउ आंगन आवै, ताहि बतावत काल। घर में आय बड़ाई करता हैं, कैसे दियो है निकाल ॥ कथा० ॥२॥ लकड़ी धोय के चौके धरत हैं, काढ़े तिलक विशाल । सूर कहैं ऐसे कपटिन को, कैसे मिलै गोपाल ॥ कथा० ॥३॥

एक भगवद्भक्ता स्त्री थी। वह अपने ठाकुर की सेवा में बहुत ध्यान देती थी और बड़ा लाड़ लड़ाती थी। वह ठाकुरजी के लिये नित्य नये आभूषण, नये वस्त्र, और नयी सामग्री बनाकर अर्पण करती थी। ठाकुरजी के लिये उसके यहां इतना ठाठ बाठ था और ठाकुरजी पर

उसको इतना प्रेम था कि, देख २ कर बहुत से आदमी आश्चर्य करते थे। यह तो सब कुछ था परंतु वह स्वभाव की बड़ी ही अभिमानी और पाजी थी, वह बात २ में लड़ पड़ती और हलकी २ बातों में भी अपना जी जलाया करती थी ठाकुरजी की माला बनाते २ भी वैरी से लड़ने के मनसूबे उसके मन में बाँधा ही करते थे। ठाकुरजी का श्रृंगार करते २ भी वह आदमियों को धमकाती रहती थी, आरती करते २ भी औरों की ओर मुँह बिगाड़ा करती थी और भोग लगाते २ भी औरों से लड़ने को विषय ढूँढ़ा करती थी।

ऐसा होने का कारण यह था कि कुटुंब की रीति के अनुसार बचपन से ही उसमें प्रभु प्रेम के संस्कार जम गये थे इससे वह ठाकुरजी संबंधी कर्तव्य पूरा करती थी, परंतु संसारी कर्तव्य में वह बिलकुल भी नहीं समझती थी क्योंकि धनवानपने का अभिमान उसके मिजाज में भर गया था। इतना ही नहीं परंतु छोटेपन से ही धनवान् होने के कारण हुक्म चलाने की आदत में अपना विचारा हुआ काम करने की इच्छा में और दूसरों की परवाह न करने की रीति रिजाव में वह इतनी बड़ी हुई थी। इससे प्रभु पर का प्रेम दृढ़ होने पर भी संसारी कर्तव्य में वह बहुत पीछे रह गयी थी।

एकबार उसके यहां कोई वैष्णव आ निकला। उसने उसकी सारी चाल, ढ़ाल, रीति रिवाज और स्वभाव आदि देखकर मन में विचार किया कि, 'स्त्री का प्रभुपर तो प्रेमपूर्ण है परंतु संसारी बातों का ज्ञान बिलकुल ही नहीं है। यों ही रहा तो इसकी भक्ति निष्फल जायेगी, इससे इसको कुछ समझाना चाहिये।'

एक नयी युक्ति निकालकर उसने उस बाई से कहा "आज तो तुम्हारे ठाकुरजी मेरे स्वप्न में आये थे।"

बाई ने चौंककर कहा "हें! मेरे ठाकुरजी और तुम्हारे स्वप्न में? मेरे स्वप्न में तो वे कभी आते ही नहीं! तुम्हारे धन्य भाग्य हैं! कहो तो वे क्या कह गये?"

वैष्णव ने कहा 'ठाकुरजी ने यह कहा कि, 'मैं बहुत दिन का भूखा हूं इससे तू मुझे अपने घर ले चल!' तब मैंने उत्तर दिया 'कृपा नाथ! आप भूखे हैं! यह क्या बात? यहां आपके लिये नित्य नयी २ सामग्री बनती है, नित्य छः छः भोग लगते हैं और फिर भी आप भूखे कैसे?' ठाकुरजी ने

आज्ञा की 'इस घर में नित्य कुटुंब क्लेश होता है इससे मैं प्रसाद नहीं आगोरता। उस बाई के हाथ का प्रसाद मैं अंगीकार नहीं करता, कारण वह मेरे बालकों से लड़कर तब मुझे भोग लगाने आती है। परंतु मैं ऐसा भोला नहीं हूं जो इस तरह पर छलने में आ जाऊँ।' तब मैंने कहा 'प्रभुनाथ! लड़ने की तो उस बाई की आदत है परंतु आप पर उसका प्रेम कम नहीं है?' ठाकुरजी ने आज्ञा की 'वह प्रेम किस कामका? ऐसा प्रेम तो फूटे बर्तन में पानी भरने समान है। ऊपर से पानी डालते जाओ और नीचे से निकलता जाय! ऐसा प्रेम किस कामका? जो मुझपर उसका सच्चा प्रेम हो तो मेरे लिये उसको दूसरों का भला करना चाहिये और दूसरों को क्षमा करना चाहिय। तू कहता है कि उसका लड़ने का स्वभाव हैं, परंतु ऐसे स्वभाव से क्या कोई स्वर्ग में गया है? और क्या कोई ईश्वर का प्यारा हुआ है? जब स्वभाव के अधीन होकर भक्त ही पड़े रहें तब उनकी भक्ति किस कामकी? मैं बड़ा या स्वभाव बड़ा? वैष्णवों को मेरे लिये अपना स्वभाव बदलना चाहिये? वैसा का वैसा स्वभाव रखने से कोई भोक्ष धाम को नहीं पहुँच सकता! तू उस बाई से कहना कि, मैं तुम्हारी प्यारी लड़की को खिड़की में से नीचे डाल दूं और फिर मिठाई खाने को दूं तो तुम उसकी पसंद करोगे? और उस मिठाई से लड़की फेंकने का बदला भुगत जायेगा? मैंने कहा 'कृपानाथ! आपकी वाणी सत्य है! इसका बदला इस तरह नहीं भुगत सकता।' तब ठाकुरजी ने आज्ञा की 'दुनियां के सब मनुष्य हैं सो मेरे प्यारे बालक हैं, उनमें से किसी एक के साथ भी द्वेष करके उनके चित्त को दुःखित करके मेरे आगे प्रसाद धरो तो मैं कैसे स्वीकार कर सकता हूं? मेरे बालकों को जो दुःख देते हो उसे मैं तुम्हारे मक्खन मिश्री या छप्पन भोग के लिये थोड़ा ही भूल जाऊंगा? मुझको अपने बच्चे प्यारे हैं, खाना प्यारा नहीं है! सबेरे जल्दी उठकर उस बाई से कहना कि पहले मेरे बच्चों की सेवा करे और फिर मेरी सेवा करे! मैंने उत्तर दिया 'कृपा नाथ! अब से वह बाई आपकी आज्ञा के अनुसार करेगी परंतु आज तो आप कृपा करके भोग आरोगलो!' तब श्रीठाकुरजी ने कहा 'नहीं! वैसा नहीं हो सकता! मुझको बहुत भूख लगी है तब भी अभी मैं उसके हाथ का भोग ग्रहण नहीं कर सकता, मैंने कहा 'जो आपकी आज्ञा हो तो कल मैं भोग धराऊं?' तब ठाकुरजी ने कहा 'नहीं इस घर में तो मैं तेरे हाथ का भी ग्रहण नहीं कर

सकता, क्योंकि तू अति पवित्र है तब भी सामग्री तो उसी लड़ाकू बाई के घर की है! तेरे घर पर चलूं तब ही तेरे हाथ का भोग स्वीकार करूं!' मैंने प्रार्थना की 'कृपानाथ! आप मेरे घर पधारें तो मेरे अहोभाग्य! परंतु बाई आपको मेरे यहां पधारने कैसे देगी? तब ठाकुरजी ने आज्ञा की 'मैं उस बाई का बंदीमान थोड़ा ही हूं? जो मुझको रखना हो तो वह अपना स्वभाव सुधारे, नहीं तो मैं चला जाऊंगा इस तरह मैं भूखा प्यासा कब तक बैठा रहूंगा?' मैंने प्रार्थना की 'कृपानाथ आप तो दीनदयालु हो! हम पामर वैष्णवों पर इतना क्रोध नहीं चाहिये, हम पर तो आपकी कृपा ही चाहिये। कृपानाथ! अब उस बाई पर कुछ अनुग्रह कीजिये! वह आपके चरण में पड़ी है।' तब श्रीठाकुरजी ने आज्ञा की 'आज तू उस बाई से कहना कि जिस २ के साथ वह लड़ी है उस २ से क्षमा माँगे और उनको उचित बदला दे। वे लोग जब उसे क्षमा करे देंगे तब मैं उसके घर का और उसके हाथ का प्रसाद अंगीकार करूंगा दूसरे उससे यह भी कहना कि, तेरे लड़ाकूपन और खटपटी स्वभाव से तो तेरी खराबी कभी की हो गयी होती परंतु तेरे अंत:करण में प्रभु प्रेम है इसी से तू आज तक टिक सकी है। इसलिये अब जो तू नहीं चलेगी तो मैं तेरे हृदय में और घर में कदापि नहीं रहूंगा।' इतना कहकर श्रीठाकुरजी महाराज अंतर्धान हो गये और मेरी नींद खुल गयी।''

वैष्णव के स्वप्न की यह बात सुनकर वह बाई थोड़ी देर तक चुप होकर बैठी रही। फिर उसने ठाकुरजी के आगे बहुत सी प्रार्थनाएँ की और वह रो पड़ी। फिर उसको सच्चा पश्चात्ताप हुआ इससे प्रभु ने उसकी प्रार्थना सुनी और उसके हृदय में नया बल आ गया, उसी दिन से उसका जीवन ढ़ंग बदल गया। उसका स्वभाव एकदम बदल गया, समय पाकर उसने सबसे क्षमा माँगी और उसी समय से वह सबके साथ इस तरह का बर्त्ताव करने लगी जिसमें किसी का दिल न दुखे। इसके बाद थोड़े दिन में उसको स्वप्न आया कि ठाकुरजी उसके हाथ की सामग्री बड़ी खुशी के साथ आरोग रहे हैं।

*****

३०० संसार में भक्त बहुत थोड़े हैं और भक्ति न करने वाले बहुत हैं, इससे भक्ति बुरी नहीं कहला सकती

एक बदमाश आदमी ने कारणवश किसी मनुष्य को मार डाला। तब पुलिस ने उसको पकड़ा और अदालत में हाजिर किया। वहाँ पर मुकद्दमा चला। पुलिस ने चार गवाह पेश किये। गवाहों ने कहा कि, इससे जो खून किया है सो हमने आँखों से देखा है। साक्षियों पर से जज साहब ने उसे फाँसी की आज्ञा दी। तब उस अपराधी ने अपने बचाव में कहा "साहब! आप मुझको अनुचित सजा देते हैं, क्योंकि मुझे खून करते देखने के तो केवल चार ही गवाह हैं परंतु मुझे खून करते न देखने वाले हजारों आदमी हैं। अदालत में इस समय हजारों आदमी मौजूद हैं उनसे पूछ लिया जाय कि क्या किसी ने मुझे खून करते देखा हैं? साहब! इन हजारों आदमियों की बात को झूंठा मान केवल चार आदमियों की बात पर विश्वास कर आप मुझे फाँसी की आज्ञा देते हैं सो अनुचित है।"

जज साहब ने कहा "यह तेरी सब चालकी है। जिन लोगों ने तुझे खून करते देखा उन चार ही आदमियों का कहना बस है! तुझको खून करता न देखने वाले हजारों आदमियों की बात मैं नहीं मानता।"

इसी तरह भक्ति के विषय में भी समझना चाहिये। संसार में भक्त चाहे थोड़े हों परंतु वे अपने अनुभव की बात कहते हैं इससे उसे मानना चाहिये और भक्ति न करने वाले चाहे संसार में लाखों ही हों परंतु उनकी बात मानी नहीं जा सकती, क्योंकि जिसने देखा उसकी बात मानी जाती है। जिसने आप ही ने नहीं देखा उसका कहना कैसे माना जा सकता है? जिसने शास्त्रों में विश्वास नहीं किया, जिसने सत्संग का आनंद नहीं लूटा, जिसने प्रपंच करना छोड़ा नहीं है, जिसने हरिजनों की और संसार की सेवा नहीं की, जिसने अंतःकरण में संतोष नहीं प्राप्त किया, जिसने भक्ति का आनंद रस नहीं चाखा और जिसने प्रभु के नाम की लहरें नहीं लीं, उसकी बात कौन माने? जिन्होंने ऐसे उत्तम अनुभव नहीं किये वैसे अभागे जीव चाहे एक ओर हजारों ही हों और दूसरी ओर जिसने ऐसे अलौकिक लाभ लिये हों वैसा भाग्यशाली भक्त चाहे एक ही हो तब भी उस एक की बात सच्ची है और उसके प्रतिपक्षी हजारों की बात झूंठी है। क्या इसमें तुमको कुछ संदेह है? भाइयो! आज ही से ठहराव कर लो कि भक्त बहुत थोड़े हों और भक्ति न करने वाले मनुष्य चाहे बहुत हों तब भी

भक्ति बुरी नहीं कहला सकती, और भक्त का महत्त्व कम नहीं हो सकता, इसलिये जैसे बने वैसे भक्ति में लगे रहो! और भक्त बनने की इच्छा करो!

*****

३०१ बकरों के झुंड़ होते हैं, सिंह के झुंड़ नहीं होते वैसे ही संसार में ढ़ोंगी बहुत होते है परंतु भक्त बहुत नहीं होते

गाय के, भैंस के, बकरी के, ऊंट के, बैल के, घोड़े के, खच्चर के और गधे आदि के झुंड़ होते हैं, टोले होते हैं और घेर होती है, परंतु सिंह के झुंड़ कहीं देखने में नहीं आये। वैसे ही संसार में धर्म की निंदा करने वाली मंड़लियां होती हैं, भक्तों की बुराई करने वाली सभाएँ होती हैं, प्राचीन धर्मों को तोड़ने वाले समाज होते हैं, दूसरों को भ्रष्ट करने वाले दूसरों का जीवन बिगाड़ने वाले स्वार्थी भी होते हैं अपने ही शास्त्रों को झूंठा करने वाले परीश्ते भी होते हैं, अपने लिये भीख मँगवाने को चेले मूँड़ने वाले महात्मा भी होते हैं और अपने ही मंदिर में धर्म के नाम से गोलमाल करने वाले महापुरुष भी बहुत होते हैं, परंतु भक्तों झुंड़ नहीं होंते, क्योंकि भक्त होना कुछ सुगम नहीं है।

अपने स्वार्थ का त्याग करना कुछ हँसी खेल नहीं है, पवन बिजली से भी चंचल मन को जीतना कुछ दालभात का खाना नहीं है, संसार के भोग विलास और लोभ लालच को प्रभु के नाम पर छोड़ देना कुछ सीधी सी बात नहीं है, ईश्वर की अलौकिक माया को जीतना कुछ छोटा काम नहीं है, विश्वासरूपी अदृश्य रस्सीपर जीवन व्यतीत करना कुछ लपसी खाना नहीं है, और बिगड़ी हुई दुनियां के बीच में रहकर अंतिम श्वास तक स्वर्गीय खयाल और देवताई विचार रख के प्रभु के प्रेम में और प्रभु के आनंद में मग्न रहना कुछ ऐसी वैसी बात नहीं है; ये तो बहुत बड़े भाग्यशालियों के काम हैं, ये तो देवताओं को भी दुर्लभ हैं। भक्ति ऐसी कठिन है, ऐसी अलौकिक है, इसी से भक्तों का महत्त्व है और इसीलिये भक्तों के झुंड़ नहीं होते। इसलिये भाइयो! जो उत्तम में उत्तम रीति से पवित्र जीवन व्यतीत करना हो, उत्तम मनुष्य अवतार की सार्थकता करना हो और मोक्ष के सुख प्राप्त करने हों तो प्रभु के प्रिय भक्त बनो! भक्त बनो!!

*****

३०२ अपने घर में आग लग जाने पर एक छोटा बच्चा खुशी के मारे दूसरे छोकरों को सैर दिखाने के लिये बुला लाया वैसे ही हम भी अपनी जिंदगी को जलती देख खुश होते हैं

किसी मनुष्य के घर में आग लगी। आग बहुत बढ़ निकली तब तो घर का मालिक दूर बैठकर रोने लगा, उस समय उसका एक छोटा बच्चा दौड़कर मुहल्ले में पहुँचा और अपने बराबर २ वाले सब बच्चों को इकट्ठा करके बोला "चलो! चलो! मेरे घर चलो! वहां बड़ा मजा है!"

लड़कों ने पूछा "भाई बता तो सही क्या मजा है?"

उसने उत्तर दिया "हमारे घर में आज बहुत बड़ी आग लगी है। वह देखने योग्य है।"

यह सुनकर सब लड़के दौड़ते कूदते वहां जा पहुँचे और बड़े शौक से आग की ज्वाला और धुएं को देखने लगे। इससे खुश होकर वह लड़का तालियां बजा २ कर नाचने लगा, परंतु यह न समझा कि, यह मेरा ही घर जला है और यह सब हानि मेरी ही हो रही है।

इसी तरह माया के मोह में भोग विलास के रंग में प्रभु का नाम लिये बिना हमारी जिंदगी जली जाती है तब भी उस बालक अज्ञान छोकरे की तरह बहुमूल्य जीवन को व्यर्थ जाते देख, अरे! भस्सीभूत होते देख हम खुश होते हैं। इसी का नाम मोह है और ऐसा मोह हम जगत् को मिथ्या नहीं समझते इससे होता है। जैसे वह घर का मालिक अपने मूल्यवान् घर को जलता देखकर शोक करता और रोता था वैसे ही हमको भी अपने अमूल्य जीवन और उत्तम उत्साहों का नाश होता देखकर तथा प्रभु को भूल जाने के लिये शोक मनाना चाहिये और पश्चात्ताप करना चाहिये। इतना ही नहीं बरन् अब से ऐसा न होने देने के लिये माया को मिथ्या जान, जगत् को क्षणभंगुर समझ, जिंदगी को पानी का बुदबुदा मान, नाते रिश्ते वालों को धर्मशाला में इकट्ठे हुए मुसाफिर समझ और सुख दुःख को प्रारब्ध कर्म के भोग समझकर, हर्ष शोक न कर दीनता से प्रभु की शरण गह लेना चाहिये। हसके बिना कोई उपाय नहीं! इसके बिना कोई शांति नहीं! इसलिये भाइयो! प्रभु की शरण में जाओ!! प्रभु की शरण में जाओ!!!

*****

३०३ किसी भी मनुष्य को यह नहीं समझना चाहिये कि, मैं पापी नहीं हूँ

महात्मा, साधु और ऋषि मुनियों ने बार बार कहा है कि 'हम पापी हैं, हमारे कर्म पाप से भरे हैं और जब तक इस संसार में हैं तब तक पाप बनना संभव है।'

इसी से वे अपने प्रत्येक काम के समय प्रार्थना करते थे कि,

'सर्वपापहरो हरिः'

स्वयं भगवान् ने भी कहा है कि–

"सर्वारंभा हि दोषेण धूमेनाग्निरिवावृताः।"

अ० १८, श्लोक ४८

अर्थ–जैसे अग्नि के साथ धुआँ रहता ही है वैसे सब कर्मों में दोष लगा ही रहता है।

किसी को भी ऐसा न समझना चाहिये कि सृष्टि का क्रम ही ऐसा है तब मैं पापी क्यों कर हो सकता हूँ? मैं पापी नहीं हूं ऐसा समझ लेने से पाप से बचने की परवाह नहीं रहती जिससे किसी समय पाप में फँस जाने का भय रहता है और ऐसा मानना अभिमान की बात भी है, परन्तु जो ऐसा मानते हैं कि, सब ही कामों में पाप होने की संभावना रहती है वे पाप से बचने का यत्न करते रहते हैं और उनमें दीनता तथा प्रभुप्रेम आता जाता है। यह तो स्पष्ट ही है कि बेपरवाही करने की अपेक्षा यत्न करना लाखों गुणा अच्छा है। इससे जो अपने को पापी नहीं समझते, उनकी अपेक्षा जो परमेश्वर के नाम के सिवाय सब ही कामों में पाप की सम्भावना मानते हैं वे पाप से अधिक बच सकते हैं, क्योंकि वे सचेत हुए रहते हैं और अपने को पापरहित समझनेवाले बेपरवाह रहते हैं इससे वे पाप में अधिक पड़ सकते हैं इसके लिये एक जानने योग्य उदाहरण है।

दो राजाओं में लड़ाई हुई, उनमें से एक हार गया, तब उसने मरने का ढोंग किया, उसके आदमियों ने उस जीते हुए राजा के पास जाकर कहा "हम हार गये और हमारा राजा मर गया, इससे अब लड़ाई बंद करो! और हमारे मृतक राजा की लाश को कृपा करके अपने नगर में होकर श्मशान में ले जाने की आज्ञा दो।"

उसने इस बात के भेद को कुछ न समझा और नगर में होकर ले जाने

की आज्ञा दे दी। शव को लेकर जब लोग नगर में घुसे और ठीक राजमहल के पास पहुँचे तब वह ढोंगी राजा बैठा हो गया और बोला तब देखते क्या हो? लड़ाई शुरू करो!

लड़ाई शुरू हुई। उधर वह नया राजा तो था बेखबर और इधर इन्होंने चलाई लड़ाई। बस! वह हारा हुआ राजा फिर जीत गया।

भाइयो! यह लड़ाई आसुरी और दैवी संपत्ति की है। आसुरी सम्पत्ति जब हार जाती है तब उसका पापरूपी राजा मर जाने का ढोंग करता है परंतु वास्तव में वह मरता नहीं है। इससे समय पाकर फिर जी उठता है। इसलिये पाप की ओर बेपरवाही करनी नहीं तथा यह भी समझना नहीं कि हम तो बिल्कुल ही पाप से बचे हुए हैं, परन्तु ऐसा समझकर कि हम तो सदा पाप ही में पड़े हैं सदा दीनता से प्रार्थना करते रहो कि,

"सर्वपापहरो हरिः"

पद

मैं हरि पतित पावन सुने ।।टेक ।। मैं पतित तुम पतित पावन, दोऊ बानक बने ।। मैं हरि०।।१।। व्याध गणिका गज अजामिल, साख निगम ही भने। और पतित अनेक तारे, जात कापै गने ।। मैं हरि० ।।२।। जान नाम अजान लीने, जान यमपुर मने । दास तुलसी शरण आयो, राखिये अपने ।। मैं हरि० ।।३।।

*****

३०४ प्रभु में विश्वास रखोगे तो प्रभु दया किये बिना नहीं रहेगा

किसी मनुष्य के घर के पास एक पड़ोसी का एक कुत्ता था। वह रात को भोंका करता था। इससे उस मनुष्य को नींद नहीं आने पाती थी। दु:खित होकर उसके एक दिन उस कुत्ते को खूब मारने का विचार किया। सवेरा होते ही वह लकड़ी लेकर घर से निकला और ज्योंही वह कुत्ता उसकी नजर में आया उसके जोर से लकड़ी फेंकी परन्तु दैव कृपा से लकड़ी दूसरी जगह जा गिरी और कुत्ता बच गया। उस लकड़ी को मुँह में दबाकर वह कुत्ता उसी मारनेवाले मनुष्य के पास पहुँचा और लकड़ी उसके पैरों में रखकर नीचा शिर किये खड़ा हो गया। कुत्ते की यह योग्यता देखकर उस मारनेवाले को भी उस पर दया आ गई। उसके मन में विचार आया कि "जिस लकड़ी से मैं इस मारना चाहता हूँ उसी

लकड़ी को वह मेरे पैरों में लाकर रखता है? तब मैं उसे कैसे मारूँ? उसके भोंकने से मुझे रात को नींद नहीं आती इससे मैं इस पर नाराज हुआ था परन्तु इसकी इस योग्यता ने तो मेरा क्रोध शांत कर दिया।''

दया के मारे उसकी आंखों में पानी आ गया और वह मारने के बदले उलटा उसको प्यार करने लगा।

भाइयो! अधीनता में दीनता में इतना गुण है, इतना बल है और इतनी निर्भयता है सो वह जानता नहीं था। यह तो वह उस कुत्ते से ही सीखा! भाइयो! मनुष्य और कुत्ते के बीच में ही जब अधीनता का इतना प्रभाव होता है, राक्षसता बदलकर दैवी वृत्ति हो जाती है, तब प्रभु की ओर दीनता करने में कितना गुण होगा और कितना सुख होगा? सो तो विचारो!

कुत्ते के भोंकने से जैसे वह आदमी क्रुद्ध हुआ था वैसे ही हमारे लोभ से, हमारे निंदक स्वभाव से, हमारे दंभ से, हमारे अहंकार से और हमारे अयोग्य विषयभोग के पाप से प्रभु हम पर क्रुद्ध होता है और क्रुद्ध होकर जैसे उस आदमी ने उस कुत्ते पर मारने को लकड़ी फेंकी थी, वैसे ही प्रभु हम पर किसी तरह का दु:ख डालता है। लकड़ी फेंकने पर भी जैसे वह कुत्ता दीनता से उस आदमी के अधीन हो गया, वैसे ही जो दु:ख के समय भी हम दीनता से भगवदिच्छा के अधीन न हों तो प्रभु की हम पर दया कैसे हो सकती है? याद रखो कि अधीनता से ही दया संपादन हो सकती है। सामना करने से इनाम नहीं मिलता। इसलिये जो प्रभु की दया चाहते हो और प्रभु से मोक्षरूपी इनाम लेना हो तो जैसे बने वैसे शुद्ध अन्त:करण से प्रभु की आज्ञा पालो और जैसे प्रभु रखे वैसे आनन्द से रहो!

५५ पद । राग कलिंगड़ा

तो सम कोउ न दयानिधि दूजो, सब जग हेऱ्यो नहीं सूझो ।।टेक।। जगप्रतिपाला दीनदयाला २ जानिहु चरनन पूजो ।।१।। छुद्र विषयसुख लागि भ्रम्यो मैं सद्‌गुरुज्ञान न बूझो ।।२।। स्वारथलागि साधु संतापे २ धर्म अधर्म न सूझो ।।३।। रामजीवन कर जोरि पुकारै २ अब कृपाल मोपै हूजो ।।४।।

*****

३०५ पाप करना बहुत सुगम है, घर में बैठे बैठे तथा सोते सोते भी विचार करके पाप किये जा सकते हैं इसलिये पाप से बचने का बहुत ही यत्न करो !

पाप करना बहुत सुगम है इससे पाप से बचने की सबसे अधिक चिंता रखो! पाप करने के लिये कुछ कठिनाइयां नहीं उठानी पड़ती, पाप तो घर में बैठे बैठे भी, सोते सोते भी, धंधा रोजगार करते करते भी और बीमारी के बिस्तरे में पड़े पड़े भी हो सकते हैं। इसलिये भाइयो! पाप से बचने का यत्न करो क्योंकि पाप करना बहुत सुगम है परंतु पाप से बचना बहुत कठिन है। सोते सोते भी विषयभोग के विचार हो सकते हैं। काम धंधा करते करते भी दूसरे को कष्ट पहुँचाने का विचार हो सकता है, भोजन करके करते भी अदेखाई के खयाल आ जाते हैं, खेलते खेलते भी अभिमान आ सकता है, चलते फिरते भी दृष्टिपाप हो सकता है और मृत्यु की अंतिम घड़ी तक भी तृष्णा बढ़ सकती है। ये सब मानसिक पाप हैं? ऐसे मानसिक पापों से बचना ही उत्तमता है और उसी का नाम भक्ति है। इस पाप से बचने का उपाय यही है कि सदा शुभेच्छा रखना, शुभेक्षा ईश्वरीय ज्ञान की पहली सीढ़ी है। इसलिये बुरे विचार या दुष्ट संकल्प कभी न करना चाहिये, परंतु प्रतिक्षण ऐसी भावना रखना चाहिये कि–

सर्वत्र सुखिनः संतु सर्वे संतु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यंतु मा कश्चिद्दुःखमाप्नुयात् ।।"

अर्थ–सब जीव सुखी हों! किसी भी जीव को कोई दुःख न रहे। सबका कल्याण हो! और किसी भी जगह किसी प्रकार का दुःख न हो! प्राचीन आर्य ऋषियों की प्रातःकाल की पहली प्रार्थना यही थी, कि हे प्रभु! सर्व का कल्याण करो!' ऐसी भली इच्छा से ही पाप से बचना हो सकता है। इसलिये जो प्रभु के मार्ग पर चलना हो तो सदा शुभेच्छा रखो! शुभेच्छा रखो! !

*****

३०६ पापियों को परमेश्वर तुरंत दंड क्यों नहीं देता ? उनको किसी दिन अच्छा हो जाने की आशा से प्रभु उनको बचाता है।

ईश्वर सर्व शक्तिमान् है। वह चाहे तो एक पल में सब पापियों को मार

डाले। उसके पास बचाने के तथा नष्ट कर डालने के हजारों मार्ग हैं। अतिबरसात से, अकाल से, पृथ्वीकंप से, ज्वालामुखी पर्वत फटने से, समुद्र से, बिजली से, अग्नि से, पवन के तूफान से, हवा बिगड़ने से, प्लेग से, हैजे से और वैसे ही दूसरे अनेक कारणों से पल भर में वह हमको मार सकता है, परंतु प्रभु दयालु है इससे पापियों को भी उसी समय दंड देना नहीं चाहता। वह चाहता है कि पापी किसी दिन अच्छे हो जायँ। इसी भली इच्छा से वह उनको भी बचाता है। वह केवल बचाता ही नहीं है वरन् उनको सुधर जाने का अवकाश देता है। परंतु खेद है कि मनुष्य प्रभु की उस दया का उलटा उपयोग करके अपने पैर पर आप ही कुल्हाड़ी मारता है। अपनी रोटी में आप ही धूल डालता है और अपने बैठने की डार को आप ही काटता है। प्रभुकी इच्छा तो ऐसी ही है कि, जीव मेरे पास आवें और मुझ जैसे बनें, परंतु हम ऐसे अभागे हैं कि समर्थ प्रभु की दया को नहीं समझते, प्रभु के दिये हुए बहूमूल्य साधनों से कुछ लाभ नहीं उठाते वरन् उनका उलटा उपयोग करते हैं, परंतु याद रखना कि प्रभु के यहां पोपाबाई का राज नहीं है। इतने पापों के बीच में भी हम बच जाते हैं और भोगविलास करते हैं सो कुछ हमारे पराक्रम से नहीं, हमारे छल कपट से प्रभु को धोखा देकर नहीं, परंतु प्रभु की कृपा से ही बचते हैं। ऐसी ही आशा से ऐसी ही इच्छा से कि, किसी दिन भी हम अच्छे हो जायँगे परन्तु अंत तक भी हम अच्छे न हुए, पवित्र नहीं हुए तो फिर हमारे लिये नरक तो बना ही है उसके लिये किसी जोशी से पूछने की जरूरत नहीं है। जिसको जो चाहिये सो लो, चाहे दया और चाहे दंड।

*****

३०७ प्रभु की दया का मनुष्य उलटा उपयोग करता है

हम जानते हैं कि प्रभु काल का भी काल है। वह हमारा एक पल भर में नाश कर सकता है। केवल हमारा ही नहीं किंतु अनंत ब्रह्मांडो का एक पल में नाश कर डालने का उसमें अद्‌भुत पराक्रम है। परंतु हम केवल उसकी दया ही से बचे हुए हैं और तब भी हमारी मूर्खता तो देखो कि हम उसकी दया का कैसा उलटा उपयोग करते हैं? प्रभु जिनको धन देता है वे अभिमानी बनते हैं, जिनको रूप देता है वे व्यभिचारी बनते हैं, जिनको विद्या देता है वे वाचाल, बक्कू और विवाद करनेवाले होते हैं, जिनको बल देता है वे अत्याचर करते हैं, जिनको अधिकार देता है वे दूसरों को

दबाते हैं, जिनको बड़ा कुटुंब देता है वे आपस में लड़ते मरते हैं, जिनको जवानी देता है वे दीवाने बनते हैं और जिनको लंबी उमर देता है वे अधिक पाप करते हैं। इस तरह पर प्रभु की दी हुई कृपा का पापी लोग उलटा उपयोग करते हैं। जैसे बबूल का पेड़ ज्यों ज्यों बड़ा होता जाता है त्यों त्यों उसमें कांटे भी बढ़ते जाते हैं और ज्यों ज्यों उसकी डारी मोटी होती है त्यों त्यों कांटे भी मोटे होते जाते हैं, वैसे ही पापियों को ज्यों ज्यों अनुकूलता मिलती जाती है त्यों त्यों वे अधिक पाप करते जाते हैं परंतु यह नहीं समझते कि पाप कितनी बुरी वस्तु है और इससे कितनी खराबी होती है। हमारे शत्रु से लड़ने के लिये हमको जो कृपा करके बारूद और गोला दिया गया है उसी बारूद गोले को अफसोस है कि हम उसे देनेवाले ही के विरुद्ध काम में लाते हैं।

भाइयो! प्रभु के काम में आड़े आनेवाले काम, क्रोध, लोभ आदि शत्रुओं को जीतने के लिये प्रभु ने कृपा करके हमको विद्या, धन, बल, अधिकार, आयु आदि दिये हैं। ईश्वरी मार्ग में बाधक राक्षसों को जीतने के लिये यह बारूद गोला है परंतु हमारी नालायकी तो देखो! हमारी नमकहरामी तो देखो कि, जो राक्षसों को सामना करने के लिये, जो राक्षसों को जीतने के लिये, राक्षसों से लड़ने के लिये बारूद गोला हमको मिला है उन राक्षसों के ही साथ हम मिल जाते हैं और बारूद गोले का उपयोग प्रभु के साथ करते हैं। इससे बढ़कर नीचता और क्या होगी? प्रभु ने कृपा करके जो शक्ति दी है उस शक्ति का उपयोग प्रभु के ही विरुद्ध करना पाप कहलाता है। ऐसा न होने की सँभाल रखो!

*****

३०८ जिसमें इतनी नम्रता हो कि शिष्य के पैर धो लेवे वही गुरु होने के योग्य है

एक भक्त महात्मा थे। लोगों ने उनसे कहा कि आप हमारे गुरु बनिये, क्योंकि आप गुरु बनने के योग्य है और आप पर हमारी श्रद्धा है, तब उन महात्मा ने कहा कि गुरु बनने से पहले मुझे तुम लोगों पर प्रमाणित कर देना चाहिये कि मैं गुरु बनने के योग्य हूँ या नहीं। लोगों ने कहा "नहीं महाराज! हमको इस बात की जरूरत नहीं है हमको आपने वचन का ही विश्वास है।"

महात्मा ने कहा "नहीं भाइयो! ऐसा नहीं हो सकता, बिना पूरा

विश्वास किये किसी को गुरु नहीं बनाना चाहिये।"

लोगों ने कहा "तो आप इस बात को किस तरह प्रमाणित करना चाहते हैं?"

महात्मा ने कहा "मुझे पहले तुम्हारे पैर धोने दो! जो मैं तुम्हारे पैर धो सकूं तो तुम मुझको गुरु बनाने योग्य समझना।"

लोगों ने कहा "महाराज! ऐसी उलटी बात कैसे बने? हम शिष्यों को आपके पैर धोने चाहिये न कि आपको हमारे पैर धोना चाहिये।"

तब महात्मा ने कहा "भाइयो! जिसमें इतनी दीनता हो कि, जो शिष्यों के पैर धो सके, वह गुरु होने के योग्य है, जो अपने वैभव के अभिमान में जो अपने ज्ञान के अभिमान में, जो अपनी भक्ति के अभिमान में, जो अपनी पवित्रता के आडंबर में और जो अपने कुल के अभिमान में रहते हों वे गुरु होने के योग्य नहीं है। जिसमें शुद्ध अंतःकरण से सच्ची दीनता हो और चेलों को अपने बराबर बनाने की शक्ति हो वही गुरु बनने के योग्य है। शिष्यों को मार्ग बताने के लिये ही गुरु नहीं होता परन्तु शिष्यों का बोझा उठाने में सहायता देने को गुरु है। केवल मोहनभोग और खीर खाने को तथा हुकूमत चलाने के ही लिये गुरु नहीं है। सब गुरु लोगों को यह बात अच्छी तरह समझ रखनी चाहिये।

*****

३०९ औरों का भला करने में अपना भी भला हो जाता है इसके लिये जाड़े में दुःखित दो मनुष्यों का उदाहरण

हिमालय जैसे ठंडे देश में एक मनुष्य ठंड से दुःखित होकर मार्ग में गिर गया। उसी मार्ग से एक दूसरा मनुष्य निकला। उससे उसने कहा "भाई! दया करके मेरे पैरों को जरा सा रगड़ दो तो मुझको गरमी आ जावे। मैं ठंड से बड़ा दुःखित हूं।"

उसने उत्तर दिया "भाई! मेरी भी अंगुली ठंड से कड़ी पड़ रही है मैं तेरे पैर कैसे मल सकता हूं?"

उसने बड़ी नम्रता से कहा "भाई! देख तो सही! इसमें मजा है। तुझको भी फायदा होगा।"

जैसे तैसे धीरे धीरे वह उसके पैर घिसने लगा, ज्यों ज्यों वह पैर घिसता गया त्यों त्यों उसके पैर में तथा खास उसकी घिसनेवाले के हाथ में गरमी आती गयी और अंत में दोनों की ठंड मिट गयी, जिससे दोनों ही

चल दिये और दोनों ही आपस में मित्र बन गये!

चलते २ मार्ग में उस पैर घिसने वाले ने पूछा "मैंने तुम्हारे पैर मले उसमें मेरी ठंढ़ कैसे मिट गयी?"

दूसरे ने जबाब दिया "यही तो ईश्वर की खूबी है कि, दूसरे का भला करने में अपना भी भला हो जाता है, परंतु मनुष्य इस बात को ठीक २ समझते नहीं, इसी से परमार्थ करने में पीछे रह जाते हैं। बुद्धिमान् मनुष्य तो यही समझते हैं कि, परमार्थ है सो ही स्वार्थ है। स्वार्थ में परमार्थ बहुत थोड़ा है परंतु परमार्थ में स्वार्थ बहुत है। इसलिये और कुछ नहीं तो अपने स्वार्थ ही के लिये भी परमार्थ तो करना ही चाहिये।

*****

३१० ईश्वर कहता है कि, सारा संसार ही तुम्हारे लिये है, केवल एक पाप को छोड़कर और चाहे कुछ करो!

हम मानते हैं कि, धर्म पालना तो बहुत ही कठिन विषय है। भक्ति करना उससे भी कठिन है, और नीति रखना तो लाखों आदमियों में एक ही आधे से बनता होगा। सब आदमी यही कहते हैं, बहुत से धर्म गुरु भी ऐसा ही कहते हैं और हमारा मन भी इसे स्वीकार कर लेता है, परंतु परमेश्वर कहता है कि, यह तुम्हारी भूल है। केवल एक पाप को छोड़कर और किसी भी काम को करने को मैं तुम्हें रोकता नहीं, तुम किसी की जान बारात में जाओ तो मैं रोकता नहीं, तुम नयी २ जाति का अच्छा २ खाना खाओ तो मैं रोकता नहीं, तुम नित्यप्रति खीर पूरी और आम का रस उड़ाओ, नित्य मोहनभोग और मोहनथाल खाओ, नित्यप्रति गरम गरम जलेबी चखो, नित्यप्रति मसालेदार गरम दूध पियो, नित्यप्रति पकोड़ी और सेव पकाओ, नित्यप्रति चटकीली मसालेदार चटनियां बनाओ, और नित्यप्रति नये २ शरबत बनाकर पिओ तो मैं नहीं रोकता। सुन्दर कपड़े पहनो वह भी मुझे पसंद है। बहुमूल्य जेवर वाजबी रीति से पहनो तो वह भी मुझे पसंद है। तुम्हारे इतर फूलेल से भी मैं चिढ़ता नहीं हूं। तुम्हारा छाता, रूमाल और चश्मा भी मुझे बुरा नहीं लगता। तुम्हारे बड़े खट छप्पर और जालीदार परदे भी भले ही से रहें। सुन्दर खुदाई के काम वाले कोच और नयी २ किस्म की आराम कुरसियां भी खुशी से रखो। तुम सभाओं में खड़े होकर व्याख्यानबाजी करो और मंड़लियों में मान पाओ उसमें भी मुझे कुछ अड़चन नहीं है। तुम विवाह करो और खूब

संसार सुखभोगो तो मैं देखकर प्रसन्न होता हूं तुमको अपने बच्चों पर प्रेम करते देखने से मुझे तुम पर प्रेम आता है। तुमको निर्दोष खेल खेलते और हँसते बोलते देखकर मैं सन्तुष्ट होता हूं। तुमको अच्छी तरह धंधा रोजगार चलाते देखकर मुझे आनन्द होता है, क्योंकि मेरे उद्देश्य में तुम सहायक होते हो। तुमको "क ख ग घ ङ" पढ़ते देखकर भी मुझे हर्ष होता है इस आशा से कि, तुम किसी दिन संसार में उपयोगी बनोगे और किसी दिन मुझे पहचानोगे। तुम्हारे ऊँचे २ महल चाहे रहें मैं उनसे अप्रसन्न नहीं होता। तुम्हारे फूलों के गमले और सुन्दर २ बाड़ियें आबाद रहें मैं उनसे खुश हूं। अपने हौज और फुँआरे अपने प्रिय तोते, काकातुए, बन्दर, पानीदार घोड़े, नमकहलाल कुत्ते और दूसरे प्राणी जिनको देखकर तुम प्रसन्न हो और मेरी महिमा को जानो, खुशी से रखो। तुम्हारे फोनोग्राफ और बाईसिकल से भी मैं कुछ भ्रष्ट नहीं होता, तुम गरमागरम चाय और काफी भले ही पिओ, मैं इससे तुमपर गरम नहीं होता। तुम्हारे भबकेदार फोटोग्राफ, हीरे की अँगूठियां, चमकती हुई कानकी बालियां, फेशनेबल लाकिट लटकती हुई जेब घड़ियों की चेन (जञ्जीर) और रबरटायर की दौड़ती हुई फिटनगाड़ियों से भी मैं नाराज नहीं होता। तुम्हारी उचित भोगविलास की सामग्री चाहे नित नयी बढ़ती जाय तो मुझे कुछ बुरी नहीं लगतीं। मुझे तो केवल एक पाप ही बुरा लगता है एक पाप को छोड़कर और चाहे जिस वस्तु का तुम उचित उपयोग करो। सारा संसार तुम्हारे ही लिये है, केवल शर्त एक यही ही है कि मुझको अपने साथ रखकर मुझे याद करके मुझे अपने हृदय में धारण करके तब तुम सब कुछ भोगो! सारा संसार और उसके वैभव तुम्हारे ही लिये हैं। तुमको एक पाप के सिवाय दूसरी किसी भी वस्तु से डरने की जरूरत नहीं है। इसलिये भाइयो! पाप को छोड़कर और चाहे सो करो! चाहे जैसे हो परंतु पाप को छोड़ो!

*****

३११ ऐसा अवसर बारबार नहीं मिलेगा इससे चेतो!

भाइयो! याद रखो कि, ऐसा उत्तम अवसर फिर फिरकर नहीं मिलेगा। ऐसी भगवत्कृपा बारबार नहीं मिलेगी। इस पुण्यभूमि में अर्थात् इस भरतखंड़ में तथा इस ईश्वर के कृपापात्र देश में बारबार जन्म नहीं मिलेगा। ऐसा हमारा पवित्र उत्तम आर्यधर्म फिर फिरकर नहीं मिलेगा।

यह जवानी सदा ठहरने की नहीं है। यह तो देखते २ चली जायगी। भक्ति करने के लिये ईश्वर के पवित्र मंदिर मिले हैं। हमारी भूलें समझाने वाले उत्तम उपदेशक मिले हैं। हमको प्रभुकृपा से आरोग्यता मिली है। चाहिये जितना समय मिलता है। आवश्यकता के योग्य ज्ञान भी मिला है। खर्च करने को कुछ पैसा भी मिला है। दान करने के लिये चाहिये जैसे पात्र भी मिलते हैं। और भक्ति करने के लिये अंत:करण से प्रेरणा भी होती है इतने पर भी हम कुछ करते नहीं सो क्या थोड़ी भूल की बात है? ऐसे २ उत्तम साधन और ऐसे उत्तम अवसर क्या फिर भी बारबार मिलेंगे! नहीं! इसलिये भक्तजन प्रेमपूर्वक गाते हैं।

राग बिहाग

भजनको परमान ऐसो भजनको परमान । नीच पावै ऊंच पदवी, जल तरे पाखान ।। ऐसो० ।।१।। चलत तारे चलत मंड़ल, चलत शशि अरु भान । दास ध्रुवको अविचल भक्ति, रामके दीवान ।। ऐसो० ।।२।। रावण के दशशीश छेदे, कर गहे सारंगपान । विभीषण को लंक दीनी, भक्त अपनो जान ।। ऐसे० ।।३।। निगम जाकी साख पूरै, सुनो संत सुजानादास तुलसी शरण आयो, राखिये भगवान ।। ऐसो० ।।४।।

*****

३१२ भाइयो डरो मत! भक्ति को प्रभु नंगी नहीं रखेगा! उसके साथ योग-क्षेम का ढ़क्कन अवश्य देगा!

हम मिठाई लेने हलवाई की दूकान पर जाते हैं तब जितनी चाहिये उतनी मिठाई माँगते हैं और उसकी कीमत देते हैं, परंतु उस मिठाई को बांधने के लिये कागज, पत्ता, दोना, डलिया आदि जिस वस्तु की आवश्यकता होती है उसकी कीमत हम नहीं पूछते और वह माँगते भी नहीं परंतु तब भी हलवाई मिठाई के साथ ही उसकी रक्षा करने का सारा सामान अपने आप दे देता है और कीमत उसकी मिठाई के साथ ही गिन लेता है। इसी तरह हमको परमेश्वर से केवल भक्ति ही माँगना चाहिये, भक्ति का रखने के साधन तो वह उसके साथ अपने आप ही दे देगा। उसे माँगने की कोई जरूरत नहीं है क्योंकि भक्तों का योगक्षेम करने को तो वह बँधा हुआ ही है। मिठाई वाला ही जब मिठाई खुली हुई नहीं देता, पंसारी जब दवा पुड़िया बांधे विना नहीं देता और विलायत से आने वाला कपड़ा भी जब बारदान बिना नहीं आता तब प्रभु भक्ति को नंगी

कैसे देगा? छदाम के अजवाइन की ही जब पुड़िया बांधी जाय और पुस्तकों पर भी जब पुट्ठा बांधा जाय तब तुम विचार तो करो कि प्रभु भक्ति को नंगी कैसे रखेगा? भक्ति को बनाये रखने के लिये भक्त की रक्षा करना तो भक्ति का बारदान है, इसे अलग माँगने की कोई जरूरत नहीं है। इसलिये भाइयो! प्रभु से निष्काम भक्ति माँगो तो सब अच्छी वस्तु अपने आप ही चली आवेंगी। हलकी २ वस्तुओं को मत मांगो!

*****

३१३ भक्ति का बदला मिलने में देर लगे तब समझलो कि ईश्वर हमारा अधिक कल्याण करने वाला है

हमारी भक्ति को बदला मिलने में जब देर हो तब समझलो कि हमारा कल्याण होने वाला है। हमारे यहां कोई भिखारी गीत गाता २ माँगने को आवे तब हमको उसका गाना पसंद आ जावे तो हम उसे भिक्षा देने में देर लगा देते हैं और उसका गाना सुना करते हैं। अंत में हम उसे खुश कर देते हैं। परंतु जो हमको उसका गाना अच्छा नहीं लगता तो हम कह देते हैं माफ करो अथवा पाई धेला चटपट उसकी ओर फेंक देते हैं। वैसे ही प्रभु को भी जो हमें अधिक नहीं देना होता तो जल्दी ही थोड़ा बहुत देकर टाल देता है, परंतु कुछ अधिक देने की उसकी इच्छा होती है तब हीं वह देने में देर लगाता है इसलिये बहुत प्रार्थना करने पर भी जब जरूरी वस्तु मिलने में देर लगे तब भक्तों को समझ लेना चाहिये कि, ईश्वर हमको कुछ अधिक देना चाहता है। इसलिये जो भक्ति का बदला मिलने में देर लगे तो हिम्मत हारकर भक्तिं को छोड़ नहीं देना चाहिये, परंतु ईश्वर की अधिक देने की इच्छा समझ उत्साहपूर्वक दृढ़ता से अधिक २ प्रार्थना और भक्ति करना और सर्वभाव से ईश्वरमय बनते जाना चाहिये तो ईश्वर हमको कदापि नहीं छोड़ देगा। याद रखना कि, भक्ति का बदला तुरंत ही मिल जाय तो थोड़े ही में निपट जाता है परंतु देर लगे तो अधिक मिलने की आशा होती है। इसलिये देर लगने पर न मिलने का संदेह करके निराश नहीं हो जाना चाहिये।

*****

३१४ बच्चों की तुतलाती वाणी जैसे माता पिता को अच्छी लगती है, वैसे ही प्रभु को हमारी प्रार्थनाएँ अच्छी लगती हैं इससे वह हमसे अधिक प्रार्थना कराना चाहता है

तुमको छोटे २ निर्दोष बालकों पर प्रीति है? तुमने तुम्हारे माता पिताओं का अपने प्यारे बच्चों पर का प्रेम देखा है? तुतलाते बालकों के नये शब्दों की आवाज माता पिता को कैसी अच्छी लगती है सो तुम जानते हो? उन्हीं शब्दों को बारबार कहलाकर माता पिता कितने आनंदित होते हैं सो तुम जानते हो? बच्चे के तुतलाते हुए और टूटे फूटे शब्दों की भी कीमत माता पिता के मन में कितनी बड़ी होती है सो तुम समझ सकते हो? और उस बालक का तुतला २ कर बोलना, पिता की आज्ञा की परवाह किये बिना स्वभाव से ही इधर खेलना और समय २ पर पिता के पास जाने के लिये उचकना और जल्दी २ हाथ फैलाकर पिता के पास जाने की इच्छा प्रगट करना और मंद २ हँसी के साथ कूदना क्या तुमने कभी देखा है? इस दृश्य से पिता को कैसा आनंद आता है और बारबार उसी आनंददायक दृश्य को देखने को पिता कैसी इच्छा रखता है सो तुम समझ सकते हो? जो इसको समझते हो तो तुम जान सकते हो कि, हमारे पवित्र समर्थ पिता के हम बालक हैं और हमारी प्रार्थनाएँ तुतलाकर बोलते हुए छोटे बच्चों के शब्द की तरह अपूर्ण और अस्पष्ट हैं, परंतु हमारे परम दयालु पिता को वह बहुत प्यारी लगती हैं इसी से वह बारबार वे ही शब्द हमारे मुख से कहलाना चाहता है। इसलिये हमको बारबार वही प्रार्थना करने में हार नहीं जाना चाहिये, क्योंकि हमारी प्रार्थनाएँ प्रभु को बहुत अच्छी लगती हैं इसी से वह उनको हमसे बारबार कहलाना चाहता है। इसलिये ऐसी प्रार्थनाएँ जितनी बार हमारे मुख से निकलें उतना ही अधिक हमारा अहोभाग्य है। भाइयो! सर्व शक्तिमान् प्रभु की प्रार्थना करने में कभी मत ऊबो! वह तो जितनी अधिक होगी उतना ही लाभ है!

*****

३१५ हमारी चतुराई का कैसा बुरा परिणाम होता है सो तुम जानते हो!

किसी प्रसिद्ध होशियार वकील के पास एक जरूरी मुकद्दमा आया।

उस मुकद्दमे की फीस दश हजार रुपये ठहरे। थोड़े समय में मुकद्दमा फैसला हो गया और वकील साहब को दश हजार रुपये मिल गये। दूसरे दिन मुकद्दमा जीतने वाला वकील के पास आया वकील उस समय अपनी स्त्री के पास बैठा था। उसे आता देखकर वकील बोला "तुम्हारा मुकद्दमा तों हो गया। कहो अब क्या काम है?"

उसने उत्तर दिया "आपके दश हजार रुपये देने आया हूं।" इतना कहकर उसने जेब में से एक दश हजार रुपये का नोट निकाला तब वकील बोला "साहब! मुझे तो फीस कल ही मिल गयी! क्या आपको खबर नहीं है?"

उसने कहा "दश हजार रुपये तो मैंने ही भेजे थे। मैं अच्छी तरह जानता हूं, परंतु वह तो आपकी फीस थी। इस समय मैं आपको इनाम देने आया हूं।"

बकील ने पूछा "इतनी इनाम क्यों?"

उसने कहा "साहब मेरा मुकद्दमा बिलकुल झूंठा था उसमें एक भी शब्द सच्चा नहीं था परंतु आपकी चतुराई से उनके साक्षी उड़ गये वकील दब गये और जज साहब के चित्तपर आपके भाषण का ऐसा असर पड़ा कि उन्होंने मुझे जिता दिया। आपकी होशियारी से मैं झूंठे मुकद्दमे को जीत गया इससे आपको इनाम देना जरूरी है।"

इतना कहकर उसने दश हजार रुपये का नोट वकील के हाथ में दिया। वकील साहब नोट लेकर मुसकुराये और अपनी स्त्री की ओर देखने लगे। उस भोली स्त्री ने कहा "कृपानाथ! आप अपनी होशियारी को बुरे काम में लाते हैं तब ही इतना कमाते हैं सो जरा विचार तो करो कि, जो उसको अच्छे काम में लगाओ तो कितना बड़ा लाभ उठा सको!"

भाइयो! उस वकील की तरह हम सब लोग भी अपनी होशियारी को बुरे ही काम में लाते हैं। हमारी युक्तियां, हमारे प्रपंच, हमारी दौड़धूप और हमारी चालाकियां खास करके बुरे कामों के लिये होती हैं और इसी से हम ईश्वर से विमुख होते हैं। भक्तराज तुलसी दासजी कहते हैं:–

दोहा–जैसी नीति हराम में, तैसी हरमें होय ।
चला जाय वैकुंठ में, पला न पकड़ै कोय ।।

भक्ति करने के लिये प्रभु के प्यारे बनेने के लिये केवल इतना ही करने का है कि, जो प्रवाह खारे समुद्र में जाता है उसी प्रवाह को सुंदर बाग में

मोड़ दो, जो वृत्ति झूँठ में लगी है उसे सत्य में लगाओ, व्यवहार में जैसी प्रीति है वैसी प्रभु में करो, इसी का नाम भक्ति है और इसी में मोक्ष है। सब चतुराई की एक चतुराई यही है।

हम जब झूँठ में ही इतना कर सकते हैं तब सच्चाई में कितना कर सकेंगे सो तो विचार करो! भाइयो! सत्य को पकड़ो! सत्य को पकड़ो! ! यही तरने का मार्ग है! प्रभु का नाम ही सत्य है। और तो सब क्षणभंगुर हैं! झूंठे को पकड़ने में बहुत मेहनत करने पर भी थोड़ा ही इनाम मिलता है परंतु सत्य को पकड़ने में तो अलौकिक वस्तु की प्राप्ति और परमार्थवृत्ति आदि उत्तम तत्त्वों की प्राप्ति होती है। इसलिये जो वृत्ति बुराई में लगी है उसको ईश्वर की ओर झुकाओ! यही सब तत्त्वों का तत्त्व है और यही सब धर्मों का धर्म है।

५६ पद

भज मन रामचरण दिनराती । काहे को भ्रमत फिरत हो निशदिन भजन करत अलसाती ।।१।। बिरथा जन्म गँवायो मूरख सोवत रह्यो दिनराती । रामसियाको नाम अमीरस सो काहे नहिं खाती ।।२।। संवत सोलहसौ इकतीसा जेठमास छठि स्वाती । तुलसिदास यह विनय करत हैं प्रथम अरजकी पाती ।।३।।

*****

३१६ वैद्य, शूर, जहाज चलानेवाले आदि लोगों की तरह गुरु लोगों को भी अपने काम की शिक्षा लेनी चाहिये

जो जहाज चलाना नहीं जानता वह कपतान बन जाय तो अवश्य जहाज को डुबा दे। जो वैद्य विद्या नहीं जानता वह वैद्य बन बैठे तो अवश्य रोगियों को यमपुरी की सैर करावे। जो रसोई बनाना नहीं जानता वह रसोइया बन जाय तो अवश्य रसोई की धुआं उड़ा दे। जिसको खाता रोजनामा नहीं आता वह मुनीम बन जाय तो अवश्य दूकान को रसातल में पहुँचा दे। जो लड़ाई का काम नहीं जानता वह लड़ाई में जाय तो अवश्य अपने ही हाथ पैर काटकर घर आवे। वैसे ही जिस गुरु का हृदय भक्ति में रँगा हुआ नहीं है, जिस गुरु का हृदय श्रद्धा में भीगा हुआ नहीं है और जिस गुरु की वाणी उपदेश के समय अमृत की धारा की तरह गंगा के प्रवाह की तरह स्वतंत्रता से नहीं चल सकती वह भी अपने शिष्यों को सच्चा लाभ नहीं पहुँचा सकता। इसलिये जैसे सब लोगों को अपने २ धंधे

रोजगार की शिक्षा लेनी पड़ती है वैसे ही गुरु लोगों को भी अपने धर्म का, जनस्वभाव का, देशकाल के रीति रिवाज का और आसपास के संयोगों का पूरा अभ्यास करना चाहिये। इस तरह की जमाने के अनुसार धर्म की शिक्षा लिये बिना वे अपने काम में सफलता नहीं पा सकते क्योंकि पोल चलाने का समय बदल गया है। यह बात सब ही गुरु लोगों को अच्छी तरह समझ रखना चाहिये। जो गुरु लोग इस तरह समझकर काम करेंगे तो वे अपने धर्म की, देश की और अपने आत्मा की उन्नति कर सकेंगे, और अपने शिष्यों का कल्याण कर सकेंगे, परंतु जो अपने पवित्र धंधे की शिक्षा नहीं लेंगे तो लोग उनको मानेंगे नहीं, इसमें कुछ नई बात नहीं है अपने धंधे की कीमत आप ही नहीं जानता हो तो दूसरे उसकी कदर कैसे करें? ऐसा न होने देने के लिये गुरु लोगों को जमाने के अनुकूल रीति से पवित्र धर्म की शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये और शिष्यों को गुरु लोगों के लिये इस बात की विशेष सुविधा कर देनी चाहिये।

५७ कवित्त

गुरु बिन ज्ञान नाहिं गुरु बिन ध्यान नाहिं, गुरु बिन आतमविचार ना लहत है। गुरु बिन प्रेम नाहिं गुरुविन प्रीति नाहिं, गुरुबिन शीलहू संतोष न गहत है ।। गुरु विन बास नाहिं बुद्धिको प्रकाश नाहिं, भ्रमहूको नाश नाहिं संशय रहत है। गुरु विन बाट नाहिं कौड़ी विन हाट नाहिं, सुन्दर प्रगट लोक वेद यों कहत है ।।१।।

*****

३१७ प्रभु की कृपा की कमी नहीं है वह तो सदा मदद देने को तैयार ही रहता है कमी केवल हमारे पुरुषार्थ की है

एक तीन चार वर्ष का छोटा लड़का था, वह नीचे खेल रहा था। और माता उसकी ऊपर काम करने में लगी थी। थोड़ी देर में जब लड़का माता के पास जाने की इच्छा करने लगा और रो रोकर 'मां!' 'मां!' करने लगा तब माता ने कहा "आती हूं।"

लड़के ने तब भी उतावली मचाई तो माता ने ऊपर से एक खिलौना डाल दिया और कहा "इससे खेल! मैं भी आती हूँ।"

इतने पर भी बच्चे ने न माना वह 'मां!' 'मां!' करके रोने लगा तब माता ने कहा 'बेटा! धीरा रहे! मैं अभी आती हूं।"

थोड़ी देर तक फिर भी माता न आई तब तो बच्चा जल्दी के मारे

सीढ़ी चढ़ने लगा वह दो ही तीन सीढ़ी चढ़ा होगा कि, माता को उसके गिर पड़ने का भय हुआ। वह अपना काम छोड़कर दौड़ी और बालक दो तीन सीढ़ी भी नहीं चढ़ने पाया होगा कि, वह आठदश सीढ़ी उतरकर उसके पास आ गयी और उसे गोद में ले छाती से दबा प्रेमपूर्वक चुंबन करने लगी।

उस बालक की तरह हम भी अपने पिता परमेश्वर के पास जाना चाहते हैं, परंतु जब तक केवल बातों ही से प्रभु को बुलाना चाहें तब तक वह पास थोड़ा ही आ सकता है? छोटा बालक जैसे अपनी शक्ति न होने पर भी सीढ़ी चढ़ने का श्रम करने लगा वैसे हमको भी अपने देशकाल और आसपास के संयोगों के अनुसार प्रभु को पाने के लिये यत्न करना चाहिये। जब तक हम वैसा न करें तब तक प्रभु नहीं मानता कि हम उसके बिना नहीं जी सकते, और जब तक ऐसा विश्वास न हो जाय तब तक प्रभु हमारे पास आ नहीं सकता, कारण माता जैसे अपने पुत्र को रोता हुआ देखना नहीं चाहती, वैसे ही प्रभु अपने बालकों को दुःखित देखना नहीं चाहता। वह तो हमसे पुरुषार्थ चाहता है और पुरुषार्थ से ही प्रसन्न होता है। हम प्रभु के लिये पुरुषार्थ करने लगें कि, उसी समय उसकी सहायता तैयार है। उसकी मदद में देर नहीं है, देर केवल हमारे पुरुषार्थ में ही है। इसलिये भाइयो! आलस्य छोड़कर प्रभु के मार्ग में आओ, प्रभु के मार्ग में आने के लिये तुमको तो केवल दो तीन सीढ़ी ही चढ़नी पड़ेगी। परंतु प्रभु ऐसा दयालु है और तुम पर उसकी इतनी कृपा है कि वह आप ही बहुत सी सीढ़ियां उतरकर तुमको लेने के लिये सामने आ जायेगा।

*****

३१८ भक्त हुए पीछे लोभ नहीं रखना

एक गरीब घर की लड़की का किसी साहूकार के पुत्र से विवाह हुआ साहूकार बहुत भला और उदार था और स्त्री को प्रसन्न रखने का यत्न करता रहता था। प्रतिमास, सेठ हाथ खर्च के लिये बहुत से रुपये दिया करता था परंतु वह सेठानी तो गरीब घर की थी और बचपन से ही हाथ रोककर खर्च करने की आदतवाली थी इससे अधिक खर्च नहीं करती थी। पिता के घर में वह दो चार रुपये में महीने भर में काम चलाती थी इससे यहां पर उसको पचास रुपये महीना खर्च करना भी अधिक जान पड़ता था।

एक दिन सेठ ने पूछा "खर्च के लिये रुपये पैसे क्यों नहीं मांगती? मैं तुझको दो सौ रुपये महीना हाथ खर्च के लिये देता हूँ उसमें पूरा पड़ जाता है? तू हाथ मत रोकना! महीने भर में पाँच सौ रुपये तक तू खर्च कर देना।"

स्त्री ने उत्तर दिया "मुझको तो पचास रुपये भी अधिक ही पड़ते हैं। आप मुझे दो सौ रुपये महीना देते हैं परंतु बाकी रुपये तो मेरे पास ही धरे हैं। इतना खर्चा मैं काहे में कर सकती हूं? अपने पिता के घर में तो मैं पांच रुपये महीने में काम चला लेती थी।"

सेठ ने कहा "तेरा पिता तो गरीब आदमी है इससे वहां पर पाँच रुपये महीने में काम चलाना ही ठीक था परंतु मेरे यहां वैसे काम नहीं चल सकता। मुझको प्रभु ने बहुत कुछ दिया है, इससे तुझे उसका लाभ उठाना चाहिये मेरी आबरू के योग्य तू खर्च न करे तो मुझे बुरा लगे। तेरे बाप के यहां तू जैसे रहती वैसे मेरे यहां रहना बन नहीं सकता क्योंकि वह तो गरीब आदमी ठहरा, और मैं बड़ा धनवान हूँ। मुझ जैसे सेठ के घर में आकर भी जो तू भिखारिन ही रही तो फिर तेरा सेठानीपन किस कामका? मेरे बड़प्पन के लिये खुला मन रखकर तुझको अब खूब खर्च करना चाहिये।"

पति के इस उपदेश पीछे वह धीरे २ अधिक २ दान धर्म करने लगी।

भाइयो! भक्त लोग अपना माल लुटा देते हैं उसका भेद अब तुमने जाना? भक्तों का विवाह ईश्वर के साथ हो जाता है इससे अपने माथे पर एक बड़ा धनी होने से बेफिकर होकर माल लुटा देते हैं, परंतु हम वैसा नहीं कर सकते। क्योंकि हम सच्चे भक्त नहीं हुए तब तक गरीब मनुष्य की उस लड़की के समान हैं अर्थात् थोड़े ही में काम निकाल लेते हैं, परंतु धर्म के मार्ग में जाकर भी जो उदारता न रखें और बड़ा मन न रखे तो उस स्त्री का सेठानीपन जैसे किसी कामका नहीं वैसे हमारी भक्ति भी किसी काम की नहीं। धनवान् से व्याह हो जाने पर भी जो पहले का गरीबी का स्वभाव बना रहे तो वह हलकापन कहलाता है और जैसे वह सेठ को नापसंद होता है वैसे ही भक्त हुए पीछे प्रभु के साथ लगन लगे पीछे भी जो मन संकुचित रहा और मुट्ठी बंद ही रही तो वह हमारी नालायकी है और प्रभु को बुरा लगने वाला है। इसलिये तुम्हारा जी नहीं

चलता हो और तुम थोड़े ही काम चला सकते हो तब भी अपने समर्थ पति की आबरू के निमित्त और उसके पवित्र प्रेम के निमित्त अपने भाईबंधुओं के साथ उदारता से बरताव करो!

*****

३१९ सच्चे भक्त कल की चिंता नहीं करते, और जो कल की चिंता करते हैं वे सच्चे भक्त नहीं हैं

एक गुरु और चेला दोनों किसी के यहां भोजन करने गये। भोजन के पीछे सेठ का आदमी मुट्ठीभर के सुपारी के टुकड़े लाया और उसने चेले के हाथ में दे दिया। चेले ने उनमें से एक दो टुकड़े तो खाये और बाकी को अपने ओढ़ने की चद्दर में बांध लिया।

जब वे वहां से चल दिये तो मार्ग में गुरु की नजर उस पुटरिया पर पड़ी तब गुरु ने पूछा "चेला! इस गांठ में क्या बँधा है?"

चेले ने कहा "महाराज! सुपारी के टुकड़े हैं।"

गुरु ने पूछा "क्यों बांध रखा है?"

चेले ने उत्तर दिया "कल के लिये।"

गुरु ने कहा "अरे! इतना अविश्वास! जिसने आज तूझको खीर पूड़ी दी वह क्या कल सुपारी भी नहीं देगा? जिसने तुझको इतने वर्ष तक जीता रखा सो क्या एक सुपारी का टुकड़ा भी नहीं देगा? और जो सुपारी न भी मिली तो भगवदिच्छा! उसकी और परवाह क्या? जब इतनी ही परवाह है तब साधु क्यों हुआ? बेटा! घर छोड़ते तुझे कठिन न लगा, माता पिता को छोड़ते तुझे दुःख न हुआ स्त्री को छोड़ते तुझको विचार न आया, जात जमात और मान मर्तबा छोड़ के तुझको चिंता न हुई, धन दौलत और भोग विलास छोड़ते तूने परवाह नहीं की और अब सुपारी के टुकड़े की इतनी परवाह करता है? ठंढ़ धूप और तीर्थ करने में थकावट से तू डरा नहीं, और भूख प्यास की परवाह न कर अपने आत्मा के कल्याण के लिये तू भक्त हुआ, इतने पर भी भगवद् आसरे का बल छोड़कर अभी तू सुपारी के टुकड़े गांठ में बांधता है? लज्जा! लज्जा!! ऐसा साधुपन तो लोगों को और अपने आपको ठगने ही के लिये हो सकता है। सच्चे भक्त तो कभी कल का फिकर नहीं कतरे! बेटा! तू देख तो सही कि, हिरनों के पास कहां खजाना होता है? मछलियों के लिये बीज बोने कौन जाता है? मेंढ़क कहां नौकरी करने जाते हैं! कबूतरों के भंड़ार कहाँ

भरे हैं? और सांप के खेत कहां हैं? उनके लिये मनुष्यों की सी कोई भी सुविधा न होने पर भी वे भूखे नहीं मरते तब यह तो विचार कर कि, मनुष्य क्यों भूखे मरेगा? मनुष्य उनसे कितने उत्तम हैं? कितने बुद्धिमान् हैं? कितने साधन वाले हैं? और ईश्वर के कितने कृपापात्र हैं? इसका तो विचार कर! ऐसे उत्तम मनुष्य और उनमें भी हरिभक्त भूखे कैसे मरेंगे? क्या इतना भी विश्वास नहीं है?''

गुरु का यह उपदेश सुनकर शिष्य ने सुपारी के टुकड़े फेंक दिये। और उनको बांध रखने की भूलपर पश्चात्ताप किया, सच्चे भक्त ऐसे निस्पृही होते हैं और ऐसा विश्वासी जीवन व्यतीत करने वाले होते हैं। ऐसे महाभक्तों का सन्मान करना सीखो! और ब्रह्मार्पण कर्म करके ऐसे निस्पृही बनना सीखो! तथा भगवद् आसरे का बल रखना सीखो!

इंद्रविजय छंद

जादिनते नर गर्भ तज्यो तू, आयके अहार कियो तबहीं को खातही खात भये इतने दिन, जानत नाहिं न भूखो कहीं को ।। दौरत धावत पेट दिखावत, तू शठ कोट सदा अन्नहीको । सुन्दर क्यों विश्वास न राखत, सो प्रभु विश्व भरै सबहीको ।।

*****

३२० सच्चे भक्त चाहे जैसी स्थिति में हों तब भी सदा आनंद में ही रहते हैं

प्राचीनकाल में किसी नगर का राजा मर गया। उसका कोई उत्तराधिकारी नहीं था इससे प्रधान लोगों ने इकट्ठे होकर ठहराव किया कि, एक भारी सभा करना और नगरभर में से जिस किसी मनुष्य के गंले में हथिनी फूलमाला डाल दे उसी को राज्य का अधिकारी बना देना। सब लोगों ने इस बात को स्वीकार किया। एक बड़े मैदान में नगर निवासियों की भारी सभा हुई और हथिनी को खूब सिंगार करके फूलमाला देकर छोड़ा गया। कई बार इधर उधर फिरने पर हथिनी ने एक संन्यासी पर माला डाली। तब तो सब लोगों ने संन्यासी से कहा ''महाराज! अब आप हमारे राजा हो गये। इन कौपीन और भगवा (गेरुए) वस्त्रों को उतारकर राजमुकुट धारण कीजिये और इस बांस के दंड़ के बदले में राजदंड़ हाथ में लीजिये।''

संन्यासी ने कहा ''बाबा! मुझे राज्य नहीं चाहिये मैं राज्य लेकर क्या

करूंगा? मैं तो मेरे वैराग्य से ही राजाओं का राजा हूँ। मुझे राजपाट की जरूरत नहीं है मैं ऐसी उपाधि में क्यों पड़ूँ?"

प्रधान लोगों ने कहा "महाराज! आपको राज्य की जरूरत नहीं है सो ठीक परंतु परमेश्वर ने आपको राज्य दिया है सो तो भोगना ही चाहिये। हथिनी ने आपके गले में फूलमाला डाली है सो खाली थोड़ी ही जा सकेगी? भाग्य देवी आप पर प्रसन्न हुई है। उसको आप कैसे लौटा सकेंगे? अब आपकी कुछ चल नहीं सकती। अब तो आपको भगवदिच्छा के अधीन होना ही पड़ेगा।"

संन्यासी ने बहुत ही कुछ नाहीं कही परंतु किसी ने न मानी और उसको राजा बना ही दिया।

इसके कितने ही वर्ष पीछे किसी दूसरे स्थान का राजा अकस्मात् चढ़ आया और उसने संन्यासी बाबा को गद्दी से उतार दिया, संन्यासी को इसमें कुछ भी दुःख न लगा, उसने अपने संन्यास समय के गेरुआ कपड़ों की गांठ बांध रखी थी उसे खोला और हरहर महादेव कहकर प्रसन्नातापूर्वक उनको पहना तथा सबसे 'नमो नारायण' कहकर ईश्वरीय लीला के चमत्कार पर हँसता २ जंगल को चल दिया, अपनी इच्छा को प्रभु की इच्छा में मिला देना और प्रभु की इच्छा के अधीन हो जाना ही संन्यास है। ऐसी वृत्ति रखकर पीछे जो प्रारब्धयोग से सुख या दुःख मिले उसे प्रभु को याद करते २ शांति से भोग लेना ही भक्त का लक्षण है, यही भक्त की खूबी है। यही भक्त का रहस्य है, और यही भक्त की उत्तमता है।

गीता में भगवान् ने कहा है:—

"अनाश्रितं कर्मफलं कार्यं कर्म करोति यः !
स संन्यासी च योगी च न निरग्निर्न चाक्रियः ।।"

अ० ६, श्लो, १,

अर्थ-कर्म से फल की इच्छा रखे बिना आवश्यक और करने योग्य कार्यों को जो करता है वही संन्यासी है और वही सच्चा योगी है केवल जिसने अग्नि को छोड़ दिया हो अथवा व्यवहार में कामकाज छोड़ दिये हों वह सच्चा संन्यासी या योगी नहीं है।

भाइयो! प्रभु की ऐसी स्पष्ट आज्ञा है इसलिये बाहरी ढ़ोंग धतूरे और टीमटाम ही में न पड़े रहकर संन्यासी और सच्चा योगी बनना हो तो शुद्ध अन्तःकरण से भगवदिच्छा के अधीन हो अर्थात् जैसे प्रभु रखे वैसे

आनन्द से रहो और संयोगवश जो कुछ अच्छा या बुरा आ मिले उसे प्रभु का स्मरण करते २ शांति से सहन करो!

कवित्त

धूल जैसो धन जाके शूलसो संसार सुख,
भूल जैसो भोग देखे अन्त जैसी यारी है ।
पाप जैसी प्रभुताई शाप जैसो सनमान,
बड़ाई बिच्छुन जैसी नागिन सी नारी है ।
अग्नि जैसो इंद्रलोक विघ्न जैसो विधिलोक,
कीरति कलंक जैसी सिद्धिसो ठगारी है ।
बासनाने कोई बाकी ऐसी मति सदा जाकी,
सुन्दर कहत ताहि बंदना हमारी है ।।

सवैया

कोउक निंदत कोउक बंदत, कोउक देतहि आइ जु भच्छन । कोउक आय लगावत चंदन, कोउक डारत धुरी ततच्छन ।। कोउ कहै यह मूरख दीसत, कोउ कहै यह आहि विचच्छन । सुंदर काहुसों राग न द्वेष न, ये सब जानहुं साधुके लच्छन ।।

*****

३२१ मन में हलकी इच्छाएँ रखकर समाधि चढ़ाओ तब भी कुछ फल नहीं होने का! इसलिये भाइयो! अपनी इच्छाएँ सुधारो! और शुभेच्छा रखना सीखो!

किसी राजा के दरबार में एक भांड आया। वह सब प्रकार के वेष बनाने में चतुर था। उसका तमाशा करना ऐसा बढ़कर था कि देखनेवाले ज्यों के त्यों रह जाते थे। राजा को रिझाने और उससे मतबल गांठने के लिये वह बड़े बड़े तमाशे और खेल करने लगा। कव्वा, मुरगा, बंदर आदि जानवरों की बोली वह बहुत अच्छी तरह बोलना जानता था। सभा में जब उसने कुत्ते की आवाज लगाई तो बाहर कुत्ते भोंकने लगे और कव्वे की बोली बोली तब सैंकड़ों कव्वे इकट्ठे हो गये। इसके बाद उसने बंदरों के चीखने की आवाज सुनाई, हबशी जैसे मोटे होंठकर दिखाये, बहुत तेज मिजाज फौजी अफरस का सा स्वभाव और सूरत कर दिखायी, कुभारजा (कुभार्या)के अत्याचार और चिडचिडे गुरुओं का फारस कर दिखाया और अंत में सब साधन होते हुए भी थोड़ी बेपरवाही से राजा लोग कैसे

अंधे हो जाते और कर्मचारी लोग कैसे लूट खाते हैं सो भी बहुत ही अच्छी तरह से कर दिखाया। भांड की होशियारी से राजा और उसकी सारी सभा बहुत ही खुश हो गयी और सब लोग शाबाश! शाबास! पुकारने लगे। इसके पीछे राजा ने भांड से पूछा "वह कौनसा वेष है जिसे तू नहीं कर सकता?"

भांड ने उत्तर दिया "महाराज! प्रभुकृपा से ऐसा कोई भी वेष नहीं है जिसे मैं न कर सकता होऊं।"

राजा ने पूछा "अच्छा तो मैं कहूँगा वही वेष तू करेगा?"

भांड ने कहा "महाराज! आप आज्ञा करें वही वेष मैं कर दिखाऊं, आपका कहा वेष न कर सका तो मैं भांड काहे का?"

यह सुनकर कर्मचारियों के लूट खसोट खानेवाले ऊपरी दृश्य से चिढ़े हुए लोगों में से एक कर्मचारी ने कहा "महाराज! भांड अपनी झूँठी प्रशंसा करता है ऐसा क्यों कर बन सकता है कि वह सब ही वेष बना सकता हो?"

भांड बोला "महाराज! यहां कुछ उधार खाता तो है नहीं! यहां तो नकद चुकाने का हिसाब है! आप आज्ञा करें वह वेष मैं न कर सकूं तो आज से ही भांडपना छोड़ दूँ।

कर्मचारी ने राजा से कहा "महाराज! इससे योगी को वेष कराइये तो अभी इसकी चतुराई मालूम हो जायगी।"

राजा ने भांड से आज्ञा की "योगी का वेष बना और समाधि चढ़ा तब ही तू सच्चा भांड है!"

भांड ने कहा "पृथ्वीनाथ! इसमें क्या बड़ी बात है! आप राजाओं से मनमाना इनाम पाने के लिये मैं यह भी सीखा हूं। समाधि लेना भी मुझसे छिपा नहीं है।"

इतना कहकर उसने योगी का वेष बनाना और सिद्धासन, पद्मासन, मयूरासन, कुक्कुटासन, दृढ़ासन, वीरासन आदि अनेक प्रकार के आसन, और कई प्रकार के प्राणायाम और अनेक मुद्राएं कर दिखायीं। इसके पीछे उसने एक घंटे तक समाधि चढ़ाई। समाधि देखकर राजा और दूसरे सब लोग बड़े ही आश्चर्य में पड़े और उसके प्रशंसा करते हुए उसी की ओर देखने लगे। ऐसे करते २ घंटाभर पूरा हो गया। सब लोग राह देखने लगे कि अब समाधि खुलेगी! अब समाधि खुलेगी! परंतु समाधि खुली नहीं।

एक घंटा पूरा होकर दूसरा भी पूरा हो गया परंतु समाधि खुली नहीं। फिर तो तीसरा और चौथा घंटा भी बीत गया परंतु समाधि न खुली इसी तरह रात पूरी हो गई, दिन पूरा हो गया, दो दिन हुए और तीन दिन हो गये परंतु समाधि न खुली तब तो सब लोग डर गये। वैद्यों ने कहा "महाराज! यह तो परम धाम को पहुँच गया। घंटेभर की समाधि में दो घंटे हो सकते हैं, तीन हो सकते हैं, और कदाचित् चार भी हो जायँ परंतु तीन दिन तो कदापि नहीं हो सकते। अब आप इसकी समाधि खुलने की आशा न रखिये! यहाँ तो लंबी समाधि लग गयी। अब इसको ठिकाने लगवाने की तजवीज कीजिये।"

राजा ने कहा "भांड़ बड़ी विचित्र शक्ति का आदमी था। वह समाधि लेने में मर गया इससे उसको जलाना नहीं चाहिये परंतु साधुओं की तरह उसे गाड़ना चाहिये, फिर उसका हम पर इनाम बाकी हैं। उस इनाम में उसकी समाधि के ऊपर चबूतरा बनवा देना चाहिये।"

सब लोगों ने राजा की सलाह को पसंद किया। अंत में नदी के किनारे पर एक मैदान में उसको गाडा गया और ऊपर से एक चबूतरा बनवा दिया गया।

उस बात को कई वर्ष हो गये। शनैः २ लोग उस बात को भूल गये दो सौ वर्ष के बाद नदी में ऐसी बाढ़ आयी कि पानी उस मैदान तक पहुँचा और वह चबूतरा गिरकर निशान तक मिट गया। समय पाकर वहां मट्टी जम गयी और उसमें खेती बारी होने लगी। आगे जाकर किसी समय वह जमीन खोदी गयी तो भीतर से चौक निकला। होते २ बात फैली कि अमुक मनुष्य के खेत में गड़ा हुआ चबूतरा निकला है लोग कहने लगे उसमें धन निकलेगा। सैकड़ों हजारों आदमी धन की लालच में वहां इकट्ठे हो गये। सरकारी पहरा भी आ गया बड़ी सँभाल के साथ चबूतरा खोदा गया तो उसमें से उस समाधि भांड़ का गड़ा हुआ शरीर निकला। उसे देख लोग बड़े आश्चर्य में पड़े। कोई कहता था 'यह तो मुरदा है।' कोई कहता था 'यह सतयुगी योगी है' कोई कहता था यह तो महात्मा है। इनके निकलने से हमारे देश का भला होगा।' कोई कहता था 'ऐसे महात्मा को समाधि में छेड़ने से हमपर आपत्ति आवेगी। किसी ने कहा 'यह तो साक्षात शंकर का अवतार है।' सब लोग इस तरह पर अपने २ मन के विचार प्रगट कर रहे थे। इतने ही में एक साधु आ पहुँचा। साधु को समाधि

चढ़ाने उतारने का कुछ अनुभव था। उसने कहा "यह तो कोई महात्मा योगी है, परंतु समाधि चढ़ गयी है सो पीछे उतरी नहीं है। मुझे समाधि उतारने की क्रिया याद है।"

इतना कहकर उस साधु ने उस समाधिष्ठ भांड़ की खास २ नसें दबाईं और शिरपर घी मलना आरम्भ किया थोड़ी देर में उसकी आंखें खुलीं। योगीराज शरीर मरोड़ते और आलस्य खाते उठ बैठे और भांड़ की तरह अपने दोनों हाथों से मानपूर्वक सलाम करके बोले "खमा महाराज! भूपसिंह बहादुर को खमा! कृपानाथ! आज तो भांड़ को ऐसा इनाम मिलना चाहिये जिसमें आपका संसार में नाम हो जाय!'

लोग यह सुनकर आश्चर्य में पड़ गये। कहने लगे "यह क्या? भांड़ क्या? इनाम क्या? भूपसिंह कौन? यह बात क्या है? यह कोई भूतप्रेत तो नहीं है?"

लोग इस तरह का विचार करते हैं इतने ही में उस समाधि छुड़ाने वाले साधु ने कहा "महात्माजी! आप कौन हैं? और आपकी इच्छा क्या है? हमने आपकी अधूरी समाधि जगा दी इसके लिये हम क्षमा चाहते हैं।"

उस योगी ने उत्तर दिया "मेरा नाम है कालू भांड़! महाराजा भूपसिंह कहां हैं? मुझे इनाम मिलेगा या नहीं?"

थोड़ी देर में कुछ होश में आने पर वह फिर बोला "यह क्या मैं कहां हूं? यह मैं क्या देख रहा हूं?"

थोड़ी देर पीछे जब वह बिलकुल होश में आ गया और बातें करने लगा तब मालूम हुआ कि ढ़ाई सौ बरस पहले उसने समाधि ली थी। इतने समय में तो वह नगर ही बदल गया। और राज्य भी बदल गया परंतु ढ़ाई सौ बरस समाधि में रहने पर भी वह भांड़ तो भांड़ ही बना रहा और उसकी इच्छा इनाम पाने ही में लगी रही।

ऐसा होने का कारण यह है कि, ईश्वर ने हमारे शरीर की बनावट ऐसी रखी है कि, हम उसको जिस स्थिति में रखना चाहें अभ्यास से उसी स्थिति में वह रह सकता है। मट्टी खाकर भी रहा जा सकता है, गोबर खाकर भी रहा जा सकता है, घास खाकर भी रहा जा सकता है, विष खाकर भी रहा जा सकता है। उपवास करके भी रहा जा सकता है और समाधि में भी रहा जा सकता है, परंतु इस तरह रहने से शुद्ध अन्त:करण

बिना और प्रभुप्रेम विना उद्धार थोड़ा ही हो सकता है? इसलिये भाइयो! याद रखो कि, अपने मन की मलिन भावनाओं को सुधारे बिना और प्रभु पर के सच्चे प्रेम बिना योग साधने और समाधि लेने से भी कुछ फल नहीं होने का! ईश्वर के सच्चे ज्ञान बिना प्रभुपर प्रेम किये बिना ढ़ाई सौ बरस तक समाधि में रहने पर भी कुछ फल न हुआ और भांड़ भांड़ ही बना रहा तब ईश्वर के प्रेम और विश्वास बिना भगवदावेश बिना हमारे स्वार्थ के कामों से मुक्ति कैसे मिल सकेगी सो तो विचारो! इसलिये भाइयो! बाहरी ढ़ोंग धतूरे में न पड़े रहकर अपनी इच्छाओं को सुधारो! और अपने अन्त:करण का प्रभुप्रेम बढ़ाओ! तो भली इच्छा से किये हुए कर्मों और प्रभुप्रेम से किये हुए कर्मों को भगवद् अर्पण करने से तुम थोड़ा करने पर भी बहुत कुछ पा सकोगे। इसलिये जैसे बने वैसे शुभेच्छा रखो! जैसे बने वैसे शुभेच्छा रखो! और प्रभुप्रेम को पकड़लो! प्रभुप्रेम को पकड़ लो!

*****

३२२ सच्चे संत के लक्षण

ता० ३० जून सन् १९०२ के दिन सायंकाल के ६ बजे बंबई में भूलेश्वर के पास स्वामीजी महाराज परमहंस परमानंदजी ने अपने दवाखाने में मेस्मेरिज्म का प्रयोग किया था। उस समय सबजेक्ट (विधेय) ने संत के लक्षणों के संबंध में अपनी खुशी से जो बातें कही थीं वे जानने योग्य हैं। इसलिये उसका सार इस प्रकरण में कहा गया है।१

पहले उसने ईश्वर की प्रार्थना करते २ कहा कि, "हे सच्चिदानंद! तेरी जय हो! तू सबको शांति दे! शरीर की मन की और अन्त:करण की सबको शांति हो! जैसे समुद्र पानी से भरा रहता है वैसे संसार शांति से भरा रहे! हे प्रभु! तेरे पास आने का मार्ग थोड़े ही मनुष्यों को मिलता

इस प्रकार की जानने योग्य बहुत बातें प्रतिदिन प्रयोग के समय होती हैं पिछले तीन बरस के बारह सौ प्रयोगों में से जरूरी २ विषयों को मैंने लिख रखा है। और मेस्मेरिज्म संबंधी मेरे खास अनुभव की भी बहुत सी बातें जानने योग्य हैं, परंतु इस प्रकार की पुस्तक पढ़ने का अभी हम लोगों में अधिक शौक नहीं है इससे पूरी २ मदद मिले बिना उस पुस्तक का छपना कठिन है।

है! जिसको वह मार्ग मिले वही संत और वही महात्मा है! ऐसे संतों ही से संसार में शांति फैलती है। इसलिये हे दीनदयाल परमेश्वर! इस दुःखित हिन्दुस्थान देश में सच्चे संत उत्पन्नकर और वैसे संतों का वर्णन करने की मुझे शक्ति दे!"

इस तरह प्रथम प्रार्थना करके तब उसने कहा "लोग पूछते हैं कि सच्चे संत किस जगह मिलते हैं? और उनकी पहँचान क्या है? साधुजन इसका जबाब इस तरह देते हैं कि, भाग्य से और प्रयत्न से अच्छे संत मिलते हैं और वे बुद्धि से पहँचाने जाते हैं। प्रभु की बिजली का अर्थात् भगवत्कृपा का जो आकर्षण कर सके उसी को सच्चा संत समझना चाहिये, जो ऐसे संत होते हैं उनको तेरा मेरा नहीं होता जिनके मन में स्वार्थ और अंतःकरण में क्रोध न हो उनको सच्चे संत समझना, गाय दूध देती है इससे उसको पानी घास देना और सिंह जीवों को मारता है इससे उसको मारना ऐसा भेद जिनके हृदय में न हो परंतु गाय और सिंह दोनों पर जिनकी समान दृष्टि हो उनको संत समझना। जैसे समुद्र में बरसात के दिनों में नदियों का पानी जाता है सो न जाय तब भी समुद्र तो भरा ही रहता है और नदी की पानी की आशा नहीं रखता, वैसे ही संतों का मन भक्ति से ठठाठट्ट भरा रहता है वे प्रभु के सिवाय और किसी भी वस्तु की आकांक्षा नहीं रखते, वैसे समुद्र की तरह प्रभुप्रेम से भरे हुए निःस्पृही जनों को संत समझना। जिनके हृदय में चमार ब्राह्मण और क्षत्रिय शूद्र का भेद नहीं होता, वैसे अभेद वृत्तिवालों को सच्चे संत समझना। जिनको स्तुति और निंदा समान हैं वे संत हैं। जैसे मनुष्य शोभा के लिये जेवर पहनते हैं वैसे जिनके मुख में प्रभु नाम का अलंकार है वे उत्तम संत हैं। पवन जैसे सारी दिशाओं से आता है और उसके घरबार कुछ भी नहीं है वैसे ही जिनको सारा संसार समान है वे संत हैं। अभिमान के 'मैं' और 'हम' ये दो मुख्य शब्द हैं। जिनके भाषण में 'मैं' शब्द न हो वे सच्चे संत हैं। अपने सब प्रकार के स्वार्थों को जिन्होंने प्रभु के निमित्त त्याग दिया हो उनको सच्चे संत समझना, सूरज की धूप और बरसात जैसे गरीब और अमीर सब पर बराबर पड़ता है वैसे ही सब पर जिनकी समान दृष्टि हो वे सच्चे संत हैं वृक्ष जैसे उसमें से लकडी काट ले जानेवाले को, मुसाफिर को और वृक्ष को सींचनें वाले को समान रूप पर छाया देता है वैसे ही जिनको सब लोगों पर समान दृष्टि हो वे संत हैं। ऐसे संतों के बहुत चिह्न

हैं संतों में बुद्धि की अपेक्षा समान भाव होने की अधिक आवश्यकता है। बुद्धि थोड़ी हो तो कुछ चिंता नहीं परंतु समान भाव होना चाहिये। बुद्धि तो बहुत हो परंतु जो अंत:करण में प्रभुप्रेम न हो तो वे सच्चे संत नहीं हैं। संक्षेप में सच्चे संत तो वे ही हैं जो प्रभु का आकर्षण कर सकें।

५८ पद

रामशरण विश्रामा साधो रामशरण विश्रामा हो। वेद पुराण पढ़ेको यह गुण सुमिरे हरिको नामा हो ॥ टेक ॥ लोभ मोह माया ममता पुनि औ विषयनकी सेवा हो। हर्ष शोक परसै जिहिं नाहिन सो मूरति है देवा हो ॥१॥ स्वर्ग नरक अमृत विष यह सब त्यों कंचन अरु पैसा हो। अस्तुति निंदा यह सम जाके लोभ मोह पुनि तैसा हो ॥२॥ दुख सुख यह बोधै जिहि नाहिन तिहिं तुम जानो ज्ञानी हो। नानक मुक्त ताहि तुम मानो यहि विधिको जो प्रानी हो ॥३॥

*****

३२३ जब तक ईश्वर को हम अपनी इच्छाएँ न सौंप दें तब तक कुछ भी सौंपा नहीं कहला सकता

भाइयो! हमारी इच्छा में सारे जगत् का समावेश हो जाता है केवल जगत् ही का क्यों? त्रिलोकी का समावेश हो जाता है। उन इच्छाओं को छोड़कर उन हजारों इच्छाओं में से भी थोड़ी सी लेकर, उनमें से भी एक एक को हम प्रभु के अर्पण करें तब वह कैसे राजी हों सो तो विचारो! हम दान करते हैं परंतु मान की इच्छा तो बाकी ही रह जाती है। हम सेवा करते हैं परंतु कमाने की इच्छा तो बनी ही रहती है। हम ठाकुरजी को भोग लगाते हैं परंतु बाल बच्चे होने की इच्छा तो मन में बनी ही रह जाती है। हम गुरु का उपदेश सुनते हैं परंतु रबरटायर की गाड़ी में बैठकर सैर करने की इच्छा तो रह ही जाती है। हम तीर्थ करते हैं परंतु आपस के झगड़ों की इच्छा तो बनी ही रहती है। हम ग्यारस आदि व्रत करते हैं परंतु काम क्रोध तो बने ही रहते हैं। हम दर्शन करते हैं परंतु सरकारी खिताब पाने की इच्छा तो छूटती ही नहीं। हम बैंगन, आलू, मेथी अथवा दाल भात आदि किसी पदार्थ का खाना छोड़ सकते हैं परंतु नाटक तमाशे देखने की इच्छा तो छूटती ही नहीं। भली स्त्रियां मंदिर में जाकर ठाकुरजी की सेवा करती हैं परंतु कुटुंबक्लेश के झगड़ों की इच्छा तब भी बनी रहती है। पंडित लोग गीता का पाठ करते हैं परंतु पाठ करने की

मजदूरी लेने की इच्छा तो बनी ही रहती है। वैष्णव मरजाद लेते हैं परंतु मरजाद के अभिमान की इच्छा तो छूटती ही नहीं। ब्राह्मण शिवपूजन करते हैं परंतु पूजन का फल बेच देने की इच्छा तो तब भी बनी रहती है। गुरु उपदेश देते हैं परंतु वैभव भोगने की इच्छा से वे कहां बचे हैं? साधु घरवार और पुत्र परिवार छोड़ते हैं परंतु ऋद्धि सिद्धि और तुच्छ चमत्कार की इच्छाओं को कहां छोड़ सकते हैं? मनुष्य धर्म के कुछ २ काम करते हैं परंतु उनके बदले में लौकिक फल अथवा स्वर्ग मांगने की इच्छा तो उनमें बनी ही रहती है।

इसी तरह हम सब लोग प्रभु के निमित्त कुछ २ करते हैं तब भी हमारी दूसरी कितनी ही इच्छाएँ तो बाकी ही रहती हैं, हम और चीजों को अपना ही मानकर अपने पास रखें और फिर प्रभु को पाना चाहें तो बन नहीं सकता, क्योंकि प्रभु के ठहराव है कि, हम जब सर्वस्व प्रभु के अर्पण कर दें तब हीं हम प्रभु के हो सकते हैं। इसलिये इस तरह पर सर्वस्व अर्पण करने का सबसे सुगम उपाय यही है कि, हमारी इच्छाएँ प्रभु के अर्पण कर दें और मन में समझलें कि, हम तो चिठ्ठी के चाकर हैं। इससे जैसे प्रभु रखें वैसे ही आनंद से रहना चाहिये।

*****

३२४ मनुष्य का मूल्य समझने को तीन पुतलियों की बात

उज्जैन नगर का राजा भोज बड़ा विद्वान् था। वह गुणियों की कदर करने वाला और अतिदानी था। इससे उसके समय में विद्या हुनर और कारीगरी के बड़े २ चमत्कार बनते थे, क्योंकि कहा है कि ''यथा राजा तथा प्रजा'' आजकल के बहुत से राजा हाथ के बड़े संकीर्ण हैं, इसमे प्रजाजन भी वैसे ही हो गये हैं।

भोजराज के दरबार में एकबार तीन सोने की पुतलियाँ बिकने को आयीं। वे तीनों पुतलियाँ ऐसी कारीगरी से बनाई गयी थीं कि, सारा दरबार उनको देखकर ज्यों का त्यों का रह गया। पुतली बनाने वाले ने तब प्रार्थना की ''पृथ्वीनाथ! आपके दरबार में बड़े २ पंड़ित और विद्वान् मौजूद हैं। इनसे मेरी इन पुतलियां की कीमत करा दीजिये। मैं बहुत २ देश में फिरा परंतु इनकी कोई भी कीमत कर न सका। अब सारी पृथ्वी में प्रसिद्ध और प्रशंसित आपके दरबार में जो इनकी कीमत न हुई तो दुनियां जानेगी कि राजा भोज के दरबार में भी सच्चे परीक्षक नहीं

हैं।"

इतना सुनते ही एक जौहरी बोल उठा "ला! ला! इधर ला तेरी पुतलियों को! ऐसा इनमें क्या है सो इनकी कीमत नहीं हो सकती।"

इतना कहकर उसने पुतलियों को पास लेकर अच्छी तरह देखा और पासवाले एक आदमी से कहा "छोकरे! इनकी कीमत कर दे!

वह छोकरा उस जौहरी का नौकर था और जवाहरात के काम में अच्छा समझता था। उसकी की हुई कीमत में कभी अंतर नहीं पड़ता था उसने उन पुतलियों को देखकर पहले सोने की कसोटी पर घिसा तो सोना पूरा १०० टंच का निकला। फिर उसने चारों को अलग २ तोला तो चारों वजन में बराबर निकलीं पाव रत्ती का भी अंतर न निकला तब उसने उस पुतली वाले से कहा भाई! इन चारों पुतलियों की कीमत बराबर है।"

यह सुनकर पुतली वाला हँसा तब राजा बोला "जौहरी! इन पुतलियों की कीमत इस तरह नहीं हो सकती! तुम भूलते हो! जो इनकी कीमत तौल और सोने के घटिया बढ़िया होने ही पर होती तो वह इनको यहाँ तक न लाता इसमें तो कुछ भेद होना चाहिये।"

राजा का यह कहना सुनकर सारे सरदार सारे पंड़ित और सारे ही जौहरी विचार में पड़े। इतने ही में एक पंड़ित बोल उठा "महाराज! सोने में अंतर नहीं हैं तो बनावट और सूरत में अंतर होगा।"

पंड़ित की इस बातपर से सभा के सब लोग उन चारों पुतलियों को उठा २ कर बारीकी से देखने लगे परंतु किसी को भी उनका बनावट में अंतर न जान पड़ा तब सब लोग चुप होकर बैठ रहे। सारी सभा को चुप देख राजा को मालूम हो गया कि, अब इनकी कीमत कोई बता नहीं सकता। तब वह बोला "सभा में बड़े २ पंड़ित और बड़े २ जौहरी मौजूद होने पर भी पुतलियों की कीमत न हो सकी यह तो बड़ी लज्जा की बात है!"

इतना सुनकर कालिदास पंड़ित उठे उन्होंने एक सलाई मँगवाई और एक पुतली के कान में डाली। सलाई एक कान में से दूसरे कान में जा निकली। तब कालिदास ने कहा "इस पुतली की कीमत तीन कौड़ी।"

फिर उन्होंने दूसरी पुतली के कान में सलाई डालीं तो वह मुँह में होकर निकल गयी तब उसकी कीमत उन्होंने एक रुपया बताया। इसी

तरह तीसरी पुतली के कान में सलाई डाली गयी तो वह पेट में जा पहुँची। तब कालिदास ने उस पुतली की कीमत सवा लाख रुपया बताया।

राजा ने पुतली वाले से पूछा "बोल! अब तेरी पुतलियों की ठीक कीमत हुई या नहीं?"

पुतली वाले ने प्रसन्नता से कहा "महाराज! यह कीमत बराबर है!"

पुतलियों की बनावट में यह भेद और कालिदास में उस भेद को पहचान लेने का गुण देखकर सारी सभा स्तब्ध हो गयी और प्रशंसा करने लगी। राजा ने प्रसन्न होकर कहा "पंड़ितजी! आपने बहुत बड़ा काम किया! मेरी सभा का नाम आपने रख लिया। अब यह बताओ कि, यह कीमत आपने किस तरह की?"

कालिदास ने कहा "महाराज! जिस पुतली के एक कान में होकर दूसरे कान में सलाई जा निकली उसकी कीमत तीन कौड़ी की है। इसी तरह जो मनुष्य अपने धर्म की कल्याण की और प्रभु की बातें सुनकर एक कान से दूसरे में निकाल देता है अर्थात् उसका कुछ विचार नहीं करता और आचार विचार नहीं पालता उसकी कीमत तीन कौड़ी की है। जिस पुतली के कान में से मुँह में सलाई जा निकली उसकी कीमत एक रुपया है वैसे ही जो मनुष्य ज्ञान और भक्ति की अच्छी २ बातें सुनकर सुनते समय राजी हो और मुँह से दूसरों को कह सुनावे परंतु आप उसमें से एक भी न करे उसकी कीमत एक ही रुपया है। और जिस पुतली के कान में होकर सलाई पेट में चली गयी उसकी कीमत सवा लाख रुपये। वैसे ही जो मनुष्य धर्म भक्ति और प्रभु की बातों को कान से सुनकर अपने हृदय में धारण करता है और उसी के अनुसार आचार रखता है अर्थात् भक्त होता है उसकी कीमत सवा लाख रुपया है।

पढ़ने वाले भाइयो और बहनो' अब तुम्हारी इच्छा में आवे सो करो! चाहे तो विना ध्यान दिये मनमाने विचार करते २ इन उदाहरणों को पढ़कर एक कान से दूसरे कान में निकाल दो! चाहे 'स्वर्ग के विमान' के उदाहरण बहुत अच्छे हैं, कहकर चार दिनों में उनको भूल जाओ! और चाहे तो उसका रहस्य हृदय में धारण करके उसके अनुसार आचरण करके, संसार में आनंद से रहकर, मन को शांति में रखकर, और प्रभु की

शरण में रहकर अंत में स्वर्ग का विमान पाओ! जैसे तुम्हारी इच्छा में आवे वैसे करो, हमारी कीमत हमारे ही हाथ में है। कालिदास पंडित के कहने अनुसार हम तीन कौड़ी के भी हो सकते हैं और सवा लाख रुपये के भी बन सकते हैं। इनमें से कैसा बनना सो हमारी मरजी पर है। इसलिये भाइयो! हमारी मुख्य प्रार्थना यह है कि, एक ही साथ सवा लाख रुपये के बन जाना न भी बन सके तो कुछ चिंता नहीं परंतु तीन कौड़ी का न बन जाने की तो अपने पवित्र आत्मा के लिये और समर्थ से भी समर्थ परमेश्वर के लिये अवश्य संभाल रखना।

५९ पद

राम भजहु नरतनु धरि प्रानी जाकी जोति जगत यह जानी ।। टेक ।। जाके पद ब्रह्मादिक सेवत ध्यान धरत हैं मुनिजन ज्ञानी । जाकी चरणरेणु पर्शनते तरी अहल्या सब जग जानी ।।१।। सोई राम प्रहलाद उबारे ध्रुवपद ध्रुव पायो सुज्ञानी । कंस मारि कुंतीसुत पाले जगकारन लीला बहु ठानी ।।२।। जाके हेतु राज तजि भूपति वनमधि जाय तपस्या ठानी । रामजीवन ताहीको विनवै निज मस्तक धरिके युगपानी ।।३।।

*****

३२५ खाँचे में गिरा हुआ गाड़ी का पहिया बातें करने से नहीं निकलता परंतु टेका लगाने से निकलता है

बंबई की हनुमान गली में से एक खटारा अर्थात् बोझा लादने की बैलगाड़ी जाती थी। सामने से एक विक्टोरिया (घोड़ागाड़ी) आ गयी बैलगाड़ी वाले ने बैलों को बहुत ही रोका परंतु बैल थे कुछ जोरावर, रास्ता था तंग, गाड़ी वाला था कुछ बेखबर और सामने से आने वाली घोड़ागाड़ी का हाँकने वाला था जल्दबाज, इससे गाड़ी कुछ अधिक सड़क छोड़कर एक ओर चली गयी और उसका पहिया एक मोरी में गिर गया। गाड़ी वाले ने बहुत ही जोर मारा परंतु पहिया निकला नहीं। इतने ही में एक बनिया आ गया, वह गाड़ी वाले से बोला "इस तरह क्यों बैलों को मारता है? बैलों को छोड़कर तो एक ओर कर दे और पहिया खींच तो अभी निकल आवेगा!"

गाड़ी वाले ने वैसा ही किया परंतु गाड़ी चली नहीं। इतने ही में एक

पारसी आ निकला। उसने लोगों से कहा "मकान वाले को नोटिस क्यों नहीं देते? म्युनिसिपलटी वाले भी क्या अंधे ही हैं? इस आम सड़क पर ऐसी मोरी क्यों रहने दी है?"

इतना कहकर वह गाड़ी वाले से बोला "तू भी मूर्ख ही है! जो दो बैलों से नहीं खिंचती वह तुझसे कैसे खिंचेगी? बैल जोतकर दहनी ओर हांक तो अभी पहिया निकल जायगा।"

गाड़ी वाले ने वैसा ही किया परंतु तब भी पहिया निकला नहीं इतने ही में सिपाही आ पहुँचा और दो चार लात जमाकर कहने लगा 'बे नालायक! रास्ता क्यों बंदकर रखा है? गाड़ी में बैल जोड़कर दो चार चाबुक जमा तो गाड़ी निकल आवेगी!"

गाड़ी वाले ने वैसा भी किया परंतु कुछ फल सिद्ध हुआ नहीं। इतने ही में एक भटजी आ पहुँचे वे कहने लगे "अरे भाई! वृथा बैलों को क्यों मारता है? आगे जाकर दो दो पांच २ पैसें में दो चार मजदूर करला तो वे अभी पहिया निकाल देंगे।"

थोड़ी देर में एक दक्षिणी बुआ आ गये। वे कहने लगे "बाजीराव की तरह मनसूबा ही मनसूबा क्या करता है? जरा बैलों को भड़का दे! बस बैल जोर मारेंगे और पहिया निकल आवेगी!"

गाड़ी वाले ने उत्तर दिया "महाराज! बैल तो भूखे मरते हैं फिर भड़कें कैसे? जो दाना पाते हों वे भड़क सकते हैं। ये तो दिनभर मजदूरी करते हैं और बोझा खेंचते हैं तब घास खाने को पाते हैं।"

तब दक्षिणी बुआ बोले "यह सब सरकार का दोष है!"

यह सुनकर पास वाले दो चार आदमी बोल उठे "राव साहब! गाड़ी का पहिया मोरी में गिर गया इसमें सरकार का क्या दोष?"

राव साहब ने जबाब दिया "सरकार का नहीं तो और किसका दोष? ऐसी सकड़ी गली क्यों रखनी चाहिये? ऐसी खराब नाली क्यों रखनी चाहिये? ऐसे, अल्लड़ हांकने वाले को गाड़ी का पास क्यों देना चाहिये? बैलों को घोड़ों की लीद खिला २ कर ये लोग ऐसे मुरदे कर डालते हैं। इसपर कोई निगाह नहीं रखता सो दोष सरकार का है या और किसी का?"

इसी तरह की बातें बड़बड़ाता हुआ वह भी चल दिया परंतु इससे भी गाड़ी चली नहीं। इतने में एक अंग्रेज घोड़े सवार होकर उधर से निकला।

लोगों की भीड़ भाड़ देखकर उसने पूछा "यह क्या है?"

गाड़ी वाले ने कहा "साहब! नाली के पत्थर में गाड़ी का पहिया अटक गया सो निकलता नहीं है।"

घोड़े चढ़े २ ही उसने कहा "पत्थर को तोड़ क्यों नहीं डालते हों?" और घोड़ा हांक दिया। लोग उसकी बातपर हँसने लगे और आपस में कहने लगे कि, "मारना ऊंदर (चूहा) और खोदना डूंगर (पहाड़) वाली बात यह साहब करता है परंतु यह नहीं विचारता कि, 'यहां कहां टांकी है और कहां हथोड़ा है। इतने ही में एक भाटिया सेठ की गाड़ी आ निकली। परंतु मार्ग बंद होने से वह रुक गयी। तब तो सेठ साहब ने भीतर बैठे २ ही गाड़ी पर हाथ का फटका मारकर कहा "गाड़ी हांक! गाड़ी हांक! दर्शन हो जांयगे!" परंतु जब उनको मालूम हुआ कि मार्ग में गाड़ी फँसी हुई है तब आप अपनी गाड़ी से नीचे उतरे और उस बैलगाड़ी वाले को दो चार गालियां देकर बोले "बैल छोड़कर गाड़ी को खड़ी कर दे! फिर जी चाहे तब पहिया निकालता रहना! हमारी गाड़ी को तो निकल जाने दे!

गाड़ी वाले ने कहा "साहब! पीछे से चबूतरे का कोना लगता है इससे गाड़ी खड़ी नहीं हो सकती!'

यह सुन सेठजी चिढ़ गये और अपनी गाड़ी फिराकर दूसरे मार्ग से हँकवा ले गये।

एक तो गली सकली और फिर बीच में अटक गयी गाड़ी इससे दोनों ओर का मार्ग बंद हो गया और दश ही बारह मिनट में सौ पचास आदमी इकट्ठे हो गये वे सब ही दूर खड़े २ युक्तियां बताते थे परंतु उनमें से एक भी बात से गाड़ी चलती नहीं थी। इतने ही में दो मजदूर आ पहुँचे। उन्होंने समझ लिया कि केवल बात बनाने से काम नहीं होगा परंतु कुछ सहारा लगाने से काम होगा। उन्होंने पास जाकर गाड़ी वाले से कहा "मुँह क्या देखता है? हांक गाड़ी! हम पहिये को उठाते हैं।"

इतना कहकर वे दोनों पहिये को जा चिपटे। एक ने पहिया आगे से खींचा और दूसरे ने पीछ ढ़केला। बस देखते ही देखते पहिया निकल आया और गाड़ी चलदी।

भाइयो! देखो! अटकी हुई गाड़ी जरासा सहारा देने से इस तरह चल निकली परंतु दूर खड़े होकर बातें करने से कुछ भी लाभ नहीं हुआ। उस

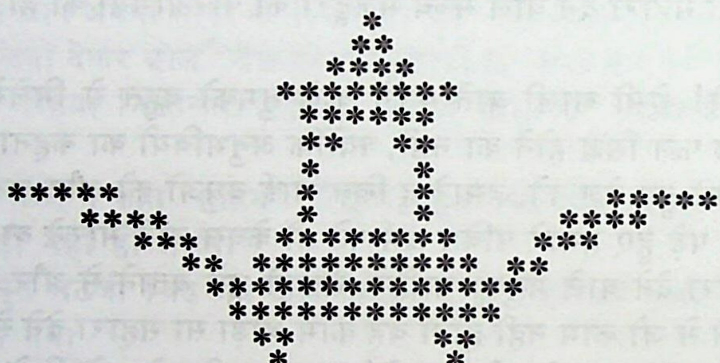
बनिये की तरह झूंठी दया करने से गाड़ी चली नहीं। उस पारसी की तरह कानून की मदद लेने दौड़ने से, सरकारी नौकरों का दोष निकालने से अथवा दहनी बाईं ओर झुकने से भी अटकी हुई गाड़ी चली नहीं। राव साहब की राय के अनुसार सबही बैल भड़कने वाले नहीं होते और बात २ में सरकार का दोष निकालने से भी गाड़ी चलती नहीं। पुलिस की मार से अटकी हुई गाड़ी चल नहीं सकती, जेब में से पैसे दिये बिना भटजी की तरह केवल बातें करने से फँसी हुई गाड़ी चल नहीं सकती। सेठ की तरह गाली देने से भी फँसी हुई गाड़ी चल नहीं सकती, और उस अंग्रेज की तरह घोड़े पर चढ़े २ ही पत्थर फोड़ डालने की सलाह देने से भी बिना औजार पत्थर फूट नहीं सकता और अटकी हुई गाड़ी चल नहीं सकती। ऐसी अटकी हुई गाड़ी को चलाने के लिये तो अपने कंधे और अपनी कमर का मजबूत सहारा देने वाले सच्चे मजदूरों की परिश्रमियों की ही जरूरत है।

भाइयो! ऐसी खाली बातें करने वाले तुमको बहुत से मिलेंगे परंतु उनसे कुछ फल सिद्ध होने का नहीं, क्योंकि अनुभवियों का कहना है, कि हमारे डूबते हुए देश को, हमारे दु:खित भाई बंधुओं को और अश्रद्धा के चक्कर में पड़े हुए हमारे पवित्र धर्म को तो केवल बातें मारने वाले नहीं किंतु सहारा देने वाले मनुष्य चाहिये, सैकड़ों भूलें बताने से और हजारों बातें करने से जो काम नहीं होता वह काम थोड़ा सा सहारा देने से सहज में हो जाता है। भाइयो और बहनो! हमारे गरीब देश के लिये, हमारे गरीबन्धुओं के लिये, हमारे पवित्र सनातन धर्म के लिये, हमारे आत्मा की उन्नति के लिये और समर्थ प्रभु के लिये आपस में सहायता करो! इसी में कल्याण है! यही सबसे सच्चा धर्म है और यही प्रभु के नाम पर परस्पर सहायता करना प्रभु को सबसे अधिक प्रिय काम है! इसलिये दयालु प्रभु के दिये हुए हमारे सनातन धर्म के लिये और महान् प्रभु के लिये जैसे बनै वैसे परस्पर सहायता करने का ठहराव करो और उस ठहराव में बल देने के लिये बारबार सच्चिदानंद की जय जय बोलो! सच्चिदानंद की जय जय बोलो! ! सच्चिदानंद की जय जय बोलो! ! ! और जगत् का स्वामी जो हम सबका सरजनहार पिता है उसको दीनता पूर्वक हमारे खास तथा सबके कल्याण के लिये हाथ जोड़कर बोलो।

६० पद

सब जग होहु दयाल प्रभु मोरे सब जग होहु दयाल ।। टेक ।। ईति भीति जग व्यापै नाहीं, होहि सुवृष्टि सुकाल ।।१।। आधि-व्याधि खलजनकी पीड़ा, इनसों करो प्रतिपाल ।।२।। निज निज धर्म कर्म जग बरतै, देहु विघ्न सब टाल ।।३।। रामसो राज्य करहु भूपति हू मेटहु सकल जंजाल ।।४।। रामजीवनको बेगि निहारो, नाहीं तौ कौल हवाल ।।५।।

स्वर्ग का विमान समाप्त ।



हमारे प्रकाशनों की अधिक जानकारी व खरीद के लिये हमारे निजी स्थान :

खेमराज श्रीकृष्णदास
अध्यक्ष : श्रीवेंकटेश्वर प्रेस,
९१/१०९, खेमराज श्रीकृष्णदास मार्ग,
७ वी खेतवाडी बॅक रोड कार्नर,
मुंबई - ४०० ००४.
दूरभाष/फैक्स-०२२-२३८५७४५६.

खेमराज श्रीकृष्णदास
६६, हडपसर इण्डस्ट्रियल इस्टेट,
पुणे - ४११ ०१३.
दूरभाष-०२०-२६८७१०२५.
फैक्स -०२०-२६८७४९०७.

गंगाविष्णु श्रीकृष्णदास,
लक्ष्मी वेंकटेश्वर प्रेस व बुक डिपो
श्रीलक्ष्मीवेंकटेश्वर प्रेस बिल्डींग,
जूना छापाखाना गली, अहिल्याबाई चौक,
कल्याण, जि. ठाणे, महाराष्ट्र - ४२१ ३०१.
दूरभाष/फैक्स- ०२५१-२२०९०६१.

खेमराज श्रीकृष्णदास
चौक, वाराणसी (उ.प्र.) २२१ ००१.
दूरभाष - ०५४२-२४२००७८.

KHEMRAJ SHRIKRISHNADASS